समर्पण ।

पूज्यपाद, जगद्गुरु, आचार्यवर

श्री १०८ राघवाचार्य जी

श्रीमान् सनातनधर्म के पूज्य आचार्य हैं, धर्म-रक्षा में आचार्य जी का उत्कट प्रेम है, धर्म की हानि में आचार्य जी का चित्त खिन्न होजाता है। धर्म की रक्षा करना तो श्रीमान् जैसे सम्प्रदायों के आचार्यों का ही काम है किन्तु मैं श्रीमान् का तुच्छ सेवक धर्म के विषय में कुछ लिख बैठा हूं। यह मेरा लेख संसार में कुछ काम करे, इसको गौरवशाली बनाने के लिये मैं आचार्य के करकमलों में समर्पित करता हूं। मुझे विश्वास है कि इस किञ्चित् धर्म सेवा से आचार्य प्रसन्न होकर इस अकिञ्चन सेवक को आशीर्वाद देंगे।

भवदीय सेवक—

कालूराम शास्त्री।

आधार।

संसार में आस्तिक या नास्तिक जितने भी धर्म होते हैं उनका कोई न कोई आधारभूत ग्रन्थ होता है। ईसाइयों के यहां ईसाई धर्म का और वाइबिल है, वाइबिल में जिसको धर्म कह दिया वह धर्म और जिसको अधर्म कहा वह ईसाइयों की दृष्टि में अधर्म है। इसी प्रकार मुसलमान धर्म का आधारभूत ग्रन्थ कुरान और पार्सियों का जिन्दावस्था है। हम अधिक क्या कहें सनातनधर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, तथा सिक्ख धर्म प्रभृति जितने भी धर्म हैं उनके आधारभूत उत्तमोत्तम ग्रन्थ विद्यमान हैं, उन्हीं ग्रन्थों के अवलम्बन से ये लोग धर्माधर्म का निर्णय करते हैं। बिना ग्रन्थ का धर्म होता ही नहीं समस्त धर्मों के खोज करने पर यदि कोई बिना ग्रन्थ का धर्म मिला तो उसका नाम आर्यसमाज है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि हमारा मत वेद है, यह कथन केवल संसार को धोखे में फांसने के लिये है, वास्तविक नहीं। स्वा० दयानन्द जी ने वेद के एक भी मन्त्र को प्रमाण नहीं माना वरन् गालियां, असत्य भाषण, चालबाजी, धोखा, हठ इनका अवलम्बन ले वेद का गला घोट कर वेद मन्त्रों के नये अर्थ कर वैदिक सिद्धान्तों का मटिया मेट कर ईसाई धर्म को वैदिक धर्म बनाया है इस कर्तव्य में स्वा० दयानन्दजी ने ऐसे अयोग्यकार्य किये हैं जिनको देखकर मनुष्य यह कह सकता है कि आर्यसमाजी वैदिकधर्मी नहीं हो सकते। ईश्वर स्वरूप, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, जन्म से वर्णव्यवस्था, ईश्वर संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, सृष्टि क्रम प्रभृति समस्त विषय वेद ने विस्तृत और स्पष्टता से वर्णित किये हैं।

किन्तु स्वा० दयानन्द जी ने उपरोक्त गालियां इने आदि पांच प्रमाणों के अवलम्बन से वेद के सिद्धान्तों को कुचल ईसाई धर्म को वैदिक धर्म सिद्ध किया है और इस बेहूदगी के साथ विवेचन किया कि जिसका कुछ सार ही नहीं निकलता समझिये हम उदाहरण देकर समझाते हैं।

स्वामी जी लिखते हैं कि हम किसी स्मृतियों को नहीं मानते केवल मनु के उतने श्लोक मानते हैं जो वेदानुकुल हैं। इस अनोखी कल्पना से आर्यसमाजियों की चुटिया जनेऊ का सफाया हो गया। वेद में न चुटिया रखने का हुक्म है न जनेऊ पहिनने का, नहीं जनेऊ के निर्माण की विधि और न शिखा सूत्र का प्रमाण। वेद में यह भी नहीं लिखा कि शिखा सूत्र मनुष्य धारण करे या पशु, केवल शतपथ

में यज्ञोपवीत का कुछ महत्व कहा है परन्तु स्वामी जी शतपथ को वेद नहीं मानते वरन् पुराण मानते हैं अब सिद्ध हो गया कि दयानन्द के माने हुये वेदों में शिखा सूत्र के धारण करने का कोई भी लेख नहीं। हां मनुस्मृति आदि स्मृतियों में और पारस्करादि ग्रन्थों में इनके धारण करने की विधि है किन्तु इन ग्रन्थों के शिखा सूत्र बतलाने वाले प्रमाण वेदानुकूल नहीं, फिर उनको आर्यसमाज माने कैसे, सिद्ध हुआ कि आर्यसमाज के मतमें न चुटिया रखना है और न जनेऊ पहिनना किन्तु आर्यसमाजी शिखा सूत्र रखते हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि तुम शिखा सूत्र किस आधार पर रखते हो? कुछ बहस के बाद उनको यह मानना पड़ता है कि हम शिखा सूत्र सनातनधर्मियों के लेखके आधार पर रखते हैं। शिखा सूत्र का आधार आर्यसमाज में कुछ नहीं, इसलिये आर्यसमाजियों को सनातनधर्म के आधार को लेना पड़ता है। वेद में संध्या तथा पञ्चयज्ञ की विधि नहीं है और आर्यसमाजियों में इने गिने मनुष्य इस कर्म को करते हैं। जब हम उनसे यह पूंछते हैं कि तुम्हारे वैदिक धर्म में तो संध्या अग्निहोत्र करना नहीं लिखा तुम किस आधार पर करते हो? तो इनको मजबूर हो कर कहना पड़ता है कि सनातनधर्म के आधार पर, गर्भाधान, सीमन्त, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, कर्णवेध, चोल, उपनयन, विवाह प्रभृति जितने भी संस्कार हैं वेद में इनके करने की आज्ञा नहीं और आर्यसमाजी करते हैं, जब हम इनसे पूंछते हैं कि ये संस्कार तुम किस आधार पर करते हो? तो इनको मानना पड़ता है कि सनातनधर्म के के आधार पर।

एक बार बम्बई में हमसे और बालकृष्ण भट्ट से प्रश्नोत्तर चला, प्रश्नोत्तर था मूर्तिपूजा पर हमने "त्र्यम्बकम्" "नमस्तेस्तु विद्युते" "उद्यतेनम;" "भावसवौ" प्रभृति पचास प्रमाण मूर्तिपूजा के मण्डन में दिये। बहुत फड़फड़ाने पर भी पण्डित जी हमारे कथन का निराकरण न कर सके। अन्त में पण्डित जी को क्रोध आगया उस क्रोध के समय में हमने यह कह दिया कि वेद के जिन मन्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान है उनका तो उत्तर कुछ आप देते नहीं अस्तु, न सही किन्तु आप यह बतलावें कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन किस आधार पर करते हो? पण्डित जी ने निःशंक कह दिया कि कुरान के आधार पर। इसको सुन कर आर्यसमाजी पण्डित जी के पीछे पड़े किन्तु जो अक्षर मुंह से निकल गये वे फिर मुंह में धंस नहीं सकते। मूर्तिपूजा के खण्डन का कोई आधार वेद में नहीं है लाचारी से यह मानना ही पड़ेगा कि आर्यसमाज जो मूर्तिपूजा का खण्डन करती है उसमें केवल कुरान आधार है।

स्वामी दयानन्द जी ने गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था मानी है। सत्यार्थप्रकाश के कई एक स्थान में तो गुण, कर्म स्वभाव लिया है और कहीं २ स्वभाव को छोड़ कर वर्णव्यवस्था गुण-कर्म से ही मानी है। गुण-कर्म स्वभावसे वर्णव्यवस्था वेद के किसी मन्त्र में नहीं, वेद क्या ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग, षट्दर्शन प्रभृति किसी भी धार्मिक ग्रन्थ में पाई नहीं जाती। स्वामी जी ने जो इसकी पुष्टि की है वह इतिहासों से की है। इतिहास के बल पर नहीं वरन् चोरी के बल पर, किसी इतिहास की तनक सी कथा चुरा कर कह दिया कि देखो अमुक आदमी क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया किन्तु पुराण, इतिहास इन ग्रन्थों में एक भी ग्रन्थ गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं मानता अतएव विचारशील आर्यसमाजियों को यह मानना ही पड़ता है कि स्वामी जी ने जो गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था मानी है इसका आधार यूरोपीय सभ्यता का आचरण है।

वेदों में मृतक श्राद्ध बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। अथर्व वेद के अठारहवें काण्ड और यजुर्वेद के उन्नीसवें अध्याय इनमें अधिकतर भी मृतक श्राद्ध के मन्त्र पाये जाते हैं। समस्त मन्त्र मृतक श्राद्ध के कहने वाले वेद में सात सौ से भी अधिक हैं। इतने पर भी स्वामी दयानन्द जी मृतक श्राद्ध का खण्डन लिख गये। मृतक श्राद्ध के खण्डन का आधार क्या है? जब इसकी खोज की जाती है तब यह पता चल जाता है कि नास्तिक चार्वाक् और नास्तिक वृहस्पति के लेखों के आधार पर ही स्वामी दयानन्द जी ने मृतक श्राद्ध का खण्डन किया है।

वेदों ने ईश्वर को साकार और निराकार दो रूप रखने वाला वर्णन किया है जहाँ पर ब्रह्म के एक अंश में सृष्ट्युत्पत्ति हो गई वहां पर ईश्वर साकार और जिस अंश में सृष्ट्युत्पत्ति नहीं हुई वहां ब्रह्म को निराकार बतलाया है। सृष्टि की उत्पत्ति में यह स्पष्ट कह दिया है कि आकाश, वायु, जल, अग्नि पृथ्वी इन पांच ही तत्वों से संसार बना है और ये पांचों ही तत्व ईश्वर के शरीर से उत्पन्न हुये हैं इस कारण ईश्वर साकार है। कई एक वेद मन्त्रों ने डंके की चोट यह बतलाया है कि जितने तत्व तथा स्थूल सूक्ष्म, जड़ और चेतनात्मक संसार है वह सब ईश्वर का शरीर है।

"ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृत" "वराहेण पृथ्वी" "इदं विष्णुर्विचक्रमे" प्रभृति वेद के अनेक मन्त्र ईश्वर के ब्रह्मा, वराह, वामनादि अवतारों का वर्णन कर रहे हैं किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर को निराकार माना, जब हम इसके आधार की खोज करते हैं तब पता चलता है कि यह स्वामी जी ने जैन धर्म से लिया है। जैनियों के यहां ईश्वर को निराकार माना है उसको स्वामी जी ने

वैदिक बना दिया—यह मानना पड़ेगा कि दयानन्द के चलाये आर्य्यसमाजी मत का वेद जिम्मेदार नहीं, वेद तो आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के परम शत्रु हैं। स्वामी जी ने अन्य २ धर्मों से कुछ २ बातें लेकर ईसाई धर्म को चालबाजियों से वैदिक धर्म बनाया है, एक भी मनुष्य न ऐसा हुआ है, न है, न होगा जो आर्य्यसमाज को वैदिक धर्म सिद्ध कर दे इस कारण यह कहना ही पड़ेगा कि आर्य्यसमाज का आधार वेद नहीं है—इसको हमने वेद और आर्य्यसमाज नामक प्रकरण में स्पष्ट रूप से दिखला दिया है। पहिले वेदों के सिद्धान्त दिखलाये और फिर प्रत्येक विषय पर आर्य्यसमाज का सिद्धान्त लिखा, पढ़ने वालों को यह पता लग जावेगा कि प्रकाश और अन्धकार में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर वेद और आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों में है।

दयानन्द।

दयानन्द जी ने गालियां देना, झूंठ बोलना, चालाकियां करना, मनुष्यों को धोखे में डालना, हठ बांध बैठना, खैंच खांच प्रमाणों से कुछ मनमानी बातों को वैदिक बतलाया है। ये सब बातें हमने प्रमाण पंचक में लिख दी हैं। स्वा० दयानन्द जी बड़े होशियार थे, उन्होंने अनुभव किया कि किसी समय में हमारे बनावटी जाल टूट जावेंगे उस समय हमको पवलिक् घृणा की दृष्टि से देखेगी, हम घृणा की दृष्टि से न देखे जावें इसके लिये स्वामी जी ने एक और चालाकी की, वह यह कि अपने लेखों में स्वा० दयानन्द जी सनातन धर्म के समस्त सिद्धान्तों को सत्य लिख गये और उनका मण्डन लिख गये। जिन लेखों में स्वामी जी ने सनातन धर्म का मण्डन किया है वे समस्त लेख इकट्ठे करके हमने इस ग्रन्थ में एक 'वैदिकता प्रकरण' लिख उसमें दिखला दिये हैं। स्वामीजी ने दोनों हाथों में लड्डू रक्खे हैं, यदि एक हाथ का लड्डू खाने को न मिलेगा तो दूसरे हाथ का खा लेंगे। भावी विद्वानों के निर्णय में यदि सनातनधर्म सत्य ठहर गया तब हमारी निन्दा नहीं हो सकती है क्यों कि हमने जोरदार शब्दों में सनातनधर्म का मण्डन किया है, यदि सनातनधर्म झूंठ ठहर गया तो भी हमारी निन्दा नहीं हो सकती क्यों कि हमने सनातनधर्म का घोर खण्डन भी लिखा है—इस चालाकी को लेकर स्वामी जी की लेखनी उठी।

आर्य्यसमाजी वेदों से तो घबराती है, वेद तो आर्य्यसमाज के परम शत्रु हैं ही, अब इसका आधार स्वा० दयानन्द जी के ग्रन्थ ठहरते हैं। यदि आर्य्यसमाजी दयानन्द जी के लेखों को ही प्रमाण मान लेते तो यह धर्म कुछ जोरदार रहता और इसका नाम संसार में दयानन्दीयधर्म हो जाता, काम पड़ने पर आर्य्यसमाज

अपने ग्रन्थ निकाल कर दिखला सकती थी कि हम ऐसा मानते हैं और हमारे यहां इसका यह प्रमाण है किन्तु आर्य्यसमाजी ऐसे उस्ताद निकले कि वे स्वामी जी से भी दो कदम आगे बढ़ गये। स्वामी जी को चैलेंज दे दिया कि तुमने वेदों के तात्विक सिद्धान्तों को झूठ माना है, हम तेरे लेखों को झूठ मानते हैं स्वा० दयानन्द जी ने जितने भी धार्मिक कर्तव्य लिखे उनमें से आर्य्यसमाजी केवल परस्पर में 'नमस्ते' करना तो मानते हैं बांकी धर्म विषय या कर्तव्यता पर जितना लेख स्वा० दयानन्द जी का है आर्य्यसमाजी उसके घोर शत्रु हैं-इसको हमने 'आर्यसमाज का मृत्यु' नामक अन्तिम प्रकरण में दिखलाया है-सिद्ध होगया कि आर्यसमाज न वेद मानती है न स्वा० दयानन्द जी का लेख, अतएव इस सोसाइटी की कोई आधार ही नहीं। बिना ग्रन्थ का मजहब यदि कोई तुमको मिलेगा तो वह आर्यसमाज मिलेगा।

चालाकियां।

आर्यसमाजी अपने मन में यह समझे हैं कि ग्रन्थों के मानने से मनुष्य बन्धन में पड़ जाता है इस कारण वेद और स्वा० दयानन्द लिखित जितने भी ग्रन्थ हैं उनको तो दूर फेंक दो केवल स्वा० दयानन्द जी की बतलाई चालाकियों को लेलो और उन चालाकियों में कुछ और उन्नति करलो इसी के आधार पर संसार में आर्यसमाज को सच्चा धर्म, वैदिक धर्म, सब से बड़ा धर्म, कहते रहो, जिन्होंने वेद शास्त्र नहीं पढ़ा या जो धर्म को कोई चीज नहीं समझते वे तुम्हारे जाल में फंसते रहेंगे और आर्यसमाज की उन्नति होती रहेगी, इस सिद्धान्त को आगे रख आर्यसमाज ने वेद और स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को तिलांजलि दे दी। देश हित, जाति हित के मीठे २ राग गाकर अब इन्होंने चालाकियों का चलना आरंभ कर दिया। हमारी इच्छा है कि नमूने के लिये कुछ चालाकियाँ हम यहां उद्धृत करदें। (१) देखो विधवा होने पर स्त्रियां बड़ी दुःख पाती हैं, फिर वे भ्रष्ट हो जाती हैं, गर्भ गिराती हैं, भ्रूण हत्यायें करती हैं, अन्त में मुसमलमानों के साथ भाग जाती हैं इससे तो अच्छा यह है कि विधवा विवाह जारी कर दिया जावे, कम से कम इतना तो लाभ होगा कि उनकी सन्तानें गोभक्षक को छोड़ कर गोरक्षक बनेंगी (२) अजी-पंडितोंकी बातें मत करो, पंडित तो आर्यसमाज से चिढ़ते हैं? आर्यसमाज पंडितोंकी आमदनी को बन्द करतीहै इस कारण पण्डितोंने तो आर्यसमाज से शत्रुता ठान ली है, यह शत्रुता देश का नाश करेगी, जब तक एक न होंगे देश का उद्धार होगा कैसे? अब तो ब्राह्मणों को यही चाहिये कि आर्यसमाज से न लड़ें बल्कि ब्राह्मण और आर्यसमाज दोनों मिलकर मुसलमानों से लड़ें, आप मानें या न मानें

हम तो हिन्दू जाति के कल्याण की बात कहते हैं। (३) बाबू जी देखिये तो सही शहर में इन सनातनधर्मियों ने क्या बायवेला मचाया है बातका बतंगड़ बना दिया. बात इतनी थी कि कल आर्यसमाज के उपदेशक श्रद्धानन्द जी मटरू भंगी के यहां खाना खा आये थे बस शहर में सनातनधर्मियों ने कोलाहल मचा दिया, ऐसे ही दुष्ट व्यवहार से नीच जाति के लोग ईसाई मुसलमान हो जाते हैं, जब तक उनका आदर न किया जायगा वे हिन्दूजाति में रह कैसे सकते हैं, फिर मटरू के यहां जो खाया तो तुमने तो नहीं खाया? आर्यसमाजके एक आदमी ने खाया है, आर्यसमाज की भंगियों के साथ हमदर्दी है, वह इसको योग्य समझती है, तुम्हारा क्या बिगड़ मथा जो तुम अब शहर में फूट फैला रहे हो? हम तो सच्ची कहते हैं कोई माने या न माने।

आज कल इस प्रकार की चालबाजियों से आर्यसमाजी आर्यसमाज की उन्नति कर रहे हैं। साधारण मनुष्य इनकी चालबाजियों को समझते नहीं इस का-रण इनके जाल में फंस रहे हैं। यदि कोई मनुष्य इनकी चालबाजी को परख यह कह दे कि देवता! तुम विधवाओं के विवाह करवाते कैसे हो? वेद में विधवाविवाह का खण्डन, दयानन्द जी ने अपने लेख में तीन जगह विधवाविवाह का खण्डन किया फिर तुम द्विजातियों में विधवाविवाह किस आधार पर चलाते हो?

रही बात पण्डितों की। स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि ये ब्राह्मण पण्डित न होते तो फिर आज तक वेदों का पता भी न चलता? वेद कहता है कि "विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम" ब्राह्मण वेद विद्या के रक्षक हैं, तुम किस आधार पर पण्डितों को आर्यसमाज का शत्रु बतलाते हो?

श्रद्धानन्द ने जो भंगी के यहाँ भोजन कर लिया तुम्हें शर्म नहीं आती, तुम इसकी हिमायत करते हो? क्या तुमने धर्मशास्त्र नहीं देखा? धर्मशास्त्र ने साफ लिख दिया है कि अज्ञातावस्था में प्रायश्चित्त है और ज्ञातावस्था में उसका बहि-ष्कार है? स्वा० दयानन्द जी ने दशमसमुल्लास में नीच जातियों के भोजन का विकट निषेध किया है, तुम श्रद्धानन्द की प्रशंसा करते हो? इसको सुनते ही केवल इसी की नहीं किन्तु शहरमें जितने आर्य्यसमाजी होंगे उन सब की नानी मर जावेगी।

कौन कहता है कि आर्यसमाजी संसार को धोखा देकर, चालाकी चल कर आर्यसमाज को नहीं फैलाते, इन की बात चीत में, इनके लेख में, इनके व्याख्यान में इनके शास्त्रार्थ में सिवाय चालबाजी के और है क्या? जो इनकी चालबाजियों को परखता है उसके साथ ये कभी शास्त्रार्थ नहीं करते। आर्यसमाजी उपदेशकों की

अनुभव हुआ कि पं० कालूराम शास्त्री और कविरत्न पं० अखिलानन्द जी के आगे हमारी चालाकी नहीं चलती, ये दोनों हमारी चालाकियों को धूल में मिला देते हैं और हम को हमेशा जोरू की भांति दबाये रहते हैं, किसी प्रकार इनका काला मुँह हो। इसके ऊपर गहरा विचार करके षड्यन्त्र बनाया, उस षड्यन्त्र में कुछ सनातन-धर्मियों को मिला यह सिद्ध किया कि पं० कालूराम शास्त्री और कविरत्न पंडित अखिलानन्द ये दोनों हसन निजामी के नौकर हो कर हिन्दुओं से द्रोह करते हैं। भाव इनका यह था कि दोनों पण्डित बदनाम हो जावें और सनातनधर्म सभायें इनको अपने प्लेटफार्म पर न आने दें किन्तु "दैवो दुर्बलघातकः" उल्टी निमाज गले पड़ी, षड्यन्त्रकारियों को माफी मांगनी पड़ी और वे संसार की दृष्टि में नीच बने।

पं० राजाराम जी शास्त्री भूतपूर्व प्रोफ़ेसर डी० ए० बी० कालेज लाहौर एवं वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री भूतपूर्व प्रिंसिपल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा महामहोपाध्याय आर्यमुनि विद्वान् होने के कारण लज्जा को कोई वस्तु समझते हैं इस कारण शास्त्रार्थमें ये चालाकियां नहीं चलते अतएव आर्य्यसमाज इनको शास्त्रार्थ ही में नहीं बुलाती। हां—जो लोग सर्वथा संस्कृत शून्य हैं, जो लोग लज्जा को कुचल चुके हैं, जिनको आर्य्यसमाज चालाकियों का पण्डित समझती है वे ही शास्त्रार्थ में बुलाये जाते हैं। कविरत्न पं० अखिलानन्द तथा कालूराम के सामने जो आये और उन्हों ने चालाकी चलना आरम्भ की, इसको परखते ही ये दोनों पंडित चालाकियों में दियासलाई दिखला देते हैं। चालाकियों में दियासलाई लगी कि आर्य्यसमाजी हारे। आर्य्यसमाजियों ने यह अनुभव किया कि इन दो पंडितों के आगे हमारी चालबाजी नहीं चलती और हमने जो एक अनोखी चालबाजी के सहारे से इन पण्डितों को हसन निजामी का नौकर बनाना चाहा था, हमारी उस चालबाजी में भी पबलिक न फंसी, उलटा हमी को नीचा देखना पड़ा, अब ये दोनों पंडित फिर शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, बिल्ली के भागों छींका टूटा। दैवयोग से नीमच का शास्त्रार्थ आ गया, इस शास्त्रार्थ में बुद्धदेव पंजाबी और रामचन्द्र सुनार देहलवी आदि उपदेशकों की चालाकी का वह कचूमर निकला कि इनके प्राण गले में आगये, अब ये विचारे निराधार हो गये, शास्त्रार्थ करने से इन्कार नहीं कर सकते, चालाकियों को छोड़ आर्यसमाज के पास और कोई आधार नहीं, चालाकी कालूराम और अखिलानन्द के आगे ठहरती नहीं, अब हम करें तो क्या करें? घबराये, अन्त में जौलाई सन् २६ में यह रेजुलेशन पास करवाया कि कोई भी आर्यसमाजी पण्डित कालूराम और अखिलानन्द के साथ शास्त्रार्थ न करे।

कालूराम और अखिलानन्द पर ही क्या दार मदार है। आर्यसमाजी पंडित शास्त्र के विद्वान् नहीं होते, वेद और धर्मशास्त्र इनका साथ नहीं देता, इन गरीबों का आधार तो चालाकियां ही हैं। जो चालाकियाँ करीं कि तत्काल हारे? जो पण्डित इनकी चालाकियों को परख कर काट देगा आर्यसमाजी फौरन हार जायंगे और फिर उसके साथ शास्त्रार्थ करने को कभी तैयार न होंगे।

हमने इस ग्रन्थ में आर्यसमाज की चालाकियों का विस्तृत वर्णन किया है, साथ ही साथ यह भी उत्तम रीति से दिखलाया है कि वेद और स्वामी दयानन्द जी के लेख को आर्य्यसमाज बिल्कुल नहीं मानती केवल चालबाजियों से, धोखे से झूठ बोलकर ही अपनी उन्नति कर रही है। हमने यह सच्ची बात लिखी है, आर्य्य-समाजियों से हमारा कोई द्वेष नहीं, इन्होंने हमें कुछ हानि नहीं पहुंचाई, हमने जनता के कल्याण के लिये यह ग्रन्थ लिखा है ताकि पबलिक इसको पढ़े और धर्म धर्म विला कर मनुष्यों को पापी बनाने वाले ठगों से बचे।

आग्रह।

हम आर्य्यसमाज के नेता, लीडर-प्लीडर, प्रिंसिपल-प्रोफेसर, पण्डित-उपदेशक, प्रधान-मंत्री, सभासद और कार्यकर्ता, सम्पादक और लेखक तथा समस्त आर्यप्रतिनिधि सभाओं के आगे यह ग्रन्थ रखते हुये नम्र निवेदन करते हैं कि यदि यह ग्रन्थ मिथ्या लिखा गया है तो आर्य्यसमाज इसका वह जोरदार खण्डन करवावे कि जिसके ऊपर फिर हमारी लेखनी न उठ सके। हम इस पुस्तक के खण्डन में जो ग्रन्थ देखेंगे उससे अप्रसन्न न होंगे वरन् हमारे हर्ष का पारावार न रहेगा। हम भी समझेंगे कि आर्यसमाज में विद्वान् मौजूद हैं और उनमें ग्रन्थ लिखने की शक्ति विद्यमान है किन्तु साँच को आँच नहीं, इसको सत्य समझ हम यह बड़े जोर से कहते हैं कि चार लाख आर्यसमाजी एक स्थान में इकट्ठे हों और फिर सब इस पुस्तक के खण्डन में अपने अपने विचार प्रकट करें, लक्षों रुपया खर्च हो तब भी इस पुस्तक का खण्डन नहीं हो सकता। लेखनी उठाते ही हाथ कांपने लगेगा, बुद्धि इन्कार की कबड्डियां मचाती हुई लेख लिखने से स्पष्ट इन्कार करेगी इस कारण लेखनी उठाने वाला लेखनी को जमीन में रख हाथ जोड़ लेगा।

आर्यसमाजी भाइयो! हमने जितनी किताब आर्यसमाज की देखीं प्रायः सभी के वेद विरुद्ध अंश में लेखनी उठाई किन्तु क्या तुम में इतना भी साहस नहीं कि हमारी इस एक ही किताब का खण्डन लिख दो? क्या संसार में तुमको ईश्वर ने

इतनी कमजोरी दे दी कि जो किताब तुम्हारे समस्त धर्म को मिट्टी में मिलाती हो तुम उस पर भी लेखनी न उठाओ ? जिस २ स्थान में यह ग्रन्थ पहुंचेगा उस २ स्थान के आर्यसमाजियों की गर्दन ऊंची न उठ सकेगी प्रायः मरणासन्न दशा हो जावेगी । क्या तुम्हें यह मंजूर है कि लाखों आर्यसमाजी तोबा देवें ? यदि नहीं मंजूर है तो फिर लेखनी उठाओ ।

इस अकेले ग्रन्थ को लेकर सनातनधर्म का छोटे से छोटा पंडित आर्यसमाजियों की चालाकियों का खण्डन करता हुआ सनातनधर्म की विजय दुन्दुभी बजा सकता है । क्या आर्यसमाजियो ! तुम को यह इष्ट है कि स्थान २ में आर्यसमाज की हार हो ? नहीं है तो इस ग्रन्थ के खण्डन में लेखनी उठाओ ! यह ग्रंथ इतने विचार के साथ लिखा गया है कि हम प्रत्येक आर्यसमाजी के घर पर पहुंच कर इस ग्रन्थ से होने वाली आर्यसमाज की हानियों को समझावें और कुछ मुबलिगात देने को भी तैयार हो जावें तब भी किसी आर्यसमाजी की लेखनी इस ग्रन्थ के खण्डन में उठ नहीं सकती ।

आर्यसमाजी भाइयो ! तुमने वेद और दयानन्द के लेख को अपना शत्रु समझ जो केवल चालबाजियों के आधार पर आर्यसमाज की उन्नति मानली है तुम्हारे इस निन्दनीय व्यवहार से आर्यसमाज का मृत्यु हो गया, अब तुम वैदिक धर्म या दयानन्दीय धर्म पर कभी ठहर नहीं सकते, तुम्हारे इस निन्दनीय व्यवहार से जितने आर्यसमाजी और उनके उतने ही मत होंगे । यदि तुम आर्यसमाज का कल्याण चाहते हो तो चालबाजियों में दियासलाई लगाओ और दयानन्द के लेख को दूर फेंक दो फिर तुम वेदों को पढ़ कर यह निर्णय करो कि वेदों के क्या सिद्धान्त हैं ? जो वेदों के सिद्धान्त हों उन्हीं को आर्यसमाज के सिद्धान्त बनाओ इसी में आर्यसमाज और प्रत्येक आर्यसमाजी का कल्याण होगा । यदि मानो तो अच्छा है न मानो तो तुम्हारी इच्छा, इससे अधिक हम कोई दूसरी सम्मति आपको दे नहीं सकते, अधिक विस्तार की भी कोई आवश्यकता नहीं ।

सनातनधर्मी ।

प्यारे सनातनधर्मियो ! तुम धर्मप्राण हो, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, ध्रुव, शिवि, दधीचि, व्यास, शुकदेव प्रभृति आपके बुजुर्ग जो धर्म भक्ति दिखला गये हैं वह छटा किसी भी जातिके किसी मनुष्य ने दिखलाई नहीं । घटना बहुत पुरानी है । कुछ ही दिन हुये शिवा जी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह के प्राण प्यारे छोटे २ बच्चे एवं माननीय धर्मवीर हकीकतराय जी धार्मिकता की छटा को संसार में दिखला

गये वह तुमको याद होगी। आज आर्य्यसमाज अपनी चालाकियों से अनादि सना-
तन वैदिक धर्म को कतल कर रही है और तुम घर्राटे की नींद में सो रहे हो धिक्कार
है ऐसे जीवन पर जिस जीवन से हम और आप धर्म की रक्षा न करें। आज तक
आप लोगों का यह उज्र था कि वेदशास्त्र अगाध हैं उनको हम पढ़ नहीं सकते फिर
आर्य्यसमाज से कैसे भिड़ें ? हमने यह ग्रन्थ लिखकर तुम्हारे इस उज्र का स्वाहा
कर दिया, अब तुमको विशेष पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं, इस ग्रन्थ को उत्तम
रीति से पढ़ इसके भावों को समझ लो और फिर एकदम आर्य्यसमाज को ललकार
दो कि सनातनधर्म श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य धर्म है एवं आर्य्यसमाज कोई धर्म नहीं
केवल धोखा और चालबाजी का पुंज है, आओ शास्त्रार्थ करो, अब शान्ति रखने की
कोई आवश्यकता नहीं। प्रत्येक सनातनधर्मी, विशेष कर ब्राह्मण और उनमें भी
पण्डितों का यह मुख्य धर्म है कि जगह २ में आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के चैलेंज दे
और इस ग्रन्थ के आधार पर शास्त्रार्थ करके आर्यसमाजियों की चालबाज बुद्धि को
ठिकाने बिठला दें। सनातनधर्मियो ! केवल एक इसी ग्रन्थ में तुम्हारे पास समस्त
विषयों पर शास्त्रार्थ करनेकी सामग्री मौजूद है अब जो चूक गये या सुस्ती कर गये
तो फिर अन्त में तुमको रोना पड़ेगा और उस रोने का कुछ भी मूल्य न होगा।
आर्यसमाजी अपनी पुरानी चालाकी एवं नई चालाकियों से तुमको ईसाई बनाये
बिना नहीं छोड़ेंगे। आर्यसमाज क्या है वेद और दयानन्द के लेखों को उधेड़ २ कर
खाने वाला खूंख्वार जानवर है बस अब तुम्हारा कर्तव्य यही है कि उठकर आर्य्य-
समाजियों के धोखे, चालबाजी, झूठे और कटु लेख तथा हठ का ऐसा भंडाफोड़
करो कि इस भंडाफोड़ की सूचना प्रत्येक नगर, ग्राम में गूंजती हुई प्रत्येक मनुष्य के
कान में जा पहुंचे। आर्यसमाजी अब तुम्हारा मुकाबला नहीं कर सकते क्यों कि
इनके अन्तःकरण में यह भय जम गया है कि अब समस्त संसार हमारी चालबाजी
और हमारे धोखों को समझने लगा है, केवल तुम्हारे उठने की देर है। तुम उठे कि
तत्काल वेदों का विजय हुआ। अब हम देखना चाहते हैं कि सनातनधर्मके वे कौन २
प्राण प्यारे पुत्र हैं जो वेद और वेद प्रतिपाद्य धर्म की रक्षा के लिये आर्य्यसमाज के
सम्मुख शेर की भाँति गर्जने को तैयार हैं। किमधिकम्—

कालूराम शास्त्री।

विषय--सूची ।

वेद और आर्यसमाज।

ईश्वर स्वरूप।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

आर्यसमाज की मौत

यो अस्मभ्यमरातीया-
यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच-
सर्वं तं भस्मसात्कुरु ॥ यजु० ॥ १ ॥

दुरापारसंसारसंहारकारी-
भवत्यश्वचारः कृपाणप्रहारी ।
मुरारिर्दशाकारधारीह कल्की-
करोतु द्विषां ध्वंसनं वः स कल्की ॥ २ ॥

मी दयानन्द जी अपने ग्रन्थों में अवतार, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, द्विजों में विधवा विवाह निषेध, जन्म से वर्ण-व्यवस्था, फलित ज्योतिष्, देवजाति, इतिहास, पुराण की प्रामाणिकता इन सनातनधर्म के सिद्धान्तों को वैदिक मान कर इनकी पुष्टि में विविध प्रमाण उद्धृत करते हैं। आज हम स्वामी जी के इसी विवेचन को पाठकों को दिखलाने के

लिये तैयार हुये हैं, हमें आशा है कि सनातनधर्मी और आर्यसमाजी दोनों ही स्वामी जी के लेख से लाभ उठावेंगे।

अवतार।

सनातनधर्म का सिद्धान्त है कि ईश्वर के निराकार और साकार दो रूप हैं, समय २ पर ईश्वर शरीरधारी भी बनता है। स्वामी जी ईश्वर के शरीरधारण करने की पुष्टि अपने अनेक लेखों में करते हैं इनको पाठक क्रम से देखें।

नं० (१) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च
स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु॥
यजु० २६। २

हे मनुष्यो ! * मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण-क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुये अंत्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रकट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेद रूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं (दातुः) दान वाले के संसर्गी (देवनाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रिय) मनोहर पियारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मा) मुझे (अदः) वह परोक्ष सुख (उपनमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आपको भी प्राप्त होवे।

इस भाष्य में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को वेद पढ़ाता हुआ साथ ही साथ अपनी स्त्री तथा अपने नौकरों को भी वेद पढ़ाता है। जब ईश्वर अपनी स्त्री को वेद पढ़ाता है तो वेद तब ही पढ़ावेगा जब उसके स्त्री होगी, क्या कोई स्त्री वाला भी निराकार होता है? यहाँ पर यह

* यह अर्थ दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में है। सत्यार्थ प्रकाश में इस अर्थ को बदल दिया।

भी सन्देह नहीं हो सकता कि निराकार ईश्वर के निराकार स्त्री होगी ? यह स्त्री साकार है और वेद पढ़ती है।

महात्मा धर्मपाल जब दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य का उर्दू अनुवाद करने बैठे तब उनको यह बात खटकी कि ओ हो ! ईश्वर निराकार और उस निराकार के एक स्त्री ? स्त्री भी मामूली नहीं-वेद पढ़ने वाली ? यह तो युक्ति विरुद्ध है। यह समझ कर धर्मपाल ने "स्त्री और सेवक" ये पद छोड़ दिये, उर्दू में इनका अनुवाद नहीं किया किन्तु संस्कृत न जानने के कारण इनको इतना ज्ञान न हुआ कि मंत्र में 'स्वायं' पद है और दयानन्द जी ने भाष्य करते हुये 'स्वाय' को कोष्ठ में देकर उसका अर्थ 'अपनी स्त्री और सेवक' किया है।

चाहे किसी मनुष्य का अन्तःकरण ईश्वर के स्त्री का होना और उसको वेद पढ़ाना न मानता हो किन्तु ऐसा मनुष्य भूतल पर एक भी न मिलेगा जो स्वामी जी के भाष्य को पढ़कर यह कह दे कि इस भाष्य में ईश्वर के स्त्री का होना और ईश्वर के द्वारा उसको वेद पढ़ाया जाना नहीं लिखा ?

आर्यसमाजियो ! यह तो आप भी मानते ही हैं कि ईश्वर के पत्नी है और वह वेद पढ़ती है, संभव है कि आप इस पति पत्नी के विवाह में बराती बन कर गये हो और आप लोगों ने खूब चकाचक माल उड़ाया हो तथा विवाह भी किसी आर्यसमाजी उपदेशक ने ही करवाया हो ? फिर आप ईश्वर को निराकार किस मुंह से कहते हैं।

मजा तो यह है कि ईश्वर के विवाह में बराती बनकर आर्यसमाजी जावें, माल आर्यसमाजी चबावें, ईश्वर का विवाह करवाकर दक्षिणा के टके आर्यसमाजी लावें, ईश्वर के एक स्त्री आर्यसमाजी बतलावें, उसका वेद पढ़ना संसार को आर्यसमाजी समझावें इतने पर भी साकार का मण्डन सनातनधर्मियों को करना पड़े क्या इसी का नाम इंसाफ है ?

नं० (२) यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति

यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।

इन्द्रो यो दस्यूंरधरां अवातिरन्

मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

ऋ० १।७।१२।५

आर्याभिविनय नं० ४४

हे मनुष्यो ! ‡ जो सब जगत (स्थावर) जड़ अप्राणी का और चेतना वाले जगत् का अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथ्वी का लाभ और उसका राज्य है और जो परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को नीचे गिरता है तथा उनको मार ही डालता है, आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् होके बुलावें, वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं।

समय बड़ा कठिन है, धार्मिक आर्यसमाजी उपरोक्त मंत्र की आज्ञानुसार आप तो नित्य ईश्वर को बुलालें और ईश्वर से मित्रता करें किन्तु जब कोई दूसरा मनुष्य ईश्वर की भक्ति करना चाहे तो उसको समझा दें कि ईश्वर के शक्ल नहीं वह तो सर्वथा निराकार है, न कहीं आता है न जाता है, सब जगह ठसाठस भरा है; उसका न कोई मित्र है न शत्रु-यह दुरंगी बात कैसी ? आप तो ईश्वर को बुलावें और उससे मित्रता करें और दूसरों को निराकार बतला दें; हमें तो यही अनुमान होता है आर्यसमाजी यह समझे बैठे हैं कि जो दूसरों ने ईश्वर को बुलाया और उनसे ईश्वर की मित्रता हो गई तो फिर वह ईश्वर आर्य-समाजियों के पास न आवेगा।

नं० (२) मानो वधीरिन्द्र मापरा दा

मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः ।

आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्

मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥

ऋ० १ । ७ । १६ । ८

आर्याभिविनय सं० ४६

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावे। हम से अलग आप कभी मत हो, हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावे, हमारे गर्भों का विदारण मत कर, हे सर्वशक्तिमन् ! समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को

‡ यह मंत्र और भाष्य दयानन्दकृत आर्याभिविनय से लिया है।

हमसे अलग मत कर, जो २ हमारे सहज अनुरक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि हे ईश्वर! हमारे पदार्थों को न तो तू खुद चुराना और न औरों से चुरवाना। पदार्थों की चोरी करना बिना शरीर धारी के हो नहीं सकता। आर्यसमाजियो में स्वार्थ की मात्रा विशेष पाई जाती है वे अपने लिये तो ईश्वर से नित्य यह प्रार्थना करते हैं कि हे ईश्वर! तुम हमारी चोरी मत करो किन्तु जब कोई दूसरा मनुष्य पूछता है कि ईश्वर कैसा है? तब वे बतला देते हैं कि बिल्कुल निराकार। आर्यसमाजियों को यह भय है कहीं संसार को यह मालूम हो गया कि इस मंत्र में की हुई प्रार्थना से ईश्वर प्रार्थना करने वाले की चोरी नहीं करता तो फिर संसार की चोरियाँ बन्द हो जावेंगी। आर्यसमाजी चाहते हैं कि हमारे घर की चोरियां बन्द हो जायं किन्तु अन्य संसार की चोरी होती रहें इस कारण ये लोग इस वेद मंत्र और स्वा० दयानन्दकृत मंत्र के भाष्य को छिपाया करते हैं।

यदि कोई दूसरा मनुष्य कह दे कि आर्याभिविनय में ईश्वर का पेशा चोरी करना लिखा है तब फिर ये चालबाजी के लम्बे चौड़े पैंतरे फेंकते हैं, कभी कहते हैं कि ऐसा लिखा ही नहीं, कभी कहते हैं इसका यह अभिप्राय ही नहीं। स्वामी जी के अभिप्राय पर चौका लगा अनेक नई नई मिथ्या कल्पनायें उठाते रहते हैं जब कुछ नहीं बनता तब इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं और ईश्वर के निराकार होने में उपनिषद् की श्रुतियां देने लगते हैं।

एक दिन फरह जिला मथुरा में 'ईश्वर स्वरूप' पर शास्त्रार्थ चला। आर्यसमाज की तरफ से संवादकाचार्य पं० रुद्रदत्त और सनातनधर्म की तरफ से शास्त्रार्थकर्ता हम थे, शास्त्रार्थ के सभापति यहां के मान्य, प्रतिष्ठित, रईस, पेंशनर इंस्पेक्टर ला० चिरंजीलाल जी हुये। हमने कहा कि ईश्वर साकार निराकार दो रूप रखता है, साकारता में हमने यही मंत्र प्रमाण में दिया, फिर क्या था पं० रुद्रदत्त चालबाजी के पैंतरे बदलने पर उतर पड़े। हमने भी उनके समस्त पैंतरों को काट डाला और इसी मंत्र को पकड़ लिया कि बिना शरीर के पदार्थों की चोरी? इतना अन्धेर? ईश्वर तुम्हारे बर्तन-व पड़े रोटी लड्डु रोज

चुराले और तुम उसको इतने पर भी निराकार मानो ? संपादकाचार्य जी ! आप पागलों की सी बातें छोड़ दें केवल इसका निर्णय करदें कि लड्डू जलेबी का चोर क्या निराकार हो सकता है ? जब घिर गये तब कहा कि स्वा० दयानन्द जी समझे नहीं-बेसमझी में लिख दिया ? इतना सुनते ही लोग हंस पड़े किन्तु हमने फिर पकड़ा कि जो दयानन्द परिव्राजकाचार्य, परमहंस, वेदज्ञ, योगी और महर्षि हो वह तो वेदतत्व को समझे नहीं और एक मनुष्य जो संस्कृत न जानता हो केवल अखबार लिख लेता हो वह वेदतत्व को समझ ले-यह हमारी बुद्धि में नहीं आया। अच्छा अब आप बतलावें कि स्वामी जी ने वेदभाष्य लिखते तथा लेख लिखते समय कहां २ गलतियां खाई हैं और आपने उसके विषय में क्या विवेचन किया है ? इस सबूत के लिये कम से कम आप स्वामी जी की पच्चीस गलतियों की लिस्ट दें और उनको गलती सिद्ध करें एवं उन गलतियों के ऊपर आप युक्ति युक्त प्रमाणों से पुष्ट अपना विवेचन दिखलावें तब हम मान लेंगे कि स्वामी जी ने गलती खाई है ? इसको सुनकर रुद्रदत्त ने कहा कि मैंने स्वामी के सब ग्रन्थ देखे हैं वे और तो कहीं नहीं भूले केवल इसी मंत्र पर भूल गये हैं-इतना सुनते ही बीस हजार पबलिक् हंस पड़ी। हमने कहा कि लोमड़ी उछली कूदी बहुत, जब बेरों तक न पहुँची तब यह कह कर चलदी कि अभी बेर खट्टे हैं, खाने के लायक नहीं हुये। इसी प्रकार संपादक जी ने पैंतरे खूब बदले किन्तु जब कुछ भी कामयाबी नहीं हुई तब यह कहने लगे कि दयानन्द ने अर्थ गलत किया है। अब हमें यह पूछना है कि यह अर्थ तुम्हारी दृष्टि में गलत है या दयानन्द जी की दृष्टि में ? बतलाओ, पं० रुद्रदत्त जी ने कहा स्वामी जी ने तो लिखा ही है, हमारी दृष्टि में गलत है। फिर हमने कहा कि बस शास्त्रार्थ तय हो गया, यह अर्थ स्वामी जी की दृष्टि में सही है इस कारण स्वामी जी ईश्वर का शरीर धारण करना मानते हैं। रही बात तुम्हारी, नहीं मालूम तुम नास्तिक हो या मुसलमान अथवा ईसाई, हम तुम्हारे सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ नहीं करते स्वामीजी के सिद्धान्तों पर कर रहे हैं जब स्वामी जी ईश्वर को साकार मानरहे हैं तब फिर हम यह कैसे मानलें कि ईश्वर कोरा निराकार है, बहस हो चुकी, फैसले के लिये आर्याभिविनय सभापति जी के आगे रखता हूँ। सभापतिजी ने आर्याभिविनय को खूब पढ़ा, पन्द्रह मिनट विचार किया अन्त में फैसला दिया कि पं० कालूरामशास्त्री जी ने स्वामी जी के लेख से ईश्वर की साकारता दिखलादी बस आर्यसमाज की हार होगई।

नं० (४) अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्नाःधूपयामि देवजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।

यजु०ऽअ० ३७ मंत्र ६

हे मनुष्य ! जैसे मैं (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) अग्नि आदि के (शक्ना) दुर्गंध के निवारण में समर्थ धूम आदि से (त्वा) तुझको (मखाय) वायु की शुद्ध करने के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक तपाता हूँ (पृथिव्याः) पृथ्वी के बीच विद्वानों के (देवयजने) यज्ञस्थल में (वृष्णः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (शक्ना) लेंड़ी लीद से (त्वा) तुझको (मखाय) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) तत्वबोध के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यज्ञ सिद्धि के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ (पृथिव्यां) भूमि के बीच (देवयजने) विद्वानों की पूजा स्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि के (शक्ना) तेज आदि से (त्वा) आपको (मखाय) उपयोग के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) उपयुक्त कार्य के लिये (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यश के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आपको और (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ ।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने भाष्य में स्पष्ट दिखला दिया है कि ईश्वर घोड़े की लेंड़ी से विद्वानों को तपाता है । केवल इतनी बात रह गई स्वा० दयानन्द जी ने यह नहीं बतलाया कि कब तपाता है, आर्यसमाज के जलसे में या विधवाविवाह में किन्तु तपाता अवश्य है । जो ईश्वर घोड़े की लीद बीन लावे और फिर उसको सुलगा कर विद्वानों को उस आग से तपा दे वह कभी निरा

कार हो सकता है ? यदि उसको भी आर्यसमाजी निराकार कहें तो फिर गजब है। संभव है कि हमारे भोले भाई आर्यसमाजियों की दृष्टि में तपाने वाला ईश्वर निराकार हो, तापने वाले आर्य विद्वान् निराकार हों, कुछ आश्चर्य नहीं है कि इनकी दृष्टि में घोड़ा भी निराकार हो।

इस लीद से तपाने पर एक रोज बड़ी हंसी आई, यह हमने पहिले एक ट्रेक्ट में लिखा था उस ट्रेक्ट को महाराजाधिराज श्री १०५ माधो जी राव शिन्दे ग्वालियर नरेश ने कहीं पढ़ लिया। एक रोज हम उनसे मिले तो उन्हों ने कहा कि हम आर्यसमाज के ऊपर केश चलाने के लिये पुलिस को हुक्म दे आये हैं, तीन महीने से हमारे रिसाले में घोड़ों की लीद का पता नहीं लगता, हमारा अनुमान है कि आर्यसमाज का निराकार ईश्वर ही हमारे तबेले को लीद उठा ले जाता है, उसी को सुखा कर आर्यसमाजियों को तपाता होगा।

नं० (५) प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
यजु० अ० ३१ मं० १६

हे मनुष्यो ! जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विशेष कर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील विद्वान् जन (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं।

हमने स्वा० दयानन्द जी का पदार्थ ज्यों का त्यों लिखा है। इस पदार्थ में ईश्वर का प्रकट होना और उसके स्वरूप को ध्यानशील पुरुषों का देख लेना लिखा है, जब उसके कोई स्वरूप है तभी तो प्रकट होता है और तभी उसके स्वरूप को ध्यानशील देखते हैं। निराकार पदार्थ जब तक साकार नहीं होगा तब तक उसका प्रकट होना नहीं बनेगा और जब तक कोई शक्ल नहीं होगी तो वह ध्यानशीलों को दीख नहीं सकेगा यहां पर स्पष्टरूप से स्वा० दयानन्द

जी ने ईश्वर को साकार माना है क्या इसके ऊपर आर्यसमाजी लोग विचार करेंगे ?

आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द के भाष्य को छिपाना चाहते हैं, हमको इसका कारण यह मालूम होता है कि अभी तो ईश्वर आर्यसमाजियों को ही दर्शन देता है यदि इस अर्थ को कोई दूसरा समझ गया तो फिर ईश्वर उस को भी दर्शन देने लगेगा तो उसकी मोक्ष हो जावेगी । दूसरों की उन्नति पर आर्यसमाजी जलते हैं इसी कारण छिपाते हैं ।

दयानन्द जी ने ईश्वर को वेद मंत्रों द्वारा शरीरी सिद्ध किया है,इन मंत्रों का दयानन्दभाष्य पढ़कर कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि स्वामी जी ईश्वर का शरीर धारण करना नहीं मानते। न्याय को आगे रख सभी को यह कहना पड़ेगा कि यहां पर तो स्वामी जी ने ईश्वर को शरीरधारी ही माना है।

इस के विरुद्ध आर्यसमाजी कभी तो दयानन्द के अर्थ का भाव बदलते हैं कभी स्वामी जी को मूर्ख बतलाते हैं ,कभी यह कहते हैं कि हम दयानन्द के लेख को ही प्रमाण नहीं मानते, कभी कभी यह कह चलते हैं कि स्वामी जी भारी विद्वान् थे उन के लेख को समझना हंसी खेल नहीं है। अनेक हुज्जतें लड़ाकर उपरोक्त पांच वेद मंत्रों का भाव संसार के सामने नहीं आने देते ।

मूर्तिपूजा

स्वामी जी ने जैसे ईश्वर को शरीरधारी वेद द्वारा सिद्ध किया है उसी प्रकार आप मूर्तिपूजा का मंडन भी वेद से ही लिखते हैं पाठक क्रम से पढ़ें।

नं० (६) संस्कारविधि पृ० १६४ इस पते पर आर्यसमाज की संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि 'अथ मनसा परिक्रमा मंत्राः' इस हेडिंग के बाद नीचे 'प्राचीदिगग्निरधिपतिः' इत्यादि वेद के छः मंत्र परिक्रमा करने के लिखे हैं। जिन मंत्रों से हमारे समाजी भाई नित्यप्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से ईश्वर की परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम करली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ घूमना निःसन्देह मूर्तिपूजन है क्योंकि बिना स्वरूप के शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती। हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य प्रति बनानी पड़ती है, यह दूसरी बात है कि सनातनधर्मी चार अंगुल या बिलस्त भर की मूर्ति बनाते हों और आर्यसमाजी भाई सौ दो सौ

मील लम्बी या पचास साठ मील चौड़ी बनाते हो परन्तु बिना मूर्ति के इनकी संध्या हो ही नहीं सकती। जब ये रोजाना संध्या करते हुये संध्या में ईश्वर की मन से परिक्रमा करते हैं तब क्या कोई भी विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि ये मूर्ति नहीं पूजते।

दयानन्द जी जो संध्या में ईश्वर की नित्य 'मनसा परिक्रमा' करना लिखते हैं क्या इतने पर वे मूर्तिपूजा का मण्डन नहीं करते?

नं० (७) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६६ में लिखा है कि 'पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खे' और संस्कारविधि पृ० १६८ में इसी के लिये लिखा है कि 'तत्पश्चात् निम्नलिखित मंत्रों से बलिदान करे'।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। इससे पूर्व

ओं सानुगाय यमाय नमः। इससे दक्षिण

ओं सानुगाय वरुणाय नमः। इससे पश्चिम

ओं सानुगाय सोमाय नमः। इससे उत्तर

ओं मरुद्भ्यो नमः। इससे द्वार

ओं अद्भ्यो नमः। इससे जल

ओं वनस्पतिभ्यो नमः। इससे मूसल और ऊखल

ओं श्रियै नमः। इससे ईशान

ओं भद्रकाल्यै नमः। इससे नैर्ऋत्य

सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि दोनों में यह लेख है। साथ चलने वाले गण सहित इन्द्र के लिये एक ग्रास का भोग पूर्व में रखने की आज्ञा स्वा० दयानन्द जी ने दी है एवं गण सहित यमराज के लिये एक ग्रास का भोग दक्षिण में, वरुण के लिये एक ग्रास का भोग पश्चिम और चन्द्रमा के लिये उत्तर में लिखा है, आर्यसमाजियो! यह क्या है? तुम बड़े हुज्जतबाज हो, अब चलाओ हुज्जत? यह इन्द्र कोई आर्यसमाजी है? इसके साथ कितने आदमी रहते हैं? इसका भोग पूर्व में रक्खा जाता है क्या यह कलकत्ते में रहता है? या कोई चीन का लामा है? और यह प्रत्येक आर्यसमाजी के यहां किस समय भोजन खाने को पहुँचता है? इसके साथ बहुत से नौकर हैं फिर क्या सबका

पेट एक ही ग्रास से भर जाता है ? यम का भोग दक्षिण में क्यों रक्खा गया,क्या कोई यम नाम वाला आर्यसमाजी अपने नकौर चाकरों को लेकर मद्रास में रहने लगा है ? यह पश्चिम में रहने वाला वरुण कौन है, क्या कोई शुद्ध किया हुआ काबुली पठान है ? और उत्तर में जो चन्द्रमा की बलि रखवाई है, यह चन्द्रमा कौन है ? संभव है आर्यसमाजियों को दाल, भात,रोटी परोस कर खिलाने वाला यह कोई उत्तर का भंगी हो ? आर्यसमाजियो ! इन्द्र, यम, वरुण, सोम ये कौन हैं और आर्यसमाजी इनको एक एक ग्रास भोजन क्यों देते हैं ? यहां पर तो चालाकी खेलने में चार लाख आर्यसमाजियों की बुद्धि का दिवाला निकल जायगा? ये कोई मनुष्य नहीं हैं वरन् इन्द्र, यम, वरुण, सोम ये वे ही चारों देवता हैं जिनको वेद ने देवता माना है और वेद के दुश्मन आर्यसमाजी जिनका खण्डन किया करते हैं। अक्ल को नीलाम करने वाले आर्यसमाजियो ! और करो मूर्ति-पूजा का खण्डन ? चक्खो मजा ? ये चारो देवताओं को भोग रखना क्या मूर्ति-पूजा नहीं है ? स्वामी दयानन्द जी ने तुमको बेवकूफ बना आखिर यहां मूर्तिपूजा करवा ली या नहीं ? यहां पर मूर्तिपूजा खण्डन करने वाले आर्यसमाजियों के गाल पर स्वामी जी ने वह थप्पड़ दिया है कि जब तक 'सत्यार्थप्रकाश' और 'पंचमहायज्ञविधि' तथा "संस्कारविधि" संसार में रहेगी आर्यसमाजी संसार को मुंह दिखलाने से छिपते फिरेंगे।

स्वामी जी ने चार ही देवताओं को भोग लगाना नहीं लिखा किन्तु पांचवें मंत्र में 'मरुत देवता' और छठे मंत्र से 'जल देवता' को भी एक एक ग्रास भोग देना लिख दिया है। सातवें मंत्र में स्वामी जी ने 'वनस्पतिभ्यो नमः' यह मंत्र पढ़कर ऊखल-मूसल को भोग लगाना लिखा,आर्यसमाजियो ! ये तुम्हारे दो देवता बड़े बिकट हैं एक गोल गोल गड्ढे वाला और एक लम्बा। जब देवता में देवता पड़े तब पड़ोसी भी घबरा उठें। कहो, तुमतो कहते थे कि हम मूर्ति नहीं पूजते तुमसे तो ओखली-मूसल तक नहीं बचा ? इतने बड़े पुजारी होकर तुम जो यह कहते हो कि हम मूर्ति नहीं पूजते क्या उस वक्त तुमको ऊखल-मूसल का भोग लगाना याद नहीं रहता या संसार की आंख में धूल झोंकना तुम्हारा पेशा हो गया है ? ओखली-मूसल के भोग को जब हम शास्त्रार्थ में रखते हैं तब आर्यसमाजी ऐसे फड़फड़ाते हैं जैसे बिना पानी की मछली फड़फड़ाया करती है। एक दिन गोरखपुर के प्रश्नोत्तर में इस ओखली-मूसल के भोग को हमने आगे रख दिया

तो आर्यसमाजी पंडित जवाब देता है कि हम तो ओखली-मूसल को भोग नहीं लगाते ? इसको सुनकर हमने कहा कि तुम दयानन्द को बेवकूफ समझ नास्तिक बन जाओ तो इसका हम क्या करें ? स्वामी जी ने ओखली-मूसल को भोग लगाना लिखा था नहीं ? हमारे इस कथन पर आर्यसमाजियों की नानी मर गई, अपनी कितावें बटोर कर फौरन चल दिये। आर्यसमाजियो ! हम खूब समझते हैं कि झूठ बोलना, चालाकी करना, धोखा देना ये तीन ही कर्तव्य तुम्हारे रह गये हैं काम पड़ने पर तुम दयानन्द जी को भी बेवकूफ बनाते हो इतने पर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती यह शोक है।

ओखली-मूसल के बाद स्वामी जी ने 'श्री' और 'भद्रकाली' का भोग लगाना लिखा है। तुम्हारी दृष्टि में ये दोनों कौन हैं ? क्या ये किसी कन्या विद्यालय की अध्यापिका हैं या कोई उपदेशिका ? तुम क्या समझ कर इनको भोग रखते हो, ये वे ही लक्ष्मी और भद्रकाली दुर्गा हैं जो पापियों का खून पी जाया करती हैं। इन भोग के दोनों मंत्रों पर बबयाल जिला अंबाला में आर्यसमाजियों ने बड़ी कच्ची खाई, जब कुछ उत्तर नहीं बना तब दुम दबा कर भागे। तुम तो दुर्गा की मूर्ति का खण्डन करते हो और फिर भोग क्यों लगाते हो, इसका क्या जवाब है ? तुम्हारे पास इसका कोई जवाब नहीं, लाचार होकर यही कहते हो कि कालूराम मूर्ख है, आर्यसमाज से वैर रखता है, हसननिजामी का नौकर है, उसके साथ कोई आर्यपंडित शास्त्रार्थ न करे। तुम यह बतलाओ कि कालूराम मूर्ख है या तुम ? तुम घर में तो 'श्री' और 'भद्रकाली' का भोग लगाओ और घर से बाहर निकल इनका खण्डन करो, ऐसा करना क्या यह मूर्खता नहीं है ? हमें विश्वास है कि तुम 'श्री' और 'भद्रकाली' के भोग पर मन ही मन गालियां देते हुये स्वामी जी को मूर्ख बतला रहे हो। यही तो मजा है कि बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों की दृष्टि में महर्षि स्वामी दयानन्द जी भी मूर्ख हैं, मालूम होता है कि अब तुम अपने मन से निराकार ईश्वर के चाचा गुरु बन गये हो, तुम्हारी इस दुरंगी चाल को संसार घृणा की दृष्टि से देखता हुआ तुमको नरपशु समझता है।

नं० (८) आर्याभिविनय पृ० १८ में लिखा है कि—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।

तेषां पाहि श्रुधीहवम् ।

ऋ० १ । १ । ३ । १

हे अनन्त बल परेश धायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो, हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) औषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आप के लिये अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आप के समर्पण किये गये हैं उन को आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) हम दीनों की दीनता सुन कर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है उस पर पिता अत्यंत प्रसन्न होता है वैसे आप हम पर होओ ।

यहां पर आर्यसमाज ने निराकार ईश्वर को गुर्च के अर्क का भोग लगाया है । भोग आर्यसमाज भी लगाता है और हम भी लगाते हैं अन्तर केवल इतना है कि हम लड्डू,पेड़ा,जलेबी,खीर,साग,पूरी,दाल,भात,रोटी का भोग लगाते हैं और आर्यसमाज गिलोय के अर्क का । संसार में हम देखते हैं कि तपेदिक के बीमार को गुर्च का अर्क पिलाया जाता है संभव है आर्यसमाजी ईश्वर को तपेदिक हो गया हो और इसी कारण से ये गुर्च का भोग लगते हैं । कहीं ऐसा न हो कि इस तपेदिक वाले ईश्वर का सनातनधर्मी ईश्वर के साथ विवाद ठन जावे यह तो वेचारा तपेदिक में बीमार है और सनातनधर्मियों का ईश्वर लड्डू-पेड़ा-हलुआ-रबड़ी,दूध खाकर पहलवान बन गया है यदि दोनों में कुश्ती चल गई और इस सनातनधर्म के पहलवान ईश्वर ने तपेदिकवाले ईश्वर के पेट पर पैर रख दिया तब तो बड़ी मुश्किल हुई, एक ही पैर के रखने से इस बीमार ईश्वर का राम नाम सत्य होजावेगा और आर्यसमाज को विना ईश्वर रहना पड़ेगा ।

एक बार आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म का शास्त्रार्थ ठना, सनातनधर्म की तरफ से यही मंत्र मूर्तिपूजा में हमने रक्खा, स्वा० पूर्णानन्द ने बहुत चाहा कि हम किसी तरह से इस मंत्र के पेंच में से निकल जावें किन्तु हमने नहीं निकलने दिया, अन्त में आर्यसमाज शास्त्रार्थ हार गया । गुर्च के अर्क का भोग लगाने वाला आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है इसको कोई भी मनुष्य किसी समय भी सिद्ध नहीं कर सकता ।

आर्यसमाजी इस पर बहुत घबराते हैं एक बार पं० कुन्दनलाल जी स्वामी मेरठ वालों ने यह कहा कि यह जो 'पान' करो, है इस के स्थान में

स्वा० दयानन्द जी ने 'पालन करो' लिखा था छपने में लकार उड़ गया अतएव 'पानकरो' होगया यह प्रेस की गलती है।

इस के ऊपर हमने कहा कि 'पाहि' क्रिया का अर्थ स्वामी जी ने 'पानकरो' लिखा है उस पर आप यह कल्पना उठाते हैं, कल्पना आप की मिथ्या है क्योंकि 'पाहि' का अर्थ निरुक्त ने 'पिब' किया है जिस की हिन्दी भाषा होती है कि 'पियो' इस को सुन कर स्वा० छुट्टनलाल चुप रह गये।

निराकार को सोमवल्ली के अर्क का भोग लगाना पूजा है 'स्वामीजी ने अपने अर्थ में इस का मंडन किया है फिर कौन कहता है कि स्वामीजी पूजा को नहीं मानते।

नं० (६) घृतेन सीता मधुना समज्यतां
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
स्मान्त्सीते पयसाभ्या वबृत्स्व ॥

सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल वा दुग्ध से पराक्रम सम्बन्धी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी तथा सहत वा शक्कर आदि से संयुक्त करो, पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से जल से वार २ वर्ताओ।

आर्यसमाज के मत में लकड़ी का पटेला (पहटा) जिससे खेत की मिट्टी एक सी की जाती है पूजनीय वस्तु है। जब पटेले के ऊपर जल, घी, दूध, शक्कर-शहद चढ़ाया जाता है तब यह पटेले का पूजन नहीं तो और क्या बलाय है। जो सोसायटी लकड़ी के पटेले का पूजन करे और वह फिर मूर्तिपूजन से डरे तो यह उसकी भूल नहीं तो और क्या है।

कुम्हारा के शास्त्रार्थ में हमने यह मंत्र पेश किया, आर्यसमाज की तरफ से शास्त्रार्थ करने वाले पं० प्रयागदत्त अवस्थी जी ने कहा कि यह झूठ बात है ऐसा नहीं लिखा। हमने उत्तर दिया क्या आर्यसमाजियों को जन्मघुटी के साथ ही झूठ बोलना सिखलाया जाता है जो लिखा रहने पर भी जबर्दस्ती से इन्कार करते हैं? कैसे नहीं लिखा, बराबर लिखा है, आप उसका जवाब नहीं दे सकते इस कारण कहते हैं कि नहीं लिखा? इतना सुनते ही पंडित जी ने आर्यसमाजी अन्य पंडितों से कहा कि उठा कर देखियो क्या लिखा है? हमारे समीपस्थ बरौली

ग्राम निवासी महाशय ईश्वरीप्रसाद कुर्मी ने वेद उठा कर एकदम पढ़ दिया, बीस हजार पबलिक में कहकहा मच गया, जितने आर्यसमाजी पंडित थे सब लज्जित हो गये। हमने अवस्थी जी से कहा कि हमारा कथन तो आपने असत्य माना था किन्तु अब तो आपने एक आर्यसमाजी से पढ़वाया है, अब दीजिये जवाब ? जवाब क्या था, अवस्थी जी को चुप हो जाना पड़ा।

आर्यसमाज स्वामी लिखित इस पटेले के पूजन को जान बूझ कर छिपाती है, इसके छिपाने का कारण यह है कि यदि दूसरे लोग जान जावेंगे तो वे भी पटेला पूजने लगेंगे और यह पटेला उनको घी, दूध, शक्कर, पानी, शहद देने लगेगा तो आर्यसमाजियों के हाथ से एक बड़ा भारी रोजगार निकल जावेगा।

नं० (१०) संस्कारविधि पृ०७३ में लिखा है कि—

ओं ओषधे त्रायस्व एन ᳪ मैनᳪ हिᳪसीः।

इसका अर्थ यह है कि 'भो ओषधे ! एनं बालं त्रायस्व एनं मा हिंसी:' हे ओषधि कुश ! इस बालक की रक्षा कर इसको मत मार।

कुशा तृण है, तृण से जीवन प्रार्थना करना निःसन्देह मूर्तिपूजा है।

नं० (११) संस्कारविधि पृ० ७४ में लिखा है कि—

ओं विष्णोर्दᳪष्ट्रोसि।

इसका भावार्थ यह है कि हे छुरे ! तू विष्णु की दाढ़ है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि इनके मत में विष्णु तो निराकार और उस निराकार विष्णु के चार २ अंगुल की दाढ़ तथा तरक्की के जमाने में विष्णु की दाढ़ भी तरक्की कर गई।

देशी छुरा तो चार ही अंगुल का होता था किन्तु अब बिलायती छुरा आठ आठ अंगुल का आता है। अब कुछ दिन से इनके निराकार ईश्वर की आठ आठ अंगुल की दाढ़ हो गई। जिसके इतनी बड़ी बड़ी दाढ़ हो और वह सर्वथा निराकार रहे इस बात को कोई भी विचारशील मान नहीं सकता। हम कैसे मान लें कि छुरा निराकार ईश्वर की दाढ़ है। कोई माने या न माने आर्य-समाजियों को तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि उनकी धर्मपुस्तक में लिखा है। आगे चल कर फिर संस्कारविधि पृ० ७३ में लिखा है कि—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिंसीः ।

इसका भाषा यह है कि हे तेजधार वाले छुरे ! शिव तेरा नाम है और लोहा तेरा बाप है मैं तुझे नमस्ते करता हूँ ।'मामा हिंसीः' इतने पद को लेकर आगे छुरे से प्रार्थना की जाती है कि—

ओं स्वधिते मैनथ्ठं हिंसीः ।

सम्वत् १९३३ की छपी संस्कारविधि में स्वा० दयानन्द जी ने इस मंत्र का भाषा लिखा था कि 'हे छुरे ! तू इस बच्चे को मत मार'। स्वा०दयानन्द जी के स्वर्ग वास होने के पश्चात् आर्यसमाज ने यह समझा कि इस भाषा टीका से तो साधारण मनुष्य भी छुरे से प्रार्थना करनी समझ जावेंगे अतएव यह भाषा टीका संस्कारविधि से निकाल दिया गया, चाहे निकाल दें और चाहे रखलें अर्थ मंत्र का यही होगा जो स्वा० दयानन्द जी ने लिखा था ।

सच्चाई किसी की छिपाई नहीं छिपती, 'अन्ततो गत्वा' रामगोपाल विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी ने स्वामी जी कृत संस्कारविधि पर "संस्कार प्रकाश" नामक टीका लिखा और वह टीका गोविन्दराम-हासानन्द जी ने सम्वत् १९८४ में छपवाया, उस में "स्वधिते मैनंं हिंसीः" इस मंत्र का भाषा टीका लिखा है कि 'हे लोहे ! इस बालक को हानि मत पहुँचाना"

छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू इस बच्चे को मत मार, निःसन्देह मूर्तिपूजा है फिर कौन कहता है कि आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है ? हमने एक दिन एक मनुष्य से एक कविता सुनी थी वह यह है ।

देव मूर्ति कभी न पूजें पूजें छुरा जो नाइयों का ।
अजब हाल संस्कारविधि में आर्यसमाजी भाइयों का ॥

स्वामी जी ने मूर्तिपूजा को अपने ग्रंथों में भली भांति लिखा है जिसको हम ऊपर दिखला आये हैं किन्तु आर्यसमाजी इस पूजा को नहीं चाहते ।

मृतकश्राद्ध

नं० (१२) स्वामी दयानन्द जी ने 'प्रथमावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश' में मृतक पितरों का ही श्राद्ध लिखा था किन्तु सम्वत् १९४० की शुभ तिथि नरक चतुर्दशी को स्वामीजी का शरीर पात होगया। सम्वत् १९४१ में जो द्वितीयावृत्ति 'सत्यार्थप्रकाश' आठ पंडितों ने बनाया तब इस सत्यार्थप्रकाश में जोवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया ।

स्वामी जी का बनाया प्रथमावृत्ति ही सत्यार्थप्रकाश था द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश उनका बनाया नहीं है। आर्यसमाजी जो द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को स्वा० दयानन्द का बनाया बतला रहे हैं यह मिथ्या है।

इस विषय में संयुक्तप्रान्त आर्यप्रतिनिधि सभा के सभापति, समस्त उपदेशकों के प्रबन्धक, सामवेदभाष्यकार, भास्कर प्रकाश के लेखक, वेदप्रकाश के सम्पादक माननीय स्वर्गीय पं० तुलसीराम जी स्वामी लिखते हैं कि सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति आर्यसमाज प्रयाग की बनाई और वैदिक प्रेस कमेटी की निगरानी में छपी है। देखो वेद प्रकाश अगस्त सन् १९१० ई० पृ० १८२।

इस लेख से स्पष्ट सिद्ध है कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज प्रयाग ने बनाया है और स्वामी जी के मरने के बाद बना है। जब यह मामला शास्त्रार्थ में आता है तब आर्यसमाजी अपनी चालाकियों से जैसे दयानन्द जी को झूठा ठहराते हैं उसी प्रकार हमारे मित्र स्वर्गीय पंडित तुलसीराम स्वामी जी को भी झूठा बना देते हैं और जब इनके आगे कोई दूसरा पंडित डट जाता है तब ये दूसरे पहलू पर चल जाते हैं, कहने लगते हैं कि स्वामी जी ने तो प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में जीवित पितरों का ही श्राद्ध लिखा था किन्तु सनातनधर्मी कंपाजीटरों ने उसके स्थान में मरों का लिख दिया। कैसा जाल बनाया, श्रुति-स्मृति आर्यसमाजियों से विरोध रखती हैं, आर्यसमाजियों के विरुद्ध चलती हैं, बस इनका कोई आधार है तो जाल बनाना है। (१) कंपाजीटरों से एक अक्षर की हेरा फेरी या न्यूनाधिकता होती है इसको सभी प्रेसोंवाले जानते हैं। कंपाजीटर पंडित नहीं होते जो किसी किताब के दो चार पृष्ठ लिख डालें? कंपाजीटरों के जिम्मे झूठा कलंक लगाना पिण्ड छुड़ाने के सिवाय और कुछ भी फल नहीं देता। (२) कल्पना करो कि कंपाजीटरों ने ही मिला दिया तो प्रूफ तो स्वा० दयानन्द जी ने ही देखा था यह तो भास्कर प्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि प्रूफ स्वामी जी ने देखा है, प्रूफ देखते समय कंपाजीटरों की मिलावट को क्यों नहीं निकाला। (३) फिर स्वा० दयानन्द जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का शुद्धाशुद्ध पत्र बनाया, सब अशुद्ध पद तो स्वामी जी को दीख गये किन्तु मरे पितरों का श्राद्ध जो दो पृष्ठ में लिखा है यह नहीं दीखा, अच्छा न्याय है। (४) इस के बाद स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का विषयसूची बनाया तब भी कंपाजीटरों की मिलावट न जान पड़ी, यहां पर सब विषय तो स्वा० दयानन्द जी को दीखे किन्तु मृतकों का श्राद्ध न दीखा। इन चार बातों का जवाब आर्य-

समाज तब तक नहीं दे सकती जब तक कि आर्यसमाज का अस्तित्व संसार में विद्यमान है। चालबाजियों से स्वा० दयानन्द जी के लेखों को चूट से कुचलना यह चार लाख आर्यसमाजियों के लिये भयंकर लज्जा का अवसर है।

नं० (१३) जाने दो स्वा० दयानन्द जी के पुराने ग्रंथों को। आजकल जो ग्रन्थ चालू हैं, जिन को आर्यसमाज मानती है उन में भी तो पितरों का श्राद्ध-तर्पण और पितरों के नाम का हवन लिखा है? संस्कारविधि पृ० ६४ नामकरण संस्कार में जहां तिथि और तिथि के देवता, नक्षत्र और नक्षत्र के देवताओं के नाम से हवन करना लिखा है वहां पर मघा नक्षत्र और मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम से भी आहुति देनी लिखी है। यहां पर ही अमावास्या तिथि और इस के स्वामी पितरों के नाम से हवन करना लिखा है, क्या मघा के स्वामी और अमावास्या के स्वामी पितर जिन के नाम का हवन होता है वे जीवित आर्यसमाजी हैं?

नं० (१४) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाःपितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमः मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यःस्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि।

हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि यह तर्पण क्या जीवित पितरों का है? यदि सच ही जीवतों का है तो आर्यसमाजी बतलावें कि कौन २ आर्यसमाजी सोमसद हैं जिन का यह तर्पण है? और अग्निष्वात्त पितर कौन हैं, किस २ आर्यसमाजी के बाप दादा बर्हिषद हैं एवं किस२ आर्यसमाजी के घर में सोमपा नाम के पितर निवास करते हैं। कौन२ आर्यसमाजी अपने पितरों को हविर्भुक् मानते

हैं ,किसर आर्यसमाजी ने अपने पितरौ का नाम आज्यपा रक्खा है जब इन शब्दों के अर्थ किये जायंगे और इन पितरौ का निवासस्थान पूछा जायगा एवं जब यह सवाल होगा कि वे पितर कौन हैं जो बिल्कुल अन्न नहीं खाते केवल आज्यपा हैं घी पी कर रहते हैं इतना पूछते ही आर्यसमाजियों को मूक होजाना पड़ता है।

नं० (१५) संस्कारविधि पृ० १६६ बलिदान में लिखा है कि—

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः।

इस मंत्र को पढ़ कर एक ग्रास भोग पितरौ के लिये दक्षिण दिशा में रख दे। क्या यह दान जीवित पितरौ के लिये रक्खा जाता है? (१) दक्षिण की तरफ क्यौं? क्या यह कोई कानून है कि जितने पितर हौ वे दक्षिण दिशा मद्रास वगैरह में रहें और छोटी२ उम्र के आर्यसमाजी लोग दरभंगा,मुजफ्फरपुर,नैपाल और गंगोत्तरी में रहें? (२) समस्त जीवित पितरौ के लिये यह एक ग्रास अन्न पर्याप्त है? इस एक ग्रास को खाकर समस्त जीवित पितरौ का पेट भर जावेगा? (३) यह जीवित पितरौ का श्राद्ध है या फांसी? घर में दश पांच जितने भी जीवित पितर होंगे उन सब को एक ग्रास ही अन्न दिया जायगा, अधिक अन्न देने की स्वामी जी की आज्ञा ही नहीं। एक ग्रास से पेट न भर कर जब पितर 'हाय भूखे मरे-हाय भूखे मरे' कह कर चिल्लावेंगे तब यही जवाब दिया जायगा कि चाहे तुम मरो या बचो, महर्षि के लेख के मुताबिक तुम सब को एक ही ग्रास अन्न मिलेगा। हम इतने नास्तिक नहीं हैं जो महर्षि की आज्ञा का उल्लंघन करें। अब बतलाओ यह जीवित पितरौ का श्राद्ध करना है या तड़फा कर भूखों मारना,इस से अच्छा तो यही है कि तुम एक ग्रास अन्न से भी इन्कार कर दो, जो कुछ होना होगा हो जावेगा इस एक ग्रास अन्न दान को जीवतौ के लिये कोई नहीं कह सकता।

नं० (१६) संस्कारविधि पृ० ११४ समावर्तन प्रकरण में लिखा है कि "हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिण मुख होके " ओं पितरः शुन्धध्वम्,, इस मंत्र से जल भूमि पर छोड़ दे,,।

यदि श्राद्ध तर्पण जीवित पितरौ का ही होता है तो फिर हाथ में जल लेना कैसा? क्या आर्यसमाजियों के घरों में लोटा गिलास,कटोरा, कुछ भी नहीं रहता? क्या इनकी कुर्की होगई? या ये सब होटलों में ही खाकर गुजारा करते हैं, गरीब से गरीब उर में भी एक दो बर्तन रहते हैं पीतल के न

सही तो मिट्टी के ही सही, क्या आर्यसमाजियों के यहां मिट्टी का भी कोई बर्तन नहीं ? क्या वजह है जो वे अपने जीवित पितरों को वर्तन से जल न देकर हाथ से देते हैं ?

स्वा० दयानन्द जी हैं बड़े मसखरे, वे लिखते हैं कि 'अपसव्य होकर' अपने जीवित पितरों को पानी पिलाया करो। अपसव्य होना, जनेऊ को दक्षिण कंधे से हटा कर बायें कंधे पर धरना यह कोई आर्यसमाज की सभ्यता है या इसमें कोई गूढ़ फिलास्फी है ? वेदादिक सच्छास्त्रों में तो मृतक पितरों के अन्न-जल देने पर ही अपसव्य होना लिखा है। आर्यसमाजी जो जीवित पितरों के जलदान के समय अपसव्य होते हैं इस अपसव्य होने का कोई छिपा हुआ वेद मंत्र इन को जरूर मिलगया है नहीं तो क्या इनका सिर फिरा था।

कहीं जाड़े का हो महीना, रात का हो समय और कपड़े ओढ़े हुये पड़े हों अब आई मुश्किल। पहिले रजाई उतारो, फिर कोट, उस के बाद वास्कट को दूर धरो, कमीज निकाल कर अलहदा फेंको, सलूके को उतार कर दूर पटको फिर अपसव्य होकर पानी दो। मजा रहा, बाप तो प्यासे मर गये क्योंकि ये जल भी पेट भर के न देंगे और आप मुफ्त में ही जा मरे, यदि ऐसे में लग जाय ठंडी हवा तो पहिले राम नाम सत्य बाप का हो या बेटे का इसको आर्यसमाजी ही समझ लें।

स्वा० दयानन्द जी यह भी लिखते हैं कि "दक्षिण की तरफ मुख कर के" यह क्यों ? मालूम होता है कि भारत के उत्तर भाग में आर्यसमाजियों का रोजगार नहीं चलता अतएव उन के पितर पूर्व उत्तर पश्चिम भारत में बिल्कुल ही नहीं रहते। यहां पर जो दक्षिण की तरफ को मुख करना लिखा है यह स्पष्ट सिद्ध कर देता है कि आर्यसमाजियों के जीवित पितर निजाम हैद्राबाद के यहां नौकर हो गये हैं तभी तो दक्षिण की तरफ को मुख किया जाता है, नहीं तो दक्षिण दिशा में मुख करने की क्या जरूरत ?

आर्यसमाजी अपने पितरों को जल भी कितना पिलाते हैं कि जितना एक हाथ में आ सकता हो उतना, और किसी पितर को अधिक प्यास हो तो बनी रहे ये तो अधिक नहीं पिलावेंगे क्योंकि स्वामी जी ने एक ही चुल्लू पानी पिलाना लिखा है। इन की आज्ञा के विरुद्ध एक गिलास या एक लोटा पिला कर आर्य-समाजियों को ईसाई अथवा मुसलमान नहीं बनना है। फिर स्वामीजी लिखते हैं कि वह जल जमीन में छोड़ दे, फूट गई आर्यसमाजियों के पितरों की तकदीर

वह एक चुल्लू जल भी पितरों को न मिला,जमीन में छोड़ा गया। जमीन में छोड़ने का मतलब क्या ? क्या तर्पण करने वाले महाशय के पितर जमीन के अन्दर बैठे हैं जो उस जल को गह गह पीजावेंगे ? यह तर्पण जीवित पितरों का हो सकता है ? आर्यसमाजियो ! तुम हमें बेवकूफ मत बनाओ, यह मत कहो कि यह तर्पण जीवित पितरों का है।

विधवा विवाह निषेध

नं० (१७) सत्यार्थप्रकाश पृ० १११ में लिखा है कि

किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये। (प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है ? (उत्तर) (पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना, क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ संबन्ध करले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति वा स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा लेजाना और उन के कुटुम्ब वालों का उन से झगड़ा करना (तीसरा) बहुत से भद्र कुल का नाम वा चिन्ह भी न रह कर उस के पदार्थ छिन्न भिन्न होजाना(चौथा) पतिव्रत और स्त्री व्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह व अनेक विवाह कभी न होना चाहिये।

यहां पर स्वामी जी द्विजों में अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष का तो पुनर्विवाह होना लिखते हैं किन्तु क्षत योनि स्त्री और क्षत वीर्य पुरुष के विवाह का निषेध करते हैं, यह तो यहां की कथा है। आगे चल कर क्षत योनि तथा अक्षत योनि दोनों प्रकार की स्त्रियों का और क्षत वीर्य तथा अक्षत वीर्य दोनों प्रकार के पुरुषों का द्विजों में विधवा विवाह का सर्वथा निषेध करेंगे।

नं० (१८) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११४ में लिखा है कि "द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं"।

इस लेख में पीछे लिखे अक्षत वीर्य पुरुष और अक्षत योनि स्त्री के पुनर्विवाह का भी खण्डन कर दिया है। यह लेख द्विजों में विधवा विवाह का सर्वथा निषेध करता है।

नं० (१९) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२२ में लिखा है कि "कुमार्य्योः स्त्री पुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात्। पुनरेवं नियोगश्च, नैव द्विजेषु द्वितीयवारं

विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधीयते तस्य विद्याऽव्यवहार रहितत्वात्" ।

'कुमार स्त्री पुरुष का एक ही वार विवाह विधान किया है,फिर विवाह नहीं होता नियोग होता है द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) में द्वितीय वार विवाह का विधान नहीं। पुनर्विवाह का तो शूद्र वर्ण में विधान है, क्योंकि उसको विद्या व्यवहार की शून्यता है,।

आर्यसमाजियों को स्वा० दयानन्द जी का यह लेख साधु जान पड़ता है या असाधु ?

नं० (२०) संस्कारविधि पृ० १६५ में लिखा है कि"एक स्त्री के लिये एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है"।

इन लेखों से स्वामी जी द्विजों में विधवा विवाह का निषेध लिखते हैं।

वर्णऽव्यवस्था

स्वा० दयानन्द जी वर्णव्यवस्था जन्म से मानते हैं इसके उदाहरण इस प्रकार हैं।

नं० (२१) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८८ में लिखा है कि" (प्रश्न) जाति भेद ईश्वर कृत है वा मनुष्य कृत ? (उत्तर) ईश्वर कृत और मनुष्य कृत भी जाति भेद हैं। (प्रश्न) कौन से ईश्वर कृत और कौन से मनुष्यकृत ? (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी वृक्ष,जल, जन्तु आदि, जातियां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ,अश्व,हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट,आम्र,आदि, पक्षियों में हंस,काक,बकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य,मकरादि जाति भेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य शूद्र अन्त्यज जाति भेद ईश्वर कृत हैं।

यहां पर स्वामीजी ने मनुष्य जाति में ब्राह्मणादि जातियां ईश्वरकृत मानी हैं, ईश्वरकृत कार्य में कोई तबदीली नहीं कर सकता इसलिये तुम्हारा लगाया गुण, कर्म स्वभाव का अड़ंगा निष्प्रयोजन है।

नं० (२२) सत्यार्थप्रकाश पृ० २८ में लिखा है कि"८वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें"।

यहां पर स्वामी जी ने जाति भेद वर्णव्यवस्था को जन्म से माना है। द्विजों को आचार्यकुल में प्रवेश करवाया है और शूद्रों को आचार्यकुल में फटकने नहीं दिया, उन के पढ़ने के लिये गुरुकुलों की व्यवस्था लिख दी। द्विजों के लड़कों का उपनयन करना लिखा और शूद्रों के लड़कों के उपनयन का निषेध किया यह बात सनातनधर्म मानता है।

नं० (२३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ में लिखा है कि "ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके। यह सुश्रुत के सूत्र स्थान के दूसरे अध्याय का बचन है। ब्राह्मण-तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, क्षत्रिय-क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण का यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उसको मंत्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे - यह मत अनेक आचार्यों का है।

सुश्रुत का मत यह है कि ब्राह्मण तीन वर्णों के, क्षत्रिय दो के, वैश्य एक का उपनयन करके उनको अध्ययन करवावे। सुश्रुत का मत नहीं है कि शूद्र को अध्ययन करवाया जावे, सुश्रुत से भिन्न कई एक आचार्य शूद्रों का अध्ययन मानते हैं किन्तु शूद्रों का उपनयन होना और मंत्र भाग पढ़ाना नहीं मानते।

नं० (२४) स्वामी जी संस्कारविधि पृ० ७६ में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन ही वर्णों का उपनयन लिखते हैं और तीन ही वर्णों के लिये उपनयन के आरंभ में क्रम से पयोव्रत, यवागू, आमिक्षा ये तीन व्रत बतलाते हैं आपने अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में गृह्यसूत्र, मनु और शतपथ के प्रमाण भी दिये हैं। स्वामी जी के मत में तीन ही वर्णों का उपनयन संस्कार होता है, शूद्र का नहीं। उपनयन में वर्ष संख्या एवं भिन्न भिन्न प्रकार के पृथक् २ व्रत जाति को जन्म से सिद्ध करते हैं।

नं० (२५) नामकरण संस्कार में स्वामी जी ने ब्राह्मण बालक का नाम शर्मा और क्षत्रिय बालक का नाम वर्मा तथा वैश्य के बालक के नाम के अन्त में गुप्त लगा कर नाम रखना लिखा है। ११ दिन के बच्चे की जाति गुण-कर्म-स्वभाव से कभी हो नहीं सकती, नाम करण में वर्णव्यवस्था जन्म से ही है। सनातनधर्मी इसको प्रमाण मानते हैं, आर्यसमाजी स्वामी जी के इस लेख से अत्यन्त चिढ़ते हैं।

फलित ज्योतिष्।

नं० (२६) गर्भाधान संस्कार में स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि 'उन

अनुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी-अमावास्या-चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस-को छोड़ देवें इन तिथियों का छोड़ना ज्योतिष् के जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में लिखा है एवं स्वामी जी ने इसको प्रमाण माना है।

नं० (२७) नाम करण प्रकरण में स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि 'इस मंत्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के चार घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो।

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा।
ओं अश्विन्यै: स्वाहा। ओं अश्विभ्यां स्वाहा॥

इन सूत्रों को टिप्पणी देकर स्वामी जी लिखते हैं कि—

तिथिदेवता:—१-ब्रह्मन्। २-त्वष्टृ। ३-विष्णु। ४-यम। ५-सोम। ६-कुमार। ७-मुनि। ८-वसु। ९-शिव। १०-धर्म। ११-रुद्र। १२-वायु। १३-काम। १४-अनन्त। १५-विश्वेदेव। ३०-पितर।

नक्षत्र देवता:—अश्विनी-अश्वी। भरणी-यम। कृतिका-अग्नि। रोहिणी-प्रजापति। मृगशीर्ष-सोम। आर्द्रा-रुद्र। पुनर्वसु-अदिति। पुष्य-बृहस्पति। आश्लेषा-सर्प। मघा-पितृ। पूर्वाफाल्गुनी-भग। उत्तराफाल्गुनी-अर्यमन्। हस्त-सवितृ। चित्रा-त्वष्टृ। स्वाति-वायु। विशाखा-चन्द्राग्नी। अनुराधा-मित्र। ज्येष्ठा-इन्द्र। मूल-निर्ऋति। पूर्वाषाढा-अप्। उत्तराषाढा-विश्वेदेव। श्रवण-विष्णु। धनिष्ठा-वसु। शतभिषज्-वरुण। पूर्वाभाद्रपदा-अजपाद्। उत्तराभाद्रपदा-अहिर्बुध्न्य। रेवती-पूषन्।

गर्भाधान में एकादशी आदि तिथियों का फल नेष्ट लिखा है इस कारण स्वा० दयानन्द जी ने इन का त्याग किया है और तिथि, तिथि देवता, नक्षत्र, नक्षत्र देवताओं की नामकरण में आहुतियां देना इसको गोभिल गृह्यसूत्र शुभ फल-दायक मानता है इसकारण स्वामी जी ने संस्कार विधि में आहुति चतुष्टय का ग्रहण किया है फिर कौन कहता है की स्वामी जी फलित ज्योतिष् को नहीं मानते? उपरोक्त दोनों प्रकरणों को देख कर सभी विचारशील यह कहते हैं कि दयानन्द जी को ज्योतिष् का फलित प्रमाण है।

हां—जो स्वामी जी को देश का शत्रु और मूर्ख समझते हैं वे आर्यसमाजी कहा करते हैं कि फलित ज्योतिष् ब्राह्मणों के कमाने खाने का ढोंग है ।

देवजाति

नं० (२८) स्वा० दयानन्द जी देवजाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते हैं, इसकी पुष्टि में वे सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में लिखते हैं कि "सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः । सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः । वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः ।"

इन देवताओं को जो स्वा० दयानन्द जी ने एक एक ग्रास का भोग लगवाया है कोई भी विद्वान् आर्यसमाजी इनकार नहीं कर सकता, ये मनुष्य जाति से भिन्न देवजाति के इन्द्रादि देव हैं यह इनके नामों से और भोग से स्पष्ट झलकता है ।

नं० (२९) सत्यार्थप्रकाश के इसी प्रकरण में 'वास्तुपतये नमः' यह मंत्र पढ़ कर एक ग्रास भोग रखना लिखा है । 'वास्तुपति' मकान के देवता को कहते हैं । जितने भी आर्यसमाजी हैं और उनके जितने मकान हैं उनका एक एक मकान का देवता है, इसको आर्यसमाजी नहीं जानते क्योंकि ये पढ़े लिखे नहीं, स्वामी जी विद्वान् थे, वे जानते थे कि एक वास्तुपति आर्यसमाजियों के मकान का देवता होता है वह भूखा न रहे इस कारण उन्होंने इस देवता के लिये एक ग्रास भोग देना लिख दिया । कोई भी मनुष्य इस देवता को मानव जाति का विद्वान् पुरुष नहीं कह सकता ।

नं० (३०) नामकरण संस्कार में स्वामी जी ने सोलह तिथियों के सोलह देवता और सत्ताइस नक्षत्रों के सत्ताइस देवता लिखे हैं । वहां पर स्वामी जी का जो लेख है वह हमने ऊपर फलित ज्योतिष् में दे दिया है उसको ऊपर से ही पढ़लें ।

इतिहास-पुराण

स्वामी जी भारत के इतिहास-पुराण को भी प्रमाण वैसे ही मानते हैं जैसे कि सनातनधर्मी प्रमाण में लेते हैं ।

नं० (३१) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि "जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने किया और जैसा व्यास जी ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य के मरजाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं'।

नं० (३२) सत्यार्थप्रकाश पृ० ८२ में लिखा है कि 'महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे'।

यहां पर स्वामी जी ने इतिहास को प्रमाण माना है अब आर्यसमाजी किस मुंह से कह सकते हैं कि इतिहास-पुराण हमको प्रमाण नहीं ?

यहां पर स्वामी जी ने अवतार, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, द्विजों में विधवा-विवाह निषेध, जन्म से वर्णव्यवस्था, फलित ज्योतिष्, देवजाति, इतिहास-पुराण की प्रामाणिकता, वेदानुकूल तथा आर्षग्रन्थप्रतिपाद्यपद्धति के अनुसार लिखी है इसको देख कर आर्यसमाजी बड़े घबराते हैं, क्रोध के मारे स्वा० दयानन्द जी से इतने चिढ़ जाते हैं कि 'मूर्ख, तक कह डालते हैं। स्वामी जी ने इन विषयों का वैदिक ग्रन्थानुकूल मण्डन क्या किया आर्यसमाज को बिना मौत लम्बे चौड़े मैदान में प्यासा मार डाला। संसार में जब तक आर्यससमाज का एक एक बच्चा जीता रहेगा तब तक स्वामी जी को गालियां मिलती रहेंगी। अब आर्यसमाज कुछ भी करे किन्तु यहां तो स्वामी जी वैदिकता का मण्डन कर गये।

प्रमाण पञ्चक

शास्त्रकारों ने प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान शाब्द इन चार प्रमाणों को माना है। किसी ने छः और किसी ने आठ प्रमाण भी माने हैं किन्तु छः और आठ प्रमाण भी इन्हीं चार के अन्तर्गत आजाते हैं इस कारण शास्त्र में चार ही प्रमाण प्रधान हैं। प्रत्येक बात की सत्यता एवं असत्यता के लिये ये चार प्रमाण कसौटी हैं। जिस सिद्धान्त का इन चार में से किसी प्रमाण ने मण्डन किया

वह मान्य और चारों के मण्डन से बाहर निकल जाने पर सिद्धान्त अमान्य हो जाता है।

दयानन्द के मत के लिये ये चारों ही प्रमाण दिया सलाई का काम कर जाते हैं, दयानंद के प्रत्येक सिद्धान्त के ये चार प्रमाण शत्रु हैं इसकारण स्वामी जी ने इन प्रमाणों को सर्वथा ही छोड़ दिया, उन्हों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये पांच प्रमाण नये बनाये हैं, उन्हीं पांच प्रमाणों से वे अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं, उनके प्रमाणों के ये नाम हैं(१) गाली देना (२)झूठबोलना (३) चालाकी करना (४) धोखादेना (५) हठ बांध बैठना।

जब कोई मनुष्य स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर बैठता था तब वे मूर्ख होने के कारण जवाब तो दे नहीं सकते थे- एक दम गालियां देने लगते थे। शास्त्रार्थ कर्ता स्वामी जी को इस नीचता को देख कर चुप हो जाता था, उसके चले जाने पर स्वामी जी अपने मूर्ख शिष्यों से कहने लगते थे कि देखो हमने कैसा फटकारा? हमको जीत ने आया? जब हमसे बड़े २ हार गये तो इस विचारे का अस्तित्व ही क्या है जो हमको जीतले?

अब दूसरे प्रमाण की कथा सुनिये। जब स्वा० दयानन्द जी के पास दो चार विद्वान् मनुष्य शास्त्रार्थ करने जाते थे तब स्वामी जी झूठ बोलने लगते थे, कहने लगते थे देखो वायु पुराण में लिखा है कि भद्र की घोड़ी ने ऊंट का बच्चा पैदा किया? ऐसे अप्रामाणिक ग्रन्थ कभी प्रमाण नहीं हो सकते? किसी के तो सब ग्रन्थ देखे नहीं होते, ऐसे मनुष्य मान जाते थे कि संभव है ऐसा लिखा हो? यह सुन कर सुनने वाले चुप रह जाते थे और जिसका ग्रन्थ पढ़ा होता था वह कह देता था कि स्वामी जी! ऐसा नहीं लिखा, तुम झूठ बोलते हो? इतना सुनते ही स्वामी जी कहने लगते थे कि तू हमको झूठा बतलाता है? तू झूठा और तेरे बाप-दादा झूठे। इस तरह से झूठ बोल बोल के जान बचालेते थे।

तीसरा शास्त्रार्थ इनका इस प्रकार होता था कि जब कोई मनुष्य इनसे आकर विवाद करता था तब ये कहते थे कि जो अर्थ तुमने किया इसमें प्रमाण क्या है? वह उत्तर में किसी भाष्यकार या ऋषि का नाम लेता था तब स्वामी जी कह देते थे कि ये सब झूठ लिख रहे हैं। उसके बोले हुये प्रमाण का एक आश्चर्यमय अर्थ बना देते थे जिस फर्जी अर्थ में काव्य कोष, निरुक्त, निघंटु कुछ भी प्रमाण न मिले। स्वामी जी का अर्थ वैसा ही होता

थे जैसे ऊंट का अर्थ चूहा और छुछूंदर का अर्थ रेलगाड़ी,ऐसे ही असम्भव अर्थों से स्वामी जी ने यजुर्वेद का भाष्य लिखा है। जब ऐसे अनर्थकारी अर्थों से शास्त्रार्थ करने वाला चकित रह जाता था तब स्वामी जी कह देते कि हां तुम इन बातों को अभी नहीं समझते, कुछ दिन और पढ़ो? इस प्रकार की चालाकी करना स्वामी जी के लिये बायें हाथ का कर्तव्य था।

चतुर्थ—बाज बाज जगह स्वामी जी धोखे से काम ले लेते थे। किसी मनुष्य ने शास्त्रार्थ में शतपथ का प्रमाण दिया तो स्वामी जी फौरन कह देते थे कि इसको हम नहीं मानते? शतपथ वेद नहीं है? और जब आप शतपथ का प्रमाण दें और यदि कोई दूसरा कह दे कि आप तो शतपथ को मानते ही नहीं फिर उसका प्रमाण क्यों देते हो? तब कह बैठते थे कि हमारा प्रमाण वेदानुकूल है। यदि वेदानुकूलता उसने पकड़ ली तो स्वामी जी हार गये, नहीं तो धोखा देकर जीत जाते थे।

शास्त्रार्थ में स्वामी जी को यदि ठीक प्रमाण दे दिया गया और उस प्रमाण को स्वामी जी के मनने मान भी लिया किन्तु ऊपर से यही कहते रहते थे कि यह गैर मुमकिन है, ऐसा कभी हो नहीं सकता। हठ के जरिये से शास्त्रार्थ के विजय करने के पुलाव पकाने लगते थे यह उनका पंचम प्रमाण है।

स्वामी जी ने वाणी द्वारा जो कुछ भी काम किया इन पांच ही प्रमाणों के अवलम्बन से किया और उन्होंने जितने ग्रन्थ लिखे इन पांच प्रमाणों के सहारे से लिखे। आज हम विस्तार पूर्वक यह दिखलावेंगे कि स्वामी जी के ग्रन्थों में इन्हीं पांच प्रमाणों के अवलम्बन से लेख लिखे गये हैं पाठक इसको ध्यान से पढ़ें।

गालियां

आज हम स्वामी जी के प्रथम प्रमाण के कुछ उदाहरण जनता के आगे रखते हैं जनता उनको पढ़कर यह पूर्ण ज्ञान कर सकेगी कि स्वामी जी किस श्रेणी के मनुष्य थे और उनका अन्तःकरण कितना पवित्र था।

नं० (१) सत्यार्थप्रकाश पृ० ७० में स्वामी जी लिखते हैं कि 'तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है'।

क्या मजा है श्रुति का बतलाने वाला कुये में गिर पड़े, ऐसे मीठे शब्द दयानन्द को छोड़कर संसार में कौन लिख सकता है?

नं० (२) वैष्णवों का खण्डन करते समय सत्यार्थप्रकाश पृ० ३१२ पं०

७ में लिखा है कि प्रथम इनका मूलपुरुष शठकोप हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डोम ने बनाया है उनमें लिखा है 'विक्रीय सूर्पं विचचार योगी' इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना,बेचकर विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था'।

स्वामी जी जब वैष्णवों का खण्डन न कर सके तो उनको झूठे कलंक लगाने लगे। किसी भी वैष्णव ग्रन्थ तथा भक्तमाल में 'विक्रीय सूर्पं' यह नहीं लिखा ? स्वामी जी को जब वैष्णवों में कोई सच्चा दोष नहीं मिला तब फिर झूठे दोष लगाकर खण्डन न करें तो क्या करें। खण्डन रूपी भूत के जकड़े हुये स्वा० जी जब झूठा भी खण्डन न कर सके तब गालियां देने लगे। आपका क्रोध रुक न सका, आपने शठकोप को 'कंजर' लिख दिया शठकोप कंजर नहीं था, स्वा० जी क्रोध में आकर कंजर झूठ लिखते हैं क्या कोई आर्यसमाजी शठकोप को कंजर सिद्ध करने की शक्ति रखता है ? यदि रखता हो तो लेखनी उठावे, नहीं तो मानना पड़ेगा कि क्रोधी कलियुगी ऋषि ने झूठी गाली दी है।

नं० (३) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ०३१२ पं० १५ में लिखा है कि उस (शठकोप) का चेला मुनिवाहन जो कि चाण्डालवर्ण में उत्पन्न हुआ था।

हमने आज तक चार ही वर्ण सुने थे किन्तु आज एक पांचवां चाण्डाल वर्ण और मिला। एक दिन शिवशर्मा के साथ शास्त्रार्थ हो रहा था, उस शास्त्रार्थ में उनके मुंह से निकल गया कि वर्ण तो चार ही हैं। हमने इसके उत्तर में कहा आपको मालूम नहीं है वर्ण पांच हैं ? वे खूब उछले कूदे कि यदि आप पांच वर्ण सिद्ध कर दें तो हम शास्त्रार्थ की हार स्वीकार करलें हमने उठाकर सत्यार्थ-प्रकाश की यह चाण्डाल वर्ण वाली इबारत पढ़ दी। शिवशर्मा बोले कि पांचवें वर्ण की सिद्धि में शास्त्र का प्रमाण दीजिये। दयानन्द के इस लेख को संसार में एक भी आर्यसमाजी नहीं मानता ? यह मजा रहा, आर्यसमाजियों की दृष्टि में भी स्वा० दयानन्द जी को उन्माद है, स्वामी जी का 'मुनिवाहन' को चाण्डाल लिखना क्या यह गाली नहीं है ? क्या कोई आर्यसमाजी 'मुनिवाहन' को चांडाल सिद्ध कर सकता है ? यदि कोई कर सकता हो तो लेखनी उठावे नहीं तो आर्यसमाज को यह मानना पड़ेगा कि जब स्वामी जी खण्डन न कर सके तब गाली देने पर टूट पड़े।

नं० (४) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि उस (मुनि-

वाहन) का चेला यावनाचार्य यवनकुलोत्पन्न था।

मजा रहा, स्वामी जी अब अपने असली स्वरूप पर आये, आप गालियों से ही अपना विजय समझे हैं। यह किसी भले आदमी का काम नहीं है कि किसी अन्य सम्प्रदाय के आचार्य को कंजर-चाण्डाल-मुसल्मान कहने लगे। स्वामी जी की खूबी तब थी जब शठकोप को कंजर और मुनिवाहन को चाण्डाल तथा यावनाचार्य को मुसल्मान प्रमाणों से सिद्ध करते। प्रमाणों का तो निकल गया दिवाला? प्रमाण तो एक भी मिला नहीं, खण्डन करें तो क्या करें? और क्रोध भयंकर आ गया, अन्त में गालियां देने लगे। गाली देने से ही आर्यसमाज ने स्वामी जी को 'महर्षि' पदवी दी है यदि सच ही यावनाचार्य जाति के मुसलमान थे तो फिर कोई आर्यसमाजी कलम क्यों नहीं उठाता क्या आर्यसमाजियों की विद्या-बुद्धि-विचार सभी नष्ट हो गये जो समस्त आर्यसमाजी चुप्पी साध कर बैठ गये।

नं० (५) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१२ पं० ८ में लिखा है कि भक्तमाल ग्रन्थ जी नाभा डूम ने बनाया है।

अब क्या था, अब तो स्वामी जी को खण्डन की सड़क मिल गई, अब आप खुल्लम खुल्ला गालियाँ देने लग गये। नाभा जी को डूम कह कर आपने उनके लेख का खण्डन समझ लिया। कौन कहता है कि नाभा जी डूम थे? जो आर्यसमाजी कहता हो वह लेखनी उठा कर नाभा जी को डूम सिद्ध करे-नहीं तो मानना पड़ेगा कि ये गाली देने वाले स्वामी खण्डन में विवस होकर गालीदेने पर उतारू होगये हैं। गाली देना यह किस का काम है इसकी विवेचना मैं आर्यसमाजियों पर ही छोड़ता हूँ।

स्वा० दयानन्द जी कापड़ी जाति में उत्पन्न हुये थे और लड़कपन में इनका पेशा गाना तथा नाचना था यह बात सोलह आने सच है और 'दयानन्द छल कपट दर्पण' आदि बीसियों ग्रन्थों में लिखी है इतने पर भी जब दयानन्द जी को कापड़ी बतलाते हैं तो आर्यसमाजी हमसे बिगड़ जाते हैं और कहते हैं कि तुम झूठ बोलते हो, झूठ बोलना विद्वानों का काम नहीं। पाठको! जो हम सच कहते हैं तब तो आर्यसमाजी हम पर बिगड़ते हैं और हमारे इस कार्य को बुरा बतलाते हैं और जो स्वामी दयानन्द जी बिलकुल ही झूठ बोलकर शठकोप को कंजर-मुनिवाहन को चाण्डाल-यावनाचार्य को मुसल्मान एवं नाभा जी को डूम

कह रहे हैं इस गाली गलौज के लेख को पढ़कर खुश होते हैं, बाजारों में नाचते हैं और स्वा० दयानन्द जी को देशोद्धारक-महर्षि-वेदतत्व ज्ञाता कहते हैं । कहो तो सही क्या ये आर्यसमाजी पागल नहीं हैं ?

नं० (६) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३७१ पं० २४ में रामसनेही को रांडसनेही लिखा है ।

क्या मधुर भाषण है मानो स्वामी जी की वाणी से फूल टपकते हैं ।

नं० (७) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३३२ में वृन्दावन अब था तब था अब तो वेश्या बन है यह लिखा है ।

स्वामीजी का जब क्रोध न रुका तब वृन्दावनको वेश्याबन लिख दिया लेकिन शोक है कि आर्यसमाजियों ने इस लेख को झूठ माना,सच मानते तो इस वेश्याबन में गुरुकुल न खोलते । भला वेश्याबन में गुरुकुल का क्या काम ? वेश्याबन में तो तबलचीकुल, सारंगीकुल, हारमोनियमकुल, पखावजीकुल खुलने चाहिये किन्तु आर्यसमाजियों ने वृन्दावन में गुरुकुल खोल स्वामी जी के इस लेख को असत्य सिद्ध कर दिया अस्तु जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ ।

नं० (८) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२० में लिखा है कि मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं है किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है ।

बलिहारी है स्वामी जी के इस मधुर लेख और विज्ञान पर । क्या मधुर शब्दों में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं हो सकता था ? जब मूर्तिपूजा दूषित है तो फिर स्वामी जी ने नाई के छुरे और ओखली मूसल का पूजन ही लेखनी से क्यों लिखा !

क्या कोई आर्यसमाजी संसार में यह हिम्मत रखता है कि मूर्तिपूजा को खाई और दयानन्द के पुजवाये हुये ओखली मूसल एवं नाई के छुरे (उश्तरे) से मनुष्य का कल्याण सिद्ध कर दे ?

नं० (९) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१६ में लिखा है कि 'सुनो अन्धो ? पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है' ।

स्वामी जी का 'सुनो अंधे' यह लेख आर्यसमाजियों को सुनहरी अक्षरों में लिखकर अपने कमरों में लटकाना चाहिये ताकि उनके लड़के भी इतने ही मधुर भाषी बन जावें ।

रही आने जाने की बात, इसके विषय में स्वामी जी ने आर्याभिविनय के

'तमीशानं' इस मंत्र के भाष्य में ईश्वर को बुलाया है। जब ईश्वर कहीं आते ही जाते नहीं तो फिर इस मंत्र में स्वामी जी ने ईश्वर का आह्वान क्यौं किया? ईश्वर को बुलाया क्यौं? क्या कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वामी जी के बुलाने से ईश्वर चला आता हो और सनातनधर्मियौं के बुलाने से उसका आना जाना वेद विरुद्ध पड़ जाता हो, इसका विवेचन आर्यसमाजी ही करेंगे।

नं० (१०) सत्यार्थप्रकाश समु० २ पृ० २५ में लिखा है कि 'जो कोई बुद्धिमान उनको भेंट पांच जूता दंडा व चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं'।

आर्यसमाजियो! तुम बतलाओ कि स्वामी जी के ये शब्द कटु हैं या मधुर? सच्चे हैं या झूठे? क्या तुम इस बात पर तैयार हो गये हो कि जूते लगा कर हनुमान-देवी और भैरव को भगा दो? शोक है कि इस प्रकार की गालियां देने वाले को आर्यसमाजी महर्षि लिखते हैं।

नं० (११) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३५६ में लिखा है कि 'जब उन्हौं से दण्ड न पाया तो इनके कर्मों ने पुजारियौं को बहुत सी मूर्ति विरोधियौं से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है और जब तक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी।

यहां पर स्वामी जी मूर्तिपूजा को कुकर्म और विदेशियौं के द्वारा भारत के पददलित होने को 'प्रसादी' लिखते हैं, अच्छा है किन्तु अब तो भारतवर्ष में चार लाख आर्यसमाजी हो गये और सभी आर्यसमाजियौं ने चारौं वेद कंठ कर लिये फिर भी प्रसादी ज्यौं की त्यौं बनी हुई है तो क्या अब कोई विचारशील यह मान लेगा कि वेद का पढ़ना भी कुकर्म है? मूर्तिपूजा या वेद के पढ़ने ने भारत को पददलित नहीं करवाया, पददलित होने में कारण परस्पर की फूट है मूर्तिपूजा नहीं क्या कोई मनुष्य यह सिद्ध कर सकता है कि भारतवर्ष मूर्तिपूजन से ही पददलित हुआ जो कर सकता हो वह लेखनी उठावे?

नं० (१२) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२१ में लिखा है कि 'आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं'

आर्यसमाजियो? देखो स्वामी जी के क्या मधुर शब्द हैं मगर शोक है की तुम इनसे शिक्षा नहीं लेते। यह महर्षि का लेख है इससे शिक्षा लो और

ऐसे ही मीठे मीठे शब्द तुम भी उच्चारण किया करो जिससे आर्यसमाज की सभ्यता सातवें आसमान पर जा विराजे।

नं० (१३) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३०५ में लिखा है कि 'उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं'।

ईश्वर पूजक शंकर की स्थापना करने वालों के लिये स्वा० दयानन्द जी के ये मधुर बचन हैं। इतने मधुर बचन कोई आर्यसमाजियों को कहे तो आर्य-समाजी घर में घुसकर रोवें या मार पीट कर बैठें। कविरत्न पं० अखिलानन्द जी ने 'देवसभा में वेदों की अपील' नामक एक छोटी सी पुस्तक लिख दी थी, आर्यसमाजी उसका उत्तर तो दे नहीं सके क्योंकि वर्तमान समय में एक भी आर्यसमाजी ऐसा नहीं जो कभी स्वप्न में भी श्रुति-स्मृति को देखता हो। आर्य-समाजी तो मोटी दृष्टि से यही जानते हैं कि ईसाई धर्म ही वैदिक धर्म है। लाचार होकर कई एक आर्यसमाजियों ने संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट के बूटों को नमस्ते किया तब वह पुस्तक जप्त हुई किन्तु यह छाती सनातनधर्मियों की है जो दयानन्द की अनुचित गालियों को सह लेते हैं, क्या कभी इन गालियों पर आर्यसमाजियों को लज्जा आती है या नहीं?

नं० (१४) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३११ में लिखा है कि 'अपने २ शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें'।

क्या मधुर शब्द हैं। स्वामी जी खण्डन करने की अपेक्षा गाली देना अच्छा समझते हैं, यहां पर तो स्वामी जी वैसी ही गालियां देने लगे जैसी औरतें रांड-निपूती आदि मधुर शब्द बोलकर दिया करती हैं।

नं० (१५) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४० में लिखा है कि 'वाहरे वाह भागवत के बनाने वाले लालबुझक्कड़! क्या कहना तुझको, ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अंधा ही बन गया। ...... भला इन महाझूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई !!! इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? ... जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता'।

यहां पर तो स्वा० दयानन्द जी ने भठियारियों को भी मात कर दिया। गाली क्या लिखी, गालियों का जंकशन बना दिया, यद्यपि आर्यसमाजी यह हुल्लड़ मचाया करते हैं कि भागवत व्यास की बनाई नहीं है परन्तु जहां २ पर इस विषय में आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ हुआ वहां २ पर आर्यसमाज फेल हुआ और सनातनधर्म द्वारा यह निरन्तर सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत के रचयिता भगवान् वेद व्यास हैं। व्यास के लिये यह गालियों का जंकशन लिखा गया है, इसके एक एक पद में गाली है। क्या सम्पादक की यही विवेचना होती है कि किसी के लेख का जब तुम खण्डन न कर सको तब गालियों पर उतारू हो जाओ? यह मनुष्य का काम नहीं।

कभी २ अपने व्याख्यान में कविरत्न पं० अखिलानन्द जी 'भागवत' इसके स्थान में 'सत्यार्थप्रकाश' और 'भागवतादि' के स्थान में 'सत्यार्थप्रकाशादि' करके पढ़ देते हैं उस समय यह पाठ ऐसा हो जाता है।

वाहरे वाह सत्यार्थप्रकाश के बनाने वाले लालबुझक्कड़। क्या कहना तुझको ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई, निपट अंधा ही बन गया। ......भला इन महा झूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई, इन सत्यार्थप्रकाशादि के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये। क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।

इसको सुन आर्यसमाजी चिढ़कर आपे से बाहर हो जाते हैं। क्या आर्यसमाजी ही अन्न खाते हैं और सनातनधर्मी नहीं खाते? क्या आर्यसमाजियों को ही क्रोध आता है सनातनधर्मियों को नहीं आता? जिस समय सनातनधर्मी 'सत्यार्थप्रकाश' में इस लेख को पढ़ते हैं पढ़ते ही स्वामी जी और सत्यार्थप्रकाश इन दोनों पर रोष आजाता है, स्वामी जी ने यहां पर एक दो गालियां नहीं दीं गालियों की श्रेणी बना दी। इतने आवेश में आ गये कि 'लज्जा और शरम' लिख गये। स्वामी जी की दृष्टि में 'लज्जा' और है और 'शरम' और चीज है, हम आर्यसमाजियों से नम्र होकर यह अपील करेंगे कि 'सत्यार्थप्रकाश' से परस्पर में फूट और द्वेष फैलाने वाली गालियां निकाल दी जायं।

नं० (१६) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३५६ में लिखा है कि 'इस निर्दयी

कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में ध्यान न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता'।

एकादशी व्रत की विधि पुराणों में है। आर्यसमाज की दृष्टि में चाहे पुराण कितने ही बुरे हों और उनका बनाने वाला चाहे कोई अनपढ़ जंगली हो किन्तु बाइस करोड़ हिन्दुओं की दृष्टि में पुराण भारत के पवित्र इतिहास के कहने और वेदार्थ को स्पष्ट कर देने वाले हैं, इनके रचयिता विष्णु के सत्रहवें अवतार भगवान् वेद व्यास हैं, उन्हीं के लिये कसाई पदवी दी है यह दयानन्द की सभ्यता है, इसको पढ़ कर अन्य धर्म के मनुष्य को भी रोष आ जाता है।

इस प्रकार के असभ्य गाली गलौज के लेख किसी सभ्य मनुष्य की लेखनी से लिखे नहीं जा सकते। इन लेखों को देख गालियां पढ़ प्रत्येक मनुष्य को मानना पड़ता है कि स्वा० दयानन्द जी के चित्त में लोभ वृत्तियाँ थीं।

❋ असत्य ❋

हमने इस बात का उदाहरण दिखला दिया कि जब स्वामी जी से कुछ करते धरते नहीं बनता तब वे सब मनुष्यों को गालियां देकर गालियों से अपना विजय करने पर उतारू हो जाते हैं। अब हम यह दिखलावेंगे कि जिस समय सत्य बात से स्वामी जी पराजित हो उठते हैं तब वे झूठ बोलने पर एकदम टूट पड़ते हैं, उनमें इतनी शक्ति है कि वे समस्त संसार को झूठे होने की डिगरी दे अपने को विजयी, सत्यवक्ता करार दे दें। आज हम कुछ ऐसे लेख पाठकों के आगे रखते हैं कि जिन लेखों में स्वामी जी ने पेट भर कर झूठ बोला और इस कुकृत्य से उन्होंने अपना विजय मान लिया। उदाहरण देखिये—

नं० (१७) सत्यार्थप्रकाश पृ० १३४ में लिखा है कि—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ।

नाना प्रकार के रत्न, सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवें।

स्वा० दयानन्द जी विरक्त थे, जब उनको धन लोलुपता ने घेरा तब स्वार्थ-

सिद्धि के लिये मनु के श्लोक को काट छांट कर ऊपर लिखे मुताबिक बना लिया। यह श्लोक मनु में इस प्रकार है।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥६

मनु० अ० ११

वेदज्ञाता और त्यागी ब्राह्मणों को जो यथाशक्ति धन देता है वह मर कर स्वर्ग में जा सुख भोगता है।

स्वामी जी ने श्लोक ही लौट दिया, पाठ भी बदला और श्लोक का भाव भी बदला, ब्राह्मणों के बजाय संन्यासी को रत्न देने लिख दिये। मानना पड़ेगा कि या तो स्वामी जी को उन्माद है नहीं तो धनलोलुपता रूप स्वार्थ ने स्वामी जी से यह पाप करवाया है।

नं० (१८) सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २२५ में लिखा है कि

'मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त।

यह यजुर्वेद में लिखा है'।

दोनों श्रुतियां यजुर्वेद में नहीं हैं। यजुर्वेद का नाम स्वामी जी ने झूठ लिखा। सन् १९१२ में कासगंज में शास्त्रार्थ हुआ, आर्यसमाज की तरफ से स्वा० दर्शनानन्द जी और सनातनधर्म की तरफ से पं० अनोखेलाल भजनोपदेशक तिलहर थे। पं० अनोखेलाल जी ने कहा कि ये दोनों श्रुतियां यजुर्वेद में नहीं हैं। दर्शनानन्द जी ने कहा हैं। पं० अनोखेलाल ने स्वामी जी के आगे यजुर्वेद रख दिया कि दिखलाओ ? स्वामी जी नहीं दिखला सके और शास्त्रार्थ हार गये, तब से "और उसके ब्राह्मण में" इतना पाठ बढ़ाया गया। अब इबारत यह हो गई कि 'यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है'। अब भी आर्यसमाज यजुर्वेद का नाम झूठ ले रही है, यजुर्वेद में दोनों श्रुतियां नहीं हैं। जो मन्त्र वेद में नहीं वेद के नाम से उनको झूठ लिखना किसी धार्मिक मनुष्य को शोभा नहीं देता। जो झूठ लिखे उसको कोई भी मनुष्य धार्मिक नहीं कह सकता। क्या किसी आर्यसमाजी में इतनी हिम्मत है जो इन दोनों श्रुतियों को यजुर्वेद में दिखलादे ? यदि आर्यसमाज नहीं दिखला सकती तो स्वा० दयानन्द जी के झूठे लेख को सत्य मानना क्या कलंक नहीं है ?

नं० (१९) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४३ में लिखा है कि हिरण्याक्ष को वराह

ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथ्वी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथ्वी को मुख में धर लिया, वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई, वराह ने हिरण्याक्ष को मार डाला।

यह कथा श्रीमद्भागवत के नाम से लिखी गई है, इसका लिखना भूठ नहीं वरन् सुफेद भूठ है। हिरण्याक्ष ने न तो पृथ्वी को उठाया और न चटाई की भांति लपेटा एवं न वह पृथ्वी को ले गया। सब बातें भूठी हैं प्रकरण देखिये।

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता।
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः॥१७॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३

मैं सृष्टि रचना चाहता था किन्तु जल से डूबी हुई पृथ्वी रसातल को चली गई। अब हम सर्ग रचना में लगे हुये लोगों को क्या करना चाहिये।

यह ब्रह्मा का कथन है, यहां पर जल द्वारा पृथ्वी का डूबना स्पष्ट लिखा है, हिरण्याक्ष का पृथ्वी ले जाना नहीं लिखा। बात यह है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति आई नहीं थी उसका निर्माण हुआ वह वजन अधिक होने के कारण जल के नीचे चली गई। सत्रह के अध्याय में यह कथा है। हिरण्याक्ष ने वरुण से कहा कि हमारा तुम्हारा संग्राम हो जाय? वरुण ने उत्तर दिया तुम बड़े बलवान् हो हम तुमसे नहीं लड़ सकते; तुम विष्णु से लड़ो वह तुम्हारे जैसे दुष्टों को मार कर जमीन में सुला देगा। विष्णु कहाँ हैं इस बात का पता लगाने के लिये हिरण्याक्ष नारद के पास गया, नारद ने बतलाया कि विष्णु वराह रूप धारण करके जल में डूबी हुई पृथ्वी को लेने के लिये रसातल गये हैं। अठारहवें अध्याय में लिखा है कि—

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः।
हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदा
द्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः॥१॥

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं
प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया
जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

श्री० भा० स्कं० ३ अ० १८

हे विदुर जी ! विष्णु भगवान् के हाथ से तू मरण हो प्राप्त होगा इस प्रकार तिन वरुण जी के कथन को सुनकर मन में हर्षित हुआ वह मदोन्मत्त हिरण्याक्ष तिस कथन पर कुछ ध्यान न दे और नारद ऋषि से 'श्रीहरि कहां हैं' यह जान बड़ी शीघ्रता से रसातल को चला गया ।१। तहां अपनी दाढ़ के अग्र-भाग से पृथ्वी को ऊपर निकाल कर धारण करने वाले आस पास के सकल वीरों को जीतने वाले और नेत्रों की आरक्त कान्ति से अपने (हिरण्याक्ष के) तेज को लुप्त करने वाले तिन वराह रूप श्रीहरि को देख कर वह हिरण्याक्ष दैत्य हंस कर कहने लगा, अहो कैसा आश्चर्य है कि वन में (स्तुति पक्ष में वन कहिये जल में) विचरने वाला यह मृग अर्थात् वराह पशु (स्तुति पक्ष में मृग कहिये योगीजन जिनकी खोज करते हैं ऐसे श्री नारायण) यहां जल में दीख रहा है ॥ २ ॥

पूर्व के श्लोक से यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी को जल ने डुबाया था और इन दो श्लोकों में यह सिद्ध है कि जब हिरण्याक्ष वराह की खोज में रसातल को चला और उसको रास्ते में वराह मिले तब वराह के दांत पर स्थित पृथ्वी को हिरण्याक्ष ने देखा-अब कौन कह सकता है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को चटाई की भांति लपेट और शिरहाने धर कर सो गया। नहीं मालूम स्वामी जी श्रीमद्भागवत पर झूठा कलंक क्यों लगाते हैं ? झूठी कथा लिख संसार को धोखा क्यों देते हैं ? या तो इस कारण से झूठ लिखा है कि झूठ लिखने से आर्यसमाज हमको महर्षि की पदवी दे देगी या स्वामी जी को कुछ उन्माद है, असली बात क्या है इसका विवेचन आर्यसमाजी करेंगे हमको तो केवल इतना ही दिखलाना था कि स्वामी जी का यह लेख सर्वांश में असत्य है।

नं० (२०) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४३ में लिखा है कि तब वह (प्रह्लाद) अध्यापकों से कहता था कि मेरी पट्टी में राम राम लिख देओ। जब उसके बाप ने सुना उसने कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है ? छोकरे ने न माना।

तब उसके बाप ने उसको बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आग में तपा के उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शंका हुई कि बचूंगा वा नहीं? नारायण ने उस खंभे पर छोटी छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई।

भागवत में यह कहीं नहीं लिखा कि प्रह्लाद कहता था मेरी पट्टी पर राम राम लिख दो और न भागवत में खंभे का गर्म करना लिखा है एवं न उसके ऊपर चीटियों का चलना। जब स्वामी जी को भागवत में कोई दोष न मिला तब बनावटी दोष बनाकर भागवत को अप्रमाण बनाया। संसार में लोभ बड़ी चीज है, लोभ के कारण ही स्वामी जी ने यह झूठ लिखा है, उनको इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि यदि हम झूठ लिखकर संसार को धोखा न देंगे तो आर्यसमाजी हमको परिव्राजक, वेदज्ञाता-महर्षि प्रभृति उपाधियां न देंगे। स्वामी जी ने निष्प्रयोजन झूठ नहीं लिखा उपाधि पाने के लोभ से लिखा है किन्तु है झूठ। स्वामी जी के इस झूठ लेख को त्रिकाल में भी कोई आर्यसमाजी सत्य सिद्ध नहीं कर सकता।

नं० (२१) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४४ में लिखा है कि—

"रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति।

अक्रूर जी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठ के सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुँचे अथवा घोड़े भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे? वा मार्ग भूल कर भागवत बनाने वाले के घर में घोड़े हांकने वाले और अक्रूर जी आकर सो गये होंगे?

ऊपर लिखा हुआ आधा श्लोक श्रीमद्भागवत में नहीं है। सन् १९११ में आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म सभा बहिराइच का शंका समाधान हुआ। सनातनधर्म की तरफ से पं० बाबूराम जी महोपदेशक भारतधर्म महामंडल और आर्यसमाज की तरफ से पं० रुद्रदत्त संपादकाचार्य थे, यही शंका संपादकाचार्य ने बाबूरामजी के आगे रक्खी, बाबूरामजी ने कहा यह पाठ श्रीमद्भागवत में नहीं है, भागवत के नाम से स्वामी जी ने झूठ लिखा है, यह स्वामी जी का संसार को धोखा देना है। संपादकाचार्य ने कहा कि आप गलत कहते हैं, यह पाठ भाग.

पत में है और हम दिखला सकते हैं इस झगड़े के लिये म्युनिस्पेल्टी के सैक्रेटरी पांडेय जी ने श्रीमद्भागवत मंगवाकर संपादकाचार्य को दे दी—यह पाठ उसमें नहीं मिला। संपादकाचार्य को नीचा देखना पड़ा। इस घटना के बाद सम्वत् १९६९ में यह पाठ 'रथेन वायुवेगेन भा० स्कं० १० अ० ३९ श्लोक ३८। जगाम गोकुलं प्रति भा० स्कं० १० पू० अ० ३८ श्लोक २४' ऐसा कर दिया गया।

स्वामी जी के झूठ को छिपाने के लिये उद्योग तो किया, किन्तु कर न जाना। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा-भानमती ने कुनबा जोड़ा। टाट की अंगिया मूज की तनी-कहो मेरे बलमा कैसी बनी' की कहावत को सत्य कर दिया। चौथाई श्लोक ३९ के अध्याय का ३८ वां लिया और शेष ३८के अध्याय का २४वां श्लोक लिया,इस प्रकार से पाठ दिखलाया। पहिले ३९ वें अध्याय का पाठ और फिर३८के अध्याय का। आर्यसमाज जैसे सब जगह उल्टी चलती है वैसे यहां भी उल्टी ही चली,इन दोनों श्लोकों का परस्पर में सम्बन्ध कोई विचारशील मनुष्य जोड़ सकता है? ईश्वर न करे संसार में ऐसी अन्वय चल जावे नहीं तो आर्य-समाज का 'आजसमार्य' हो जावेगा। आर्यसमाजी उल्टे चले, कहीं का कहीं सम्बन्ध जोड़ा तब भी स्वा० दयानन्द का अर्थ इनसे न निकला। फिर स्वामी के लिखे आधे श्लोक के दो टुकड़े करने का मतलब क्या निकला?

झूठ-झूठ ही रहता है, हजार जाल बनाने पर भी झूठ सत्य नहीं होता। आर्यसमाज ने आधे श्लोक के दो टुकड़े किये और यह दिखलाया कि 'जगाम गोकुलं प्रति' यह पाठ ३८ के अध्याय के २४ वें श्लोक में है किन्तु इस श्लोक में यह पाठ ही नहीं। श्लोक इस प्रकार है।

इति संचिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप॥

अब आर्यसमाजी खूब आंखें फाड़ फाड़ कर देखलें इस श्लोक में 'जगाम गोकुलं प्रति' कहीं भी नहीं है। जिस आर्यसमाज के समस्त ही मनुष्य झूठ को सत्य और संसार को धोखा देने के लिये झूठा लेख लिखें उस आर्यसमाज को धार्मिक सोसाइटी वही कहेगा जिसकी अक्ल का दिवाला निकल गया हो। आर्य-समाज ने बहुत हिमायत की किन्तु स्वामी जी का लेख झूठा ही रहा, इस झूठे लेख लिखने का प्रयोजन क्या है इस पर आर्यसमाजियों को विचार करना चाहिये हां इतना हम कहते हैं कि स्वामी जी का लेख झूठा है।

नं० (२२) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२७ में लिखा है कि 'जब रामचन्द्र सीता जी को ले हनुमान् आदि के साथ लंका से चले, आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीता जी से कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
सेतुबन्ध इति विख्यातम् ।

वाल्मीकि रा० ६ लंका कां० सर्ग १२५ श्लोक २०

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास्य किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख यह सेतु हमने बांध कर लंका में आके उस रावण को मार तुझको ले आये। इसके सिवाय वहां वाल्मीकि में अन्य कुछ भी नहीं लिखा'।

यहां पर स्वामी जी ने वाल्मीकि के श्लोकों को छिपाकर केवल तिटंगा श्लोक लिखा है, पूरा श्लोक इसलिये नहीं लिखा कि हमारे जाल की कलई खुल जावेगी। वाल्मीकि का लेख यह है।

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबंध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥२०
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥२१

वाल्मीकि रा० युद्ध कां० स० १२५

हे जानकि ! महात्मा सागर का यह सेतुबन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा यह परम पवित्र और महापाप का दूर करने वाला है पूर्वकाल में इसी तीर्थ पर विभु महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी।

कहिये स्वामी जी ने इन सब बातों को दबा कर तीन पाद का श्लोक लिख संसार को धोखे में डालने के लिये असत्य लिखने पर कमर बांधी या नहीं ? स्वामी जी को यह सब झूठ इस कारण लिखना पड़ा कि आर्यसमाज की दृष्टि में सत्य लिखने वाला धर्म नाशक और पापी एवं झूठ बोलने वाले को आर्यसमाज धर्मात्मा और विद्वान् समझती है। यदि स्वा० दयानन्द जी सोलह आने सत्य

लिखते तो फिर आर्यसमाज उनको महर्षि की डिगरी कभी न देती। कहो आर्यसमाजियो! स्वामी जी के झूठ लिखने का यही कारण है या उन्माद, इसका विचार तुम करो हम तो इतना ही कहेंगे कि स्वा० जी ने जो रामायण के विषय में लेख लिखा वह झूठ है।

नं० (२३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६१ में लिखा है कि--

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि।
सन्त (साध) की महिमा वेद जाने॥

स्वामी जी का लिखा हुआ यह पाठ सुखमनी पौड़ी ७ चो० ८ में नहीं है। स्वा दयानन्द जी ने झूठ लिखा है। आर्यसमाजियो! यह तुम्हारा पोथा सत्यार्थ प्रकाश है या असत्यार्थप्रकाश? जरा बिचारो तो, जिस ग्रन्थ का कलेवर झूठे लेखों से तैयार हो उस ग्रन्थ को कभी कोई विचारशील 'सत्यार्थप्रकाश' कह सकता है?

यदि हम स्वामी दयानन्द जी के असत्य लेख दिखलावें तो पुस्तक के पचास साठ पन्ने भर जावेंगे, इतने पर भी आर्यसमाजी यह न मानेंगे कि यह लेख वास्तव में असत्य है। आर्यसमाजी तो यही कहते रहेंगे कि स्वा० दयानन्द के लेख सर्वथा ही सच्चे हैं। जो मनुष्य सत्य-न्याय-धर्म-विचार को तिलांजलि देकर पक्षपात के पंजे में पड़ हठी बन जाता है फिर वह किसी की बात नहीं मानता। आज सत्य-धर्म-न्याय-विचार इन सबको तिलांजलि देकर आर्यसमाजी अपनी और स्वामी जी की इज्जत बचाने के लिये अधर्म पर टूट पड़े हैं, अब ये किसी की बात नहीं सुनेंगे। रही विचार शील मनुष्यों की बात वे ऊपर के लेख से ही निर्णय कर लेंगे कि वास्तव में स्वामी दयानन्द जी असत्य लेखों के लिखने वाले हैं या नहीं?

आर्यसमाजियो! तुम दयानन्द के जाल को चाहे कितना भी दबाओ अब वह तुम्हारा दबाया हुआ दब नहीं सकता, उसका तो भंडाफोड़ होकर ही रहेगा। तुम धर्म से बतलाओ कि ऊपर के झूठे लेख स्वामी जी ने क्यों लिखे? हमारी समझ में तो तुम लोग सत्यवादियों का अपमान और झूठों का मान करते हो इस बात को समझ तुम से महर्षि की डिगरी पाने के लिये, स्वामी जी ने ये मिथ्या लेख लिखे हैं। यदि ऐसा नहीं तो तुमको मानना पड़ेगा कि स्वामी जी का झूठ बोलना और झूठ लिखना ही पेशा था।

जब गालियां देने और झूठ बोलने से काम नहीं चलता तब स्वामी जी चालबाजियों से काम बनाते हैं। स्वामी जी जिन चालबाजियों का आश्रय लेते हैं वे तीन प्रकार की हैं (१) वेदोक्ति (२) कल्पित वेदार्थ (३) साहित्य पर छुरा। स्वामी जी अपने मन में भरे हुये भाव को लिख लेख को इस प्रकार का बनाते हैं पढ़नेवाला यह समझे कि यह वेद की आज्ञा है, ऐसी चालाकी का नाम है 'वेदोक्ति'। स्वामी जी निरुक्त-निघंटु-ब्राह्मण-उपनिषद् और वेदभाष्यों के विरुद्ध वेद मंत्रों का कल्पित (फर्जी) ऐसा अर्थ लिखते हैं कि जिससे वेद का अभिप्राय तो साफ उड़ जावे और स्वामी जी के मानसिक भाव उस अर्थ में से निकल पड़ें-इस चालाकी का नाम है 'कल्पित वेदार्थ'। जब इनसे भी काम नहीं चलता तब स्वामी जी प्रामाणिक ग्रन्थों को अप्रामाणिक और वेदों को पुराण तथा जबेद् बना और फिर समस्त वेद के असली भाव को उड़ा कर मनमाना भाव संसार के आगे रखते हैं इसका नाम है 'साहित्य पर छुरा'। इन तीन चालाकियों का आश्रय लेकर स्वामी जी सत्य को झूठ और झूठ को सत्य, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म का रूप देकर अपने चलाये नकली ईसाई धर्म को वैदिक सिद्ध करते हैं। इसी को चालाकी प्रकरण में हम दिखलावेंगे।

वेदोक्ति

नं० (२४) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२३ में लिखा है कि 'नियोग करने में ऐसा नियम है कि जिस स्त्री का पुरुष वा किसी पुरुष की स्त्री मर जाय अथवा उनमें किसी प्रकार का रोग हो जाय वा नपुंसक वंध्या दोष पड़ जाय और उनकी युवावस्था हो तथा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उस अवस्था में उनका नियोग होना अवश्य चाहिये'।

देखो यहां पर स्वामी जी ने कैसी चालबाजी चली, पहिले लिखा कि 'ऐसा नियम है'। यह नहीं बतलाया यह नियम कहां है कुरान में या बाइबिल में? धर्मशास्त्र में या स्वामी जी के मन में? यह भी नहीं बतलाया कि 'नियोग अवश्य होना चाहिये' यह लेख कहां लिखा? इस चालबाजी से लेख लिखा गया है कि लेख पढ़ने वाला मनुष्य यह समझे कि नियोग अवश्य होने का नियम वेद में

है किन्तु भूतल पर इस लेख को वैदिक सिद्ध करने वाला कोई मनुष्य पैदा नहीं हुआ ?

नं० (२५) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पृ० १२० में लिखा है कि 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे'।

यह विधान फिलास्फी कहां की आज्ञा है, धर्मशास्त्र की या ईसाइयों के बाइबिल की ? संसार के ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार का नियोग नहीं मिलता तो भी इसके लिखने में वह चालबाजी खेली गई है कि मानो यह वेद का अभिप्राय है ?

इस गूढ़, फिलास्फी का असली तत्व हमारी समझ में न आया, इसमें लिखा है कि 'गर्भ की दशा में किसी स्त्री से न रहा जाय तो वह किसी दूसरे पुरुष के साथ भोग करे' क्यों ? ऐसा क्यों किया जावे ? अपने पति से भोग करे तो क्या जहर चढ़ जावे ? और फिर एक लड़का पैदा करके उस भोग करने वाले को दे दे ? पेट में पहिले से ही एक लड़का बैठा है फिर इस दूसरे को कहां रक्खे ?

सम्वत् ५४ में कर्णवास में इस लेख पर पं० तुलसीराम स्वामी और स्वा० ईश्वरानन्द सरस्वती इन दोनों में विवाद चला, दो घंटे विवाद रहा, आखिर स्वा० ईश्वरानन्द जी सरस्वती आर्यसमाजी का यह कथन पं० तुलसीराम जी ने मान लिया कि दयानन्द अपनी चालबाजी से वेदविरुद्ध विषय को वैदिक बनाते हैं।

सन् १८९७ में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय' इसके स्थान में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय' बदल कर ऐसा कर दिया। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थावृत्ति इन तीन सत्यार्थप्रकाशों में तो पाठ ठीक छपा किन्तु पंचमावृत्ति सन् १८९७ में बदला गया, आर्यसमाजियों को क्या हक है कि वे किसी लेखक के पाठ को बदल दें ? निःसन्देह यह आर्यसमाजियों की अनधिकार चेष्टा है। स्वामी जी तो इसको वैदिक धर्म मानते थे, तुम नहीं मानते, तो भी पाठ बदलने का अधिकार नहीं है, क्या स्वामी जी भूत बन गये हैं जो सन् १८९७ में आर्यसमाजियों के कान में आकर यह कह गये कि हम यहां भूल गये थे ? कुछ भी हो स्वामी जी की इस चालबाजी को आर्यसमाज ने परखा

और उस बनावटी पाठ को बदला,वह बदला हुआ पाठ भी वैदिक नहीं है,वैदिक होने का भ्रम अब भी उसमें ज्यों का त्यों है ।

नं० (२६) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११२ में लिखा है कि "एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती है" ।

यहां पर स्वामी ने इस चालाकी से लेख लिखा है कि पढ़ने वाला फौरन यह समझ जावे कि यह पुत्रों का बटवारा वैदिक है । और वेद में इसका कहीं पर भी चर्चा नहीं, क्या इस चालाकी को आर्यसमाजियों ने जाना या नहीं ?

* कल्पित-वेदार्थ *

नं० (२७) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११४ में लिखा है ।

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं
गतासुमेतमुपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ ।

ऋ० मं० १० सू० १८ मं० ८

हे (नारी) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्) जीते हुये दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा ऐसे निश्चय युक्त (अभिसंबभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे ।

स्वा० दयानन्द जी ने इस मंत्र के अर्थ में हिन्दू जाति की दया का छुरी से गला काटा है । हाय हिन्दू जाति तेरी दया, वास्तविक में हिन्दू जाति में जितनी दया है उतनी दया संसार की किसी जाति में नहीं यदि ऐसा कहा जावे

तो मेरी समझ में किंचिन्मात्र भी अत्युक्ति नहीं है। हिन्दू जाति की यदि कोई हानि भी करे तथापि हिन्दू जाति उस पर दया ही करती है। आप औरों को तो जाने दीजिये जरा एक दृष्टि चूहों पर डालिये जिनके मारे जेब में रेवड़ियां रखना भी एक आफत है। यदि कहीं भूल कर रात को जेब में रेवड़ियां रह जावें तो रात ही भर में रेवड़ियां और जेब दोनों नदारद ; वस्तुतः चूहे आपका बड़ा नुक्सान करते हैं, गल्ले के बोरों की तो कौन कहे लकड़ी के सन्दूकों तक में हमला करके भीतर ही बैठकर भोग लगाते हैं। चूहों के सामने बड़े बड़े कीमती कपड़े भी टाट की हैसियत रखते हैं, इनके मारे हमारी और आपकी नाक में दम रहती है, इतने पर भी यदि आपके घर से बिल्ली चूहा पकड़ कर ले जावे तो आप उसके पीछे लकड़ी लेकर दौड़ते हैं, आप बिल्ली के मारने और चूहे के छुड़ाने में पूर्ण कोशिश करते हैं। क्यों जनाबमन ! यह क्या बात है, आप इस चूहे के बचाने पर क्यों कटिबद्ध हैं ? यह तो आपके घर का कुछ न कुछ नुक्सान ही करता है। इस पर आप यही कह उठते हैं कि पंडित जी महाराज ! यह सब कुछ ठीक है किन्तु इस समय चूहे पर जो कष्ट पड़ा है वह हमसे देखा नहीं जाता। यह हिन्दू जाति की दया का नमूना है,यह हिन्दुओं का एक स्वाभाविक धर्म हो गया है कि सबको दया की दृष्टि से देखते हैं।

कहीं हिन्दू बैठा हो और उस समय छत पर से चिड़िया का बच्चा गिर पड़े तो उस गिरे हुये बच्चे को देखकर उस हिन्दू के चित्त में कष्ट की तरंगे उठ बैठती हैं, वह दो चार बार तो अपने मुख से 'राम-राम' कहता है और उस बच्चे को उठाकर दीवाल के किसी ऊंचे आले में रखता है। वह यह भी जानता है कि अब इसकी माता इसको न छुयेगी वह तो मनुष्य के स्पर्श करते ही बाय-काट कर बैठती है तथापि उसके ऊपर भी अपनी दया से काम लिये बिना नहीं रहता। और यदि कहीं किसी दिन हिन्दू के मुहल्ले में किसी मनुष्य या स्त्री की मृत्यु हो जावे तो मृत्यु वाला प्राणी चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या आर्यसमाजी, जब तक मृतक शरीर मुहल्ले से न उठ जावेगा हिन्दूमात्र के चूल्हे में आग न सुलगेगी और जो कहीं ऐसा अवसर आ गया कि दिन में मुर्दा न उठा,रात को वहीं रह गया तो फिर हिन्दू लोग तो अन्न और जल दोनों को छोड़ कर उपवास ही करेंगे। जितनी दया हिन्दू जाति में मौजूद है उतनी दया अपने हृदय में लाने के लिये दूसरी जातियों को सैकड़ों वर्ष तक अभ्यास करने की

आवश्यकता होगी किन्तु स्वा० दयानन्द जी आज उस हिन्दुओं की दया को बाजीकर की भांति आनन फानन में चुटकियों से उड़ाये देते हैं। भला इन समाजी सभ्यों से यह तो पूछो कि जिस स्त्री का पति मर गया है, जिस स्त्री के हृदय में अत्यन्त दुःख भरा है, जिस स्त्री को आज स्वर्ग तुल्य घर कारागार दिखलाई दे रहा है, जो दुःख सागर में डूब कर आंखों से आंसुओं की धारा बहा रही है, जिसके आगे प्राण प्यारे पति की ल्हाश पड़ी है उसको यह कौन कहेगा कि पहिले तू इन आये हुये मनुष्यों में से किसी को नियोगी पति बना ले और लड़कों के बांटने का फैसला कर ले तब हम तेरे मरे हुये पति की ल्हास उठावेंगे? ऐसा कठोरपना आज तक दुनियां की किसी भी जाति में पाया नहीं गया जैसा कठोरपना आर्यसमाजियों में धंसाकर घर में ल्हाश पड़ी रहने पर स्वामी जी स्त्री को खसम करवाते हैं। ईसाई-मुसलमान-यहूदी-पार्सी और हिन्दुओं में शूद्र भी विधवाविवाह करते हैं किन्तु सबके यहां यही रश्म है कि पहिले मुर्दा उठाकर उसकी अन्त्येष्टि की जाती है,फिर कुछ दिन स्त्री विधवा रहती है तब पति करती है। आर्यसमाजियों में इतना कामदेव बढ़ गया कि जब तक स्त्री पति न करेगी ल्हास ही न उठाई जावेगी। यहां पर तो स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को कंजर बना दिया? लज्जा को दियासलाई दिखला व्यभिचार के पुतले आर्य-समाजी दूसरों की बहू बेटियों की इज्जत लिये बिना ल्हाश ही न उठावेंगे। यह वेद से अनोखा अर्थ निकला?

ये सब चालबाजियां हैं,स्वामी जी ने ताजा अर्थ बना कर तैयार किया है,ऐसी दशा में आप पूछ बैठेंगे कि क्या इस मंत्र का कोई दूसरा अर्थ है? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे जी हां-अर्थ इस मंत्र का यह है कि—

हे नारि! मृतकपत्नि! जीवित पुत्र पौत्रादि और निवास घर को देख कर इस स्थान से उठ, तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा? इस मृतक के समीप जो तू पड़ी है यहां से उठ, चल, कारण यह है कि विवाह समय में हस्तग्रहण कहने वाले तथा गर्भाधान करने वाले इस पति के सम्बन्ध से प्राप्त हुये तुम्हारे इस पत्नीपन को देख कर पति के साथ मरने का जो निश्चय किया है, इस निश्चय को छोड़ कर उठ।

यह इस मंत्र का अर्थ है, जिस समय पत्नी को मृतक पति से अलाहिदा किया जाता है उस समय इस मंत्र का बोलना लिखा है, यह अर्थ हम अपने मन

से गढ़कर नहीं लिखते किन्तु इस पर आश्वलायन गृह्यसूत्र का भी यही लेख है। 'उदीर्ष्वनारी' मंत्र का 'संकुसुक' ऋषि 'पितृमेध' देवता 'त्रिष्टुपछन्द' तथा अन्त्येष्टि कर्म में विनियोग है। इसके ऊपर आश्वलायन गृह्यसूत्र लिखता है कि—

उत्तरतः पत्नीम् ॥१६

अर्थात् मृतक के उत्तर की तरफ पत्नी को बिठलाया जावे।

धनुश्च क्षत्रियाय ॥१७

यदि मृतक शरीर क्षत्रिय है तो मृतक के उत्तर की तरफ धनुष रक्खे और पत्नी न बैठे।

तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोन्तेवासी।
जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति ॥१८

मृतक पति के समीप से उसका देवर और देवर के अभाव में कोई पड़ोसी या बूढ़ा नौकर 'उदीर्ष्व नारी' इस मंत्र को बोल के उस स्त्री को उठावे।

कर्ता वृषले जपेत् ॥१६

यदि उठाने वाला शूद्र है तब मंत्र को न बोले क्योंकि शूद्र को वेद का अधिकार नहीं। इस सन्देह को दूर करने के लिये यह सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि कर्ता शूद्र हो तो इस मन्त्र को एकान्त में बैठ कर आचार्य जपे।

हमने जो अर्थ किया, आश्वलायन गृह्य सूत्र उसकी पुष्टि करता है। संभव है आप इतने पर भी इस प्रश्न को उठादें कि अब किस का अर्थ सही समझा जावे। इसके ऊपर हम और कुछ भी न कह कर 'जज' आपको ही बनाते हैं और हम सबूत देकर बैठते हैं। प्रथम तो स्वामी जी का अर्थ सभ्यता के बाहर है;मुर्दे की लहाश फुकने नहीं पाई कि उससे पहिले ही दूसरा पति करले-यह कहना कैसा? दूसरे स्वा०दयानन्द जी ने 'शेषे' क्रिया का अर्थ 'बाकी' किया जो त्रिकाल में भी समाजी सिद्ध नहीं कर सकते और फिर उस'शेषे'एक वचन का बहुवचन कर दिया जो किसी भाषा के भी विद्वान् मानने को तैयार नहीं? तीसरे यदि स्वा० दयानन्द जी का ही अर्थ ठीक मान लिया जावे तो फिर इन चार सूत्रों की क्या गति होगी? क्या धनुष को भी नियोग कराया जायगा? चतुर्थ सायणादि

भाष्यकार स्वा० दयानन्द के विपरीत हमारे अर्थ को लिख रहे हैं। पंचम-यदि वेद के इस मंत्र में यही अर्थ है तो क्या इस अर्थ का एक भी ऋषि को ज्ञान न हुआ ? यदि उनको इस अर्थ का ज्ञान हुआ तो फिर बतलाओ कि इस अर्थ को किस २ ऋषि ने समझ कर किस २ स्त्री के पति की लहाश पड़ी रहते कौन २ स्त्री का नियोग कराया ? यह कुछ नहीं, व्यभिचारप्रिय स्वामी जी संसार में व्यभिचार फैलाने के लिये वेद के नये २ बनावटी अर्थ बनाकर आर्यसमाजियों को चालबाजियों में फांस रहे हैं।

नं० (२८) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्।

ऋ० मं० १० सू० १०

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी।

यह प्रकृति विरुद्ध कार्य है, जब एक कुत्ता कुतिया से सम्बन्ध जोड़ने को तैयार होता है तब वह दूसरे कुत्ते को कुतिया के पास नहीं आने देता। नहीं मालूम इस प्रकृति विरुद्ध कार्य का सहन आर्यसमाजी कैसे कर सकेंगे, यह अत्यन्त निर्लज्जता की बात है कि स्त्री का पति तो घर में बैठा रहे और दूसरा कोई बाहरी संडा आकर मौज उड़ावे ? किन्तु आप लोग क्या करें वेद का लेख और उस पर महर्षि का टीका, आप लोगों को तो यह काम करना ही पड़ेगा, नहीं तो धर्म के पालन का उल्लघंन होगा। अच्छा करो, इच्छा तुम्हारी, पूछना इतना है कि यह जो वेद है इसमें व्यभिचार ही भरा है या कुछ और भी है ?

याद रक्खो यदि तुम वेद पढ़े होते तो इस प्रकार की चालें और बनावटी अर्थ लिख कर स्वा० दयानन्द जी तुमको व्यभिचार में प्रवृत्त न करवाते। स्वामी जी ने समझ लिया कि ये लोग लिखे पढ़े तो हैं ही नहीं, वेद के नाम से हम जो कुछ लिख देंगे उसको ये आंख बन्द करके मान लेंगे। हमें भी विश्वास है कि स्वामी जी के ऊपर तुम्हारी श्रद्धा है और इसी कारण से आप लोग उनको परिव्राजक-वेदज्ञाता-योगी-महर्षि मानते हैं एवं आप उनके बतलाये इस नियोग

को भी मानेंगे किन्तु हमारा भी धर्म है कि एक बार हम आपको समझा दें। मामला यह है कि स्वा० दयानन्द जी ने वेद के बहाने से तुमको व्यभिचार में फांसना चाहा है, वेद की यह आज्ञा नहीं है। यहां पर तो स्वामी जी ने पूरा वेदमंत्र भी नहीं दिया, मंत्र की पूंछ से नियोग सिद्ध करना चाहा है और यह मान लिया कि आर्यसमाजी हमारे शिष्य हैं, हम जो लिखते हैं उसको ये अवश्य करेंगे। इस भरोसे पर स्वामी जी ने यहां वेद का गला घोटा है। वेद का कथन यह है कि—

आघाता गच्छानुत्तरायुगानि
यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उपवर्बृहि वृषभाय बाहु
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १० मं० १०

यह मंत्र "यमेयमी सूक्त" का है। यमदेव कुछ बड़े थे और यमी बहुत छोटी थी, उसको संसार के धर्मों से अनभिज्ञता थी। एक दिन एक बरात चली जा रही थी, उस बरात में घोड़े पर चढ़े हुये वर को देख कर यम से पूछा कि कि भइया! यह घोड़े पर चढ़ा है- कौन है? और घोड़ेपर क्यों चढ़ा है? तथा ये बहुत से लोग इसके साथ क्यों जा रहे हैं? इसके ऊपर यम ने कहा कि बहिन! यह दूल्हा है और इसका विवाह है, यह विवाह करने के लिये जाता है। यह सुन कर यमी ने कहा आओ भइया हमारा और तुम्हारा विवाह हो जाय? यम बोले कि (आघाता आगच्छानि आगमिष्यन्ति उत्तरा युगानि) आगे को आवेंगे वे दुष्ट युग कि (यत्र जामयः अजामि कृणवत्) जिसमें भाई अयोग्य कार्य बहिन से करेंगे (हे सुभगे मत् मत्तः अन्यं पतिं इच्छस्व) हे सौभाग्यवती! तू मेरे से अन्य पति को इच्छा कर, मेरी इच्छा तो तू कभी अपने मन में नहीं करना (वृषभाय बाहुं उपर्वहि) योग्य पति के वास्ते तू अपने हस्त को ग्रहण कर वाले।

वेदमंत्र का असली अर्थ यह है। अब आप लोगों को अधिकार है चाहे इस अर्थ को मानो चाहे स्वामी जी की चालबाजी को?

जब कोई आर्यसमाजी विदेश को चला जावे तो स्वामी जी लिखते हैं कि उसकी स्त्री नियोग करके पुत्र उत्पन्न करले।

नं० (२६) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११८ में लिखा है कि—

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥७६॥

मनु० अ० ६

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे ।

स्वामी जी आर्यसमाजियों का कल्याण चाहते हैं, इनकी इच्छा है कि हमारे शिष्यों को बिना मेहनत के लड़के मिल जावें,इज्जत चाहें रसातल को चली जाय स्वामी जी को इज्जत का ख्याल नहीं,सुख का फिक्र है । हम आर्यसमाजियों को बराबर कहते हैं कि तुम कुछ पढ़ो नहीं तो अनेक मनुष्य बनावटी महर्षि बन कर तुम्हारी इज्जत की कौड़ियां कर देंगे । इस चालाकी में एक नई पकड़ पकड़ दें वह यह है । सत्यार्थप्रकाश के प्रमाणयाप्रामाण्य०विषय में यह लिखा है कि"हमवेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं"जब स्वा० दयानन्द जी वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं तब इस श्लोक को प्रमाण में क्यों लिया ? यह तो वेदानुकूल है नहीं क्योंकि वेद में कोई मंत्र ऐसा नहीं जिससे परदेश जाने में नियोग सिद्ध होता हो ? कोई हर्ज नहीं अपने चेलों को ज्ञान देने के लिये स्वामी जी वेद विरुद्ध को भी वेदानुकूल मान लेते हैं । अच्छा स्वामी जी और स्वामी जी के चेले मान लें किंतु मनु को जो झूठा कलंक लगाया है यह हमको अखरता है इस कारण से हम यहां पर मनु के लेख को लिख उनके भाव को स्पष्ट कर देना चाहते हैं । मनु का प्रकरण यह है ।

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषितेत्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।

विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥७६॥

मनु० अ० ६

जब पति परदेश को जाय तो स्त्री के खान पान का प्रबन्ध करके जाय क्योंकि जीविका के प्रबन्ध विना (स्थितमति) नेक स्त्री भी दूषित हो जाती है।७४। यदि पति खान पान का प्रबन्ध कर जाय तो स्त्री पति के परदेश रहते उबटना-तेल-इतर न लगावे, अधिक पुष्ट भोजन न खाय इत्यादि नियमों में स्थित होकर अपना कालक्षेप करे और यदि पति वृत्ति का कुछ प्रबन्ध न कर जावे तो फिर स्त्री को चाहिये कि अनिन्दित दस्तकारी (अपने हाथ के काम सीना पिरोना या कढ़ना आदि) से गुजर करे किंतु कोई निन्दा का काम न करे।७५। यदि पति धर्म के लिये परदेश गया हो तो आठ, विद्या और यश के लिये गया हो तो छः, किसी और काम को गया हो तो तीन वर्ष उसकी प्रतीक्षा करे। इसके वाद क्या करे ? वसिष्ठ स्मृति लिखती है कि "अत ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेत्" इसके बाद फिर वह अपने पति के पास वहां चली जावे कि जहां उसका पति है।

स्वामी जी स्त्री को पति के पास नहीं जाने देते, यहां ही मौज उड़ाने की आज्ञा देते हैं। आपने स्वामी जी और मनु का भाव समझ लिया, अब आर्यसमाजियों के मन को जैसा अच्छा लगे वैसा करें विशेष हम कुछ नहीं कहते।

नं० (३०) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२५ में लिखा है कि—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

ऋ० अ० ८ अ०३ व०२८

(इमां०) ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्यदान दे के सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर, हे वीर्यप्रद! (दशास्यां पुत्रानाधेहि) पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर अधिक नहीं (पतिमेकादशं कृधि) तथा हे स्त्री! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर अर्थात् एक जो उनमें प्रथम विवाहित और दश पर्यन्त नियोग के पति कर अधिक नहीं।

यहां पर स्वामी जी ने स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिये पतियों का भंडार

खोल दिया। स्त्री एक और पति पूरे ग्यारह। अच्छी बात है, कोई नहीं मानेगा तो स्वामी जी के चेले आर्यसमाजी तो अवश्य ही मानेंगे क्योंकि उनके लिये तो डबल हुक्म है, एक तो स्वामी जी का हुक्म और दूसरे वेद की आज्ञा। आर्यसमाजियो! क्या वेद का यही अभिप्राय है? क्या समस्त ही वेद में व्यभिचार भरा है? वेद में एक भी अक्षर व्यभिचार का नहीं स्वा० दयानन्द जी अपने मन में आये हुये व्यभिचार को वेद के बहाने से तुम्हें उपदेश करते हैं। वेद का असली अभिप्राय यह है।

'विवाह के समय में दूल्हा देवराज इन्द्र से प्रार्थना करता है कि कल्याण कारक, वृष्टि करने वाले हे इन्द्र! इस स्त्री को तू सुपुत्र और सुभगा करना किस प्रकार, इसमें दश पुत्र उत्पन्न हों और ग्यारहवां मैं पति बना रहूँ'।

आर्यसमाजियो! आप लोगों को यह विचारना चाहिये कि पवित्र वेद को स्वामी दयानन्द जी अपनी जबर्दस्ती से किस प्रकार व्यभिचार प्रतिपादक बना रहे हैं, क्या स्वा० दयानन्द जी की इस अनधिकार चेष्टा और अयोग्यता पर आप लोगों को कभी भी रोष नहीं आता? क्या आप लोगों की श्रद्धा वेद से बिल्कुल उठ गई? यदि नहीं उठी तो इन अनर्थकारी स्वामी जी के अर्थों का तुम उसी प्रकार खण्डन क्यों नहीं करते जैसे पं० बद्रीदत्त जोशी भूतपूर्व उपदेशक आर्यसमाज कानपुर और वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री ने किया है।

नं० (३१) यजुर्वेद अध्याय ३२ मं० १ यह है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

इसके ऊपर भाष्य करते हुये स्वा०दयानन्द जी लिखते हैं कि हे मनुष्यो! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापि सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव न्यायकारी; दयालु, जगत्का स्रष्टा धारणकर्ता और सबका अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सबका धर्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः)

सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो'

ऐसा अच्छा फर्जी वेदार्थ जानने वाला सृष्टि के आरम्भ से आज तक संसार में न कोई पैदा हुआ और न आगे को होगा। असली बात यह है कि संसार में वेदार्थ का यदि किसी को पूर्व ज्ञान हुआ तो वह दयानन्द जी को ही हुआ, इनको छोड़कर जितने भी ऋषि मुनि हुये उनको वेदार्थ का ज्ञान नहीं हुआ और न ईश्वर को ही हुआ?

आज हम इस मंत्र के अर्थ को परीक्षा करेंगे कि यह कैसा बढ़िया अर्थ है। आर्यसमाजियो! इस अर्थ की फिलास्फी तुम बतला सकोगे या वेदार्थ का महत्व दयानन्द के साथ ही समाप्त हो गया? (१) 'हे मनुष्यो!' यह जो अर्थ में लिखा है यह मंत्र के कौन पद का अर्थ है, इसके विचार में आर्यसमाजियों को टूट पड़ना चाहिये। (२) 'सर्वज्ञ' यह मंत्र के कौन पद में आया है? (३) 'सर्वव्यापि' जो मंत्र के अर्थ में लिखा है यह किसी दूसरे मंत्र से खैंचा गया है या इसी मंत्र में है? (४) 'सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत का स्रष्टा धारणकर्ता और सबका अन्त-र्यामी' यह इतना बड़ा पुछल्ला मंत्र के किसी पद में छिपा बैठा है या दयानन्द के दिमाग से टपका है? आर्यसमाजियो! यही मंत्रार्थ होता है, मंत्र के बहाने से प्रत्येक मनुष्य अपने मन की भावनाओं को अर्थ में भरा करता है या मंत्रार्थ लिखता है? धन्य है तुम्हारे ऋषि को जो वेदार्थ के बहाने से तुमको बेवकूफ बनाने के लिये अनाप सनाप बक दे और अत्यन्त धन्य है तुम्हारी बुद्धियों को जो दयानन्द के अनर्गल तथा जाली लेख को मंत्रार्थ समझ लें? आर्यसमाजियों कैसे बुद्धिमान मनुष्य तो हमको संसार में ही नहीं मिले, यदि इनको पशुओं के परदादा कहा जावे तो कोई अत्युक्ति न होगी? (५) मंत्र तो कहता है कि "वही ईश्वर अग्नि है" और स्वा० दयानन्द जी अर्थ में लिखते हैं कि 'ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि' ज्ञानस्वरूप और प्रकाशित ये दो हेतु स्वा० दया-नन्द जी ने अपने दिमाग से निकाल कर जो मंत्रार्थ में जबर्दस्ती से मिलाये यह क्यों? हां-हां अब समझ गये, स्वा० दयानन्दजी ने लिखा है कि ईश्वर बेवकूफ है, बेवकूफी के कारण ईश्वर मंत्र में ये हेतु लगाने भूल गया? स्वा० दयानन्द जी ने हेतु लगाकर अशुद्ध मंत्र को शुद्ध बना दिया? (६) मंत्र लिखता है कि 'वह ईश्वर आदित्य है' स्वा० दयानन्द जी अर्थ करते हैं कि 'प्रलय समय के ग्रहण करने से आदित्य' यहां पर भी बेवकूफ ईश्वर भूल गया था। उस भूल का

संशोधन करने के लिये स्वामी जी ने 'प्रलय समय को ग्रहण करने से' इतना मिला दिया। भाग्य की बात है, दयानन्द पैदा न होते तो ईश्वर की गलतियां कौन निकालता ? (७) मंत्र का भाव है कि 'वही ईश्वर वायु है' स्वा० दयानन्द जी इसके ऊपर लिखते हैं कि 'अनन्त बलवान् और सबका धर्ता होने से वायु' ये दो हेतु जो स्वा० दयानन्द जी ने यहां बढ़ाये हैं अच्छा किया, संसार का उपकार हो गया ? ईश्वर की बुद्धि को क्या जानें क्या हो गया हर दम भूल जाता है, स्वा० दयानन्द जी वेद का कहां तक संशोधन करें ? अच्छा होता कि स्वा०दयानन्द जी वेद बना लेते,फिर तो ईश्वर के वेद को कोई पूछता भी नहीं और जो आर्यसमाजी दयानन्द के वेद को पढ़ता उसके दरबाजे ज्ञान का पहाड़ बन जाता ? (८) वेद कहता है कि 'वह ईश्वर चन्द्रमा है' स्वामी दयानन्द जी बतलाते हैं कि 'आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा' देख लो यहां भी ईश्वर की गलती को स्वामी जी ने तुरंत जान लिया। क्यों न हो, कोई मामूली महर्षि हैं ? (९) वेद समझाता है कि 'वही ईश्वर शुक्र (पराक्रम) है' स्वामी जी यहां पर अर्थ करते हैं कि 'शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से शुक्र' भला यह तो बतलाओ कि दो हेतु अपनी तरफ से स्वामी जी न मिलाते तो क्या कोई सज्जन वेद का अर्थ करलेता ? स्वामी जी बड़े उपकारी हैं ईश्वर की गलतियों को संसार के आगे स्पष्ट रख देते हैं जिससे संसार ईश्वर की बदमासी को अच्छी तरह समझ जाता है ? (१०) मंत्र का कथन है कि 'वही ईश्वर ब्रह्म है' स्वामी जी इसका भाषा टीका लिखते हैं कि "महान् होने से ब्रह्म" भला इस बात को कोई जान सकता था कि महान् होने से ब्रह्म है ? सच बात तो यह है कि ईश्वर ने जितना वेद मंत्र नहीं बनाया उससे अधिक लेख अपनी बुद्धि से पैदा करके स्वामी जी ने अर्थ में मिला दिया, क्या अब भी आर्यसमाजी दयानन्द के लेख से ईश्वर को मूर्ख नहीं मानेंगे ? (११) वेद का आदेश है कि 'वह ईश्वर जल है' इसके अर्थ में स्वामी जी अपने प्राण प्यारे शिष्यों को उपदेश करते हैं कि "सर्वत्र व्यापक होने से आप" स्वामी जी की दृष्टि में जो व्यापक होगा वही जल होगा। इसी नियम से सर्वव्यापक अग्नि को जल समझ अब आर्यसमाजी पीने का आरंभ कर देंगे ? (१२) वेद बतला रहा है कि 'वह ईश्वर प्रजापति है' स्वामी जी फरमाते हैं कि "सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो"।

कहो आर्यसमाजियो ! स्वामी जी ने अपनी तरफ से हेतु लगाकर मंत्र के

अर्थ में चालबाजी की कबड्डी खेली या नहीं? यदि तुम पढ़े लिखे होते तो तुम्हें मालूम हो जाता कि स्वामी जी वेद मंत्र का अर्थ नहीं कर रहे बरन् वेद के गले पर छुरा चला रहे हैं? सच तो बतलाओ इतना बड़ा वेद का दुश्मन क्या कोई आजतक हुआ है? क्यों न हो नास्तिकों का महर्षि है न?

कई एक आर्यसमाजी यह कह बैठते हैं कि मंत्रार्थ में हेतु देने से हानि क्या हो गई? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि आर्यसमाजियो! तुम लिखे पढ़े नहीं हो इस कारण तुमको हानि लाभ का कुछ ज्ञान नहीं? यहां तो इतनी बड़ी हानि होगई कि वेद के सिद्धान्त पर ही पानी फिर? इस मंत्र में ईश्वर को सृष्टि का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" होने से समस्त संसार को ईश्वर का स्वरूप बतलाया है। समझिये—

"वही ईश्वर अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म; वही जल और वही प्रजापति है"।

इस मंत्र में अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, पराक्रम, ब्रह्म, जल, प्रजापति इन सब को ईश्वर का स्वरूप कहा है। जैसे घट, शराव, नाद, हांडी प्रभृति मिट्टी के बने हुये बर्तन मिट्टी ही होते हैं, केवल आकार मात्र उनका भिन्न होता है इसी प्रकार अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, पराक्रम, ब्रह्म, जल, प्रजापति ये सब आकार मात्र से भिन्न होने पर भी ब्रह्म हैं-यह वेद का अभिप्राय है इसको मंत्र और ब्राह्मण तथा उपनिषद्, पुराण एवं इतिहास ने बार बार दोहराया है। इसी के ऊपर पुष्पदन्त लिखते हैं कि—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं-
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥

भगवान्! आप सूर्य हैं और आप ही चन्द्रमा हैं, पवन आप हैं तथा अग्नि भी आप ही हैं, जल समूह आप हैं, आकाश भी आप ही हैं, पृथ्वी आप हैं, आत्मा आप हैं, हम एक भी तत्व ब्रह्माण्ड में ऐसा नहीं पाते जो आप न हों।

वेद के इस अमूल्य सिद्धान्त को संसार से उखेड़ फेंकने और 'पुरुष एवेदम्' इत्यादि वेद मंत्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदान्त दर्शन पुराण इतिहास का काला-

मुंह कर देने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने 'तदेवाग्नि' इस मंत्र में अपनी तरफ से हेतु लगाये हैं। अब तुमको मानना पड़ेगा कि स्वा० दयानन्द जी वेदों के बढ़िया से बढ़िया घोर दुश्मन हैं और आर्यसमाजी मूर्ख होने के कारण दयानन्द जी की चालबाजियों को नहीं समझते। कहो आर्यसमाजियो! दयानन्द के पंजे में पड़कर तुम दीन दुनियां दोनों से गये या नहीं? और जो तुमको कहीं का भी न रहने दे, मनुष्य से पशु बना दे, तुम उसको महर्षि कहो तो तुम से अधिक मूर्ख दुनियां में कौन होगा? इसके ऊपर यदि तुम विचार कर लो तो मनुष्य बन जाओ और नास्तिकता का स्वाहा हो जाय।

ईश्वर की मूर्खता

स्वा० दयानन्द जी चालबाजी में इतने बढ़े कि ईश्वर को भी मूर्ख सिद्ध करने लगे।

नं० (१२) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० १२७ "मुखं किमस्यासीत्--ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" इन दो मंत्रों के टीका में स्वामी जी ने ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व गुण माना है।

धन्य है इन महर्षि को जो ईश्वर को भी मूर्ख बतलाते हैं, इन की दृष्टि में ईश्वर मुतलक जाहिल है। इस ऐसे अयोग्य लेख लिखने का प्रयोजन यही है कि आर्यसमाजी वेद तो जानते ही नहीं हमारे लेख के आधार पर ईश्वर को मूर्ख और हम को परिब्राजक--वेदज्ञाता, महर्षि मानेंगे। अपनी अनभिज्ञता के कारण आर्यसमाजियों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया कि ईश्वर तो मूर्ख है किन्तु स्वा० दयानन्द जी विद्वान् हैं।

अविद्या संसार में मनुष्य से बड़े बड़े अनर्थ करवा देती है यदि आर्यसमाजियों में कोई एक भी वेद ज्ञाता होता तो तत्काल आवाज उठाता कि स्वा० दयानन्द जी ने जो ईश्वर में मूर्खत्वादि गुण माने हैं वे सर्वथा अयोग्य और स्वा० जी के नास्तिक भावों को सिद्ध करने वाले हैं किन्तु कोई आर्यसमाजो पढ़ा लिखा है नहीं इसलिये इन्होंने यह मान लिया कि ईश्वर मूर्ख है। जब आर्यसमाजियों की दृष्टि में ईश्वर जाहिल है तो ऐसे जाहिल ईश्वर के बनाये हुये वेद कैसे प्रामाणिक हो सकते हैं? बात तो और ही है। आर्यसमाज के गणपति शर्मा प्रभृति विद्वान् यह कहा करते थे कि आर्यसमाज वेद को नहीं मानती, वेद का प्रलोभन देकर सांसारिक मनुष्यों को नास्तिक बनाती है। बात सच है

यदि ईश्वर मूर्ख है और आर्यसमाज को ईश्वर के मूर्ख होने का विश्वास है तो फिर वह मूर्ख ईश्वर के बनाये हुये वेदों को कैसे प्रमाण मान लेगी ? अतएव मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज तो वेद नहीं मानती दूसरों को वेद वेद चिल्ला कर अपने कैसा बनाना चाहती है ,क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा है जो ईश्वर को मूर्ख सिद्ध करदे ? हो तो लेखनी उठावे। यदि एक भी आर्यसमाजी ईश्वर को मूर्ख सिद्ध नहीं कर सकता तो फिर दयानन्द ने जो ईश्वर को मूर्ख माना है क्या उनकी बुद्धि का दिवाला नहीं निकल गया ?

साहित्य पर छुरा

नं०(३३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि पुराणादिक ग्रंथ "विषसंप्राक्तान्नवत् त्याज्य हैं जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने के योग्य होता है वैसे यह ग्रन्थ हैं' ।

यहां पर स्वामीजी वेद का खण्डन करके अपने लेख को वेद सिद्ध करेंगे इस कारण सब से पहिले आप पुराणों का खण्डन करते हैं। पुराणों में आप 'झूठमिला है' यह बतलाते हैं। पुराणों में क्या२ झूठ है इसका सबूत नहीं देते ? इस विषय में महाभारत लिखता है कि

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

पुराण,मनु के कहे ,धर्म ,अंगों सहित वेद और वैद्यक ये चारों ग्रन्थ आज्ञा सिद्ध हैं , इन को दलीलों से नहीं काटना चाहिये।

मनुजी लिखते हैं कि

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

मनु ० २। १२

वेद, धर्मशास्त्र,सदाचार और आत्मप्रेम इन चार प्रकार से धर्म जाना जाता है।

सदाचार के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि

तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

२। १८

जिस देश में जो आचार समस्त जातियों में परम्परा से चला आया हो, वह सदाचार ही धर्म होजाता है।

सदाचार का ज्ञान पुराणों से होता है, मनु ने सदाचार को लेकर पुराणों की सत्यता सिद्ध की है। पुराण सत्य और माननीय हैं इसके ऊपर शतपथ लिखता है

स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानिव्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि।

शत० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

जिस प्रकार से गीले ईंधन के संयोग से अग्नि में नानाविधि के धूम प्रकट होते हैं इसी प्रकार उस परमात्मा के ऋग्-यजु-साम-अथर्व-इतिहास-पुराण-विद्या-उपनिषद्-श्लोक-सूत्र-व्याख्यान-अनुव्याख्यान ये सब श्वास भूत हैं।

और देखिये —

सहोवाच, ऋग्वेदं भगवोध्येमि यजुर्वेद ७ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य ७ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देव विद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्या ७ सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येम

छां० प्र० ७ खण्ड १

नारद बोले कि ऋग्-यजु-साम—अथर्व--को जानता हूँ एवं इतिहास पुराण पंचम वेद भी मैंने पढ़ा है, श्राद्धकल्प' गणित' उत्पातज्ञान, महाकालादिनिधि, तर्क, नीति, निरुक्त, ब्रह्म सम्बंधी उपनिषद् विद्या, भूत तंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पविद्या गरुड़' गन्धयुक्त नृत्य-गीतादि वाद्य, शिल्प ज्ञान को जानता हूं।

आगे पढ़िये

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः

सामवेदोथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

बृह० अ० ४ कं० ११ ब्रा० ५

उस परमेश्वर के निश्वसित ऋग्-यजु-साम-अथर्व-इतिहास-पुराण-विद्या—उपनिषद्-श्लोक-सूत्र-व्याख्यान-अनुव्याख्यान हैं।

और देखिये

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

अथर्व० कां० १५ प्र० ६ अनु० १ म० १२

वह वेद दिशाओं में फैला, उसी के साथ २ इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी चली।

आगे देखिये—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रिताः ॥

अथर्व० ११।७।१।२४

सब के अन्त में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक् साम अथर्व और पुराण यजु के साथ उत्पन्न हुये।

वेदादि सच्छास्त्र पुराणों के महत्व को गा रहा है किन्तु दयानन्द जी वेद साहित्य को कुचल पुराण को त्याज्य बतलाते हैं क्या इसीका नाम वेद प्रमाण मानना है? महर्षि की बात २ में चालाकी भरी है, इस चालाकी को किसी आर्यसमाजी ने समझा है?

चालाक आर्यसमाजी यह कह बैठते हैं कि वेदों में जो पुराणों का महत्व बतलाया है वह ब्राह्मयादि अठारह पुराणों का नहीं है किन्तु शतपथादि ब्राह्मण-ग्रन्थों का है-यह आर्यसमाजियों की चालाकी है? इसके उत्तर में हम यह जोर से कहेंगे कि (१) शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ कभी पुराण हो ही नहीं सकते, जिसको

हम आगे लिखेंगे (२) दयानन्द के मत में वेद पहिले बने और ब्राह्मणग्रन्थ बाद में, फिर बाद में बने हुये ब्राह्मणों का वेद में कैसे जिक्र आया ? (३) गोपथ ब्राह्मण ब्राह्मणग्रन्थों को पृथक् लिखता है और पुराणों को ब्राह्मणों से भिन्न मानता है इसको देखिये ।

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानाँ छियते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते ।

गोपथ पू० भा० प्र० २

इस प्रकार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, वाकोवाक्य सहित इन वेदों को ईश्वर ने प्रकट किया ।

इस गोपथ ब्राह्मण की श्रुति ने ब्राह्मणग्रन्थों को अलाहिदा और पुराणों को उनसे भिन्न लिखा है तो फिर हम यह कैसे मानलें कि ब्राह्मण ग्रन्थों को पुराण कहते हैं ?

आर्यसमाजियो ! तुम यह भी समझते हो स्वामी जी ने यह चालबाजी क्यों खेली ? इस चालबाजी का मतलब यह है कि जितने भी प्रामाणिक ग्रन्थ हैं उनको तो हम प्रमाण कोटि से निकाल दें, और अपने लेख को वेद बनादें, प्रकार से आर्यसमाजियों को आंख में धूल झोकने के लिये यह चाल है । समझो, धर्मशास्त्र में लिखा है कि—

पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति

पुराण, गौतम कणाद न्याय, पूर्वमीमांसा और वेदान्त, समस्त धर्मशास्त्र, छः अंगसहित वेद इन चौदह विद्याओं से ही धर्म का निर्णय होता है ।

जिन पुराणों के महत्व को वेद गा रहा है दयानन्द जी उनकी अमान्यता

तो सिद्ध कर चुके अब श्लोक में कहे हुये आगे के ग्रन्थों का स्वामी कृत फैसला देखलें ।

नं० (३५) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "ऐतरेय, शतपथ साम और गोपथ, चारो ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघंटु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अंग, मीमाँसादि छः शास्त्र वेदों के उपांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अथर्ववेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि, सब ऋषि मुनि के किये ग्रंथ हैं इनमें भी जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्ति स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेदसे ही होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है ।

इस लेख में उपवेद-ब्राह्मण और वेदों के अंग इन सब के प्रमाण का सफाया हो गया । स्वामी जी इनको बिल्कुल प्रमाण नहीं मानते । जो बात वेदों में लिखी हो और वही इनमें लिखी मिल जावे तब तो प्रमाण, नहीं तो बिल्कुल प्रमाण नहीं । जो बात वेदों में लिखी है उसको तो वेद ही से प्रमाण मान लिया जायगा फिर इनके प्रमाण मानने को क्या जरूरत ? ये ग्रन्थ तो बिल्कुल अप्रामाणिक रहे ? यहां पर दयानन्द जी एक चाल खेल गये, आर्यसमाजी इसको नहीं समझे, वह चाल यह है कि जब इन ग्रंथों में से कोई प्रमाण स्वामी जी लेंगे तब कह देंगे कि यह वेदानुकूल है इस कारण प्रमाण है । जब कोई दूसरा मनुष्य इनका प्रमाण देगा तब कह देंगे कि यह प्रमाण अमान्य है क्योंकि वेद से नहीं मिलता । ये महर्षि की चालबाजियां आर्यसमाज को गारत करके छोड़ेंगी ।

सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति अमान्य हैं" ।

ठीक है, मन का फैसला है, जो जी में आवे सो लिखें । हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि ऊपर लिखे ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण और सब स्मृतियां अप्रमाण, क्षेपक को छोड़ कर मनु प्रमाण यह जो फैसला स्वा० दयानन्द जी ने दे दिया है इसकी सचाई सिद्ध करने के लिये किसी ग्रंथ में लिखा है कि पुराणों को मत मानो, स्मृतियों को मत मानो, वेद के अग और दर्शनों को तभी प्रमाण मानो जब इनकी लिखी बात वेद में लिखी मिल जाय, और मनु में क्षेपक हैं, उन को छोड़ कर तुम मनु को मानियो ? ऐसा लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता । स्वा० दयानन्दजी का यह लेख गएडूखाने की गप्प है, धर्म शास्त्र विरुद्ध है, यह कोई मान नहीं सकता कि सृष्टि के आरंभ से लेकर जब तक

दयानन्द ने होश नहीं संभाला तब तक हिन्दुओं को यह खबर नहीं पड़ी कि हमारे ग्रन्थों में से कितने ग्रंथ प्रमाण हैं और कितने अप्रमाण ? जब महर्षि याज्ञवल्क्य यह फैसला दे चुके कि अठारह पुराण, महाभारत, वैशेषिक तथा गौतम सूत्र, पूर्वमीमांसा एवं वेदान्त, समस्त धर्मशास्त्र और छः अंगों सहित वेद ये प्रमाण हैं तब इसके विरुद्ध दयानन्द के फर्जी फैसले को वही मानेगा कि जिसने अपनी अक्ल का कचूमर निकाला हो। आर्यसमाजियो ! जब शास्त्रार्थ में यह घण्ट तुम्हारे गले में उलझता है तब मुर्दे और तुम्हारे चेहरे में कोई फर्क नहीं रहता, इतनी दुर्दशा को सह कर भी तुम दयानन्द की इस चालबाजी में फंसते हो तो तुम अवश्य निरक्षर हो।

वेद का सफ़ाया।

स्वा० दयानन्द जी चालबाजी में इतने बढ़े कि इन्होंने छुरा लेकर वेदों के टुकड़े कर उनको अमान्य बना डाला। इस अयोग्य कार्य के करने से स्वा० जी का अभिप्राय इतना है कि आर्यसमाजी वेद को अप्रामाणिक मान कर फेंक दें और हमारे लेख को वेद मानने लगें। स्वामी दयानन्द जी की इस चाल को चार लाख आर्यसमाजियों में से एक ने भी नहीं जाना, जानें वे जो पढ़ें, मूर्ख आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द जी की गहरी चाल को कैसे समझ लें ? इन्होंने नहीं समझा तो न सही किन्तु दाई के आगे पेट नहीं छिपता, वेद ज्ञाताओं के आगे जो स्वा० दयानन्द जी किसी नई चाल को खड़ा करेंगे तो क्या वेद के लिखे पढ़े इसको न जान सकेंगे ? आज हम आर्यसमाजियों को दयानन्द जी की चालबाजी दिखला कर सचेत करते हैं कि संभलो, नहीं तो बड़ी २ ठोकरें खाओगे ? इतने पर भी आर्यसमाजी हमारी बात को न मानें तो न सही, विचारशील मनुष्य तो मानेंगे ?

वेद दो भागों में विभक्त है एक मंत्र भाग है और दूसरा ब्राह्मण भाग। शुक्ल यजुर्वेद के मंत्र भाग की माध्यन्दिनी शाखा है तथा इसका ब्राह्मण शतपथ है किन्तु कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता प्रभृति कई एक संहिताओं में वेद और ब्राह्मण मिलकर चलते हैं, भाव यह है कि मंत्र और ब्राह्मण इन दो भागों के मिलने पर वेद कहलाता है या यों समझो कि वेद के दो हिस्से हैं, पहिला हिस्सा मंत्र भाग है, और दूसरा हिस्सा ब्राह्मण भाग, स्वामी जी ने इन दोनों के गले पर छुरी चलाने का उद्योग उठाया।

नं० (३५) आप ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदसंज्ञाविचार में लिखते हैं कि—

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं, वे ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उनके नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी हैं (२) ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं किन्तु महर्षि लोगों ने बनाये हैं (३) वे वेद नहीं हैं क्योंकि वेदों का व्याख्यान हैं (४) एक कात्यायनि ऋषि को छोड़कर अन्य किसी ऋषि ने इनके वेद होने की साक्षी नहीं दी (५) ब्राह्मणों में इतिहास हैं इस कारण भी वे वेद नहीं हो सकते अतएव पुराण हैं।

इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य का कर्तव्य है। इस कर्तव्य को आगे रखकर अपनी बुद्धि के अनुसार हम भी कुछ विचाररूप में यहां लिखते हैं,आशा है कि जिज्ञासु सुजन समुदाय इससे यथेच्छ लाभ उठावेगा। प्रथम पुष्टि में यह दिखलाया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी संज्ञा है इस कारण इनकी वेद संज्ञा नहीं हो सकती। इस पुष्टि में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया केवल लेख लिखकर आज्ञामात्र दी है। क्या लेखक यह तो नहीं समझा कि जब एक वस्तु की एक संज्ञा हो गई तो फिर द्वितीय संज्ञा कैसे होगी। यदि यही बात है तब तो निश्चय दयानन्द भ्रम में पड़ गया। कोई भी संज्ञा अन्य संज्ञा का निषेध नहीं कर सकती। यदि हम निषेध करना मान लें तो क्षति यह होगी कि ब्राह्मणों की पुराण संज्ञा ही कल्प संज्ञा का विरोध कर बैठेगी। यदि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा का विरोध करती है तो इसी नियम के अनुसार प्रथम प्राप्त पुराण संज्ञा किसी प्रकार भी कल्पसंज्ञा न होने देगी। दुर्जनतोष न्याय से यदि हम यह भी मान लें कि किसी प्रकार बलात्कार हम कल्प संज्ञा कर ही लेंगे तो फिर पुराण और कल्प ये दोनों संज्ञा तृतीय गाथा संज्ञा का निश्चय निषेध कर देंगी। इसमें कोई 'ननु' 'नच' 'किंतु' 'किम्बा' कर नहीं सकता क्योंकि सर्वतंत्र सिद्धान्त होगया कि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा की बाधा करती है। सिद्धान्त विपरीत कभी नहीं हो सकेगा। हम यह भी मान लें कि पुराण, कल्प, संज्ञा रहते हुये भी किसी रीति से गाथा संज्ञा कर लेंगे तो फिर पुराण, कल्प, गाथा ये तीन संज्ञा नाराशंसी संज्ञा न होने देंगी। किन्तु यहां पर इन तीन संज्ञाओं के रहते हुये भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा होजाती है तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी इन चार संज्ञाओं के रहते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती स्वामी ने जो संज्ञा रहते हुये द्वितीय

संज्ञा के निषेध का नियम स्थापित किया था वह तो इन्हीं परस्पर चार संज्ञाओं के होने में कपूर की भांति उड़ गया, फिर इन चार संज्ञाओं के रहते हुये पंचम संज्ञा का अवरोध किस नियम से कर सकते हैं, वह नियम स्वामी के लेख में आया नहीं, अतएव यह सुतरां सिद्ध है कि ब्राह्मणों को पुराण, गाथा, कल्प नाराशंसी संज्ञा रहते हुये भी वेद संज्ञा अवश्य है।

एक संज्ञा दूसरी संज्ञा को बाधक नहीं होती, इस विषय में हम एक उदाहरण व्याकरण का देते हैं। 'हरि' इसकी प्रथम शब्द संज्ञा है, शब्द संज्ञा रहने पर भी वैयाकरण मनुष्य इसकी प्रातिपदिक संज्ञा करते हैं। प्रातिपदिक संज्ञा होने में शब्द संज्ञा किंचिन्मात्र भी छेड़ नहीं करती किन्तु द्वितीय संज्ञा को स्वीकार कर लेती है। विद्वान् लोगों को तो दो संज्ञा होने पर भी तो सन्तोष नहीं होता, वे लोग तृतीय "भ" संज्ञा कर बैठते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा और प्रातिपदिक संज्ञा "भ" संज्ञा से शत्रुता नहीं करती। फिर चतुर्थी के एक बचन में इसी "हरि" की कि जिसकी शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा हो चुकी है 'घि' संज्ञा करते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा ने घि संज्ञा का निषेध नहीं किया फिर हम कैसे मानलें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी वेद संज्ञा का निषेध कर देंगी।

अब एक लौकिक उदाहरण ले लीजिये। कल्पना कीजिये कि कानपुर में कोई रघुनन्दन शुक्ल नामक व्यक्ति है। वह पाठशाला में संस्कृत पढ़ने लगा परिश्रम के फल से वह कुछ दिन में शास्त्री परीक्षा दे आया और उत्तीर्ण भी हो गया। अब उसकी तीन संज्ञा होगई, रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री। यहां पर रघुनन्दन और शुक्ल इन दो संज्ञाओं ने शास्त्री संज्ञा के आने पर उसकी कुछ भी रोक टोक नहीं की। अब यह सज्जन अंग्रेजी भाषा में परिश्रम करने लगा, कुछ दिन के पश्चात् बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। अब यह अपने को रघुनन्दन-शुक्ल-शास्त्री बी० ए० लिखने लगा रघुनन्दन-शुक्ल-शास्त्री इन तीन संज्ञाओं ने बी० ए० संज्ञा का कुछ भी विरोध नहीं किया। यही पुरुष राज्याधिकार में प्रवेश कर गया और शनैः शनैः जज हो गया, अब एक संज्ञा और आगई। प्रथम की संज्ञाओं ने जज संज्ञा से महाभारत नहीं मचाया फिर हम कैसे मानलें कि पुराण, कल्प, गाथा नाराशंसी संज्ञा ब्राह्मणों की वेद संज्ञा होने में घोर युद्ध मचावेंगी।

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि मंत्र भाग में जिस मंत्र की पुराण इतिहास संज्ञा है उसी मंत्र की वेद संज्ञा भी है। मंत्र नीचे देखिये—

यस्या वै मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम्। तांवैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक्। सोदाक्रमत्सा सुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति तस्या विरोचनः। प्राह्लादिर्वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम्।

अ० का० ८ अ० ५ सू० १३

उस गोरूप पृथ्वी का वैवस्वत मनु वत्स (बछड़ा) हुआ, पृथ्वी का पात्र बनाया, वेन के पुत्र महाराज पृथु ने उस गो से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा, फिर वह गोरूप पृथ्वी असुरों के पास पहुँची, असुरों ने उसका आह्वान किया। आह्वान के पश्चात् जब वह गो असुरों के पास ठहर गई तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बना कर पृथ्वीपात्र में अपने भोजन को दुहा।

इस मंत्र की पुराण, इतिहास संज्ञा रहते पर भी वेद संज्ञा सिद्ध है अतएव इसके वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं हिलाता। इसी उदाहरण को सन्मुख रखलें तो फिर वह कौन न्याय है जिसका आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं होती। स्वामी ने किंचित् भी विचार नहीं किया, हास्यास्पद लेख लिखने का ही उद्योग किया है। अब हम यह सिद्ध करेंगे कि कल्प की वेद संज्ञा होती है "चत्वारि शृंगा" इस वेद मंत्र में कल्प की वेद संज्ञा वेद ने ही मानी है और इसके ऊपर यास्क मुनि ने निरुक्त भी किया है। जब कि कल्प की वेद संज्ञा स्वतः प्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है और उसके साक्षी वेद ज्ञाता मुनि यास्क हैं फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मानलें कि कल्प संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती। विचारशील सज्जनों की दृष्टि में स्वामी का भाषण बाल भाषण की तुल्यता से अधिक बिन्दुमात्र भी गौरव नहीं रखता। 'चत्वारि शृंगा' यह मंत्र इसी लेख में निरुक्त सहित हम आगे लिखेंगे अतएव हमने यहाँ नहीं लिखा। आगे यह भी दृष्टिगोचर कराने का उद्योग करते हैं कि नाराशंसी की भी वेद संज्ञा होती है। अधोलिखित मंत्र के अवलोकन मात्र से निरंतर सिद्ध हो जावेगा।

इदं जना उपश्रुत नराशंसस्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आरुशमेषु दद्महे॥

अथर्व० कां० २०

हे मनुष्यो! इस बात को सुनो, मनुष्य स्तुत किये जाते हैं साठ सहस्र

और नब्बे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं।

इस मंत्र को नाराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती। फिर हम किस आधार का अवलम्बन कर कह सकते हैं कि नाराशंसी संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती। ब्राह्मणों के वेद न होने में जो प्रथम हेतु लिखा गया था उसका सारांश पाठक अवलोकन कर चुके। अब द्वितीय हेतु पर विचार का आरम्भ करते हैं। द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं किन्तु महर्षि लोगों के बनाये हैं।

स्वामी के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक जैसा है। इनका मन्तव्य है कि अग्नि, वायु, रवि, अंगिरा इन चार ऋषियों द्वारा वेद संसार में आया अर्थात् ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक वेद ज्ञान इनके अन्तः करण में प्रकाशित किया उसी को इन्होंने संसार में फैलाया, इसी ज्ञान का नाम वेद ज्ञान है। ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव होने में इनका मत है कि अनेक ऋषि समाधिस्थ हुये और उसी में परमात्मा ने उनके अन्तः करण में वेदार्थज्ञान प्रकाशित किया उस ज्ञान का नाम "ब्राह्मण-ग्रन्थ" है।

इस मत में वेद और ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं, ऋषि समाधि में एक दशा में बैठे, ज्ञान की उपलब्धि एक ही प्रकार से और एक ही ईश्वर से हुई, फिर हमको यह ज्ञान नहीं होता है कि वेदों को ईश्वर प्रणीत और ब्राह्मणों को ऋषि प्रणीत किस हेतु से माना। यदि वास्तव में दोनों में ही ज्ञान ईश्वर का है तब तो दोनों ही ईश्वर के ज्ञान हैं। ईश्वरज्ञान रहने पर भी एक ईश्वर प्रणीत और द्वितीय ऋषि प्रणीत लिखना प्रमाद है अतएव सिद्ध हुआ कि वेद और ब्राह्मण इन दोनों का प्रादुर्भाव इनके मत में एक जैसा है फिर ब्राह्मणों को ऋषि प्रणीत लिखना बड़ी भारी भूल है।

इस प्रकार से जो वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव वादी ने माना है, वह कल्पित है। न कोई अग्नि, न कोई वायु और न कोई रवि ऋषि था। अंगिरा ऋषि अवश्य थे किंतु उनके द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं है अतएव ये समस्त मानसिक कल्पनायें हैं 'मानसिक कल्पना रहने पर भी ये सत्य मानी जाती हैं, जब इस के मत में मंत्र

और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीयज्ञान हैं फिर ब्राह्मण भाग ऋषि प्रणीत किस प्रकार हुआ इस पर पाठक गण विचार करें।

वैदिक सिद्धान्त में भी मंत्र और ब्राह्मण दोनों का प्रादुर्भाव तुल्य है। शतपथ में लिखा है।

स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदोऽथयर्वजुदःसामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाःसूत्राण्यनुव्याख्यानानि।

शत० १४ प्र०अ० ४ कं० १०

जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम्र उठता है और वह धूम्र चारों दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में ईश्वरीय ज्ञान जो कि ईश्वर का स्वास भूत है वह ऋग्वेद,यजुर्वेद सामवेद,अथर्ववेद,इतिहास,पुराण,उपनिषद् श्लोक,सूत्र और व्याख्यान रूप होकर चारों तरफ फैला।

इस वैदिक सिद्धान्त को जब हम आगे रखते हैं तब मंत्र ,ब्राह्मण,पुराण आदि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव एक जैसा है फिर हम एक को ईश्वर प्रणीत और द्वितीय को ऋषि प्रणीत किस न्याय को आगे रख कहने का साहस कर सकते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण ग्रंथ ऋषि प्रणीत नहीं किंतु ईश्वर प्रणीत हैं अतएव द्वितीय हेतु निःसन्देह सार शून्य व्याधि ग्रस्त पुरुष के कथन की तुल्यता को छोड़ कर शेष कुछ भी फल नहीं रखता।

तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं क्यों कि वे वेद का व्याख्यान हैं अतएव पुराण हैं। क्या आनन्द का लेख है अवलोकन मात्र से चित्त आनन्दाब्धि में निमग्न होजाता है जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का होजावे—यह लेख हमारी बुद्धि में समावेश नहीं करता। हमने तो आज तक यही पढ़ा और यही सुना है कि जिस पुस्तक में जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उसी विषय का रहता है,उदाहरण अवलोकन कीजिये। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के नियम रूप सूत्रों का निर्माण करके अष्टाध्यायी रची। उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतंजलि ने विस्तृत व्याख्यान किया,उस विस्तृत व्याख्यान का नाम "महाभाष्य" है। आज तक भारत के गौरव रखने वाले "महाभाष्य" को

सभी विद्वान् व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं, फिर वह कौन नियम है जिस नियम से पुस्तक अपने विषय को छोड़ कर अन्य विषय का होजाता है। यदि पुस्तक का अन्य विषयक होना सिद्ध है तब तो अनर्थ हो जावेगा ,आगे को इसी नियम के अनुकूल महाभाष्य भी व्याकरण का ग्रन्थ नहीं रहेगा। कल्पना करो किसी मनुष्य से पूछा कि महाभाष्य किस विषय का पुस्तक है ? उस ने उत्तर दिया कि "महाभाष्य" तो ज्योतिष् का ग्रंथ है। प्रश्न कर्ता ने कहा हम तो आज तक व्याकरण का सुनते थे ? उत्तर दाता कहेगा कि महाभाष्य व्याकरण का ग्रंथ नहीं क्यों कि उस में व्याकरण का व्याख्यान है अतएव वह ज्योतिष का ग्रंथ है।

द्वितीय उदाहरण देखिये ;महर्षि गौतम ने "न्यायदर्शन,, का निर्माण किया,उस न्याय दर्शन के ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य किया, आज तक सभी विद्वान् वात्स्यायन भाष्य को न्याय का ग्रन्थ बतलाते हैं। तथा न्यायदर्शन के व्याख्यान रूप "रामरुद्री" दिनकरी,, आदि २ बड़े २ पुस्तक न्याय के ग्रंथ कहलाते हैं किन्तु अब वे न्याय के ग्रन्थ न रहेंगे। कल्पना करो एक मनुष्य ने किसी से पूछा कि "वात्स्यायन भाष्य ,,और राम रुद्री,, तथा 'दिनकरी' किस विषय के ग्रंथ हैं ? उत्तर मिला वैद्यक के। प्रश्न कर्ता ने कहा हम तो आजतक उनको न्याय के पुस्तक ही सुनते आये हैं ? उत्तर दाता बोला कि यह कहने वालों की भूल है' वात्स्यायन भाष्य और 'राम रुद्री, तथा 'दिनकरी, में न्याय का व्याख्यान है इस कारण वे वैद्यक के ग्रन्थ हैं।

इस सिद्धान्त को आगे रखलें तब तो कुछ का कुछ हो जावेगा। वादी का यह हेतु शास्त्र विरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध और प्रत्यक्ष विरुद्ध है। जब व्याकरण का व्याख्यान रूप महाभाष्य व्याकरण है और न्यायके व्याख्यान रूप 'वात्स्यायन भाष्य' तथा 'रामरुद्री' 'दिनकरी' न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे। इसके ऊपर पाठक ही विचार करलें कि इस तृतीय हेतु में कितना गौरव है।

चतुर्थ हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि एक कात्यायनि ऋषि को छोडकर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में सम्मति नहीं दी अतएव वे पुराण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इसको एक नहीं समस्त ऋषियों ने माना है। उन समस्त ऋषियों में से कुछ ऋषियों के लेख नीचे लिखे जाते हैं।

महर्षि जैमिनि।

तच्चोदकेषु मंत्राख्या।

मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः।

मीमांसा० अ० २ सू० ३३

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मंत्र है। मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिये, महर्षि जैमिनि ने दो सूत्रों में मंत्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना या नहीं? पहिले सूत्र में मंत्र भाग को वेद बतलाया और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया। आप कहते थे कि केवल कात्यायन ऋषि ने ही ब्राह्मणों को वेद माना है; यदि ऐसा है तो फिर ये दूसरे महर्षि जैमिनि कहां से कूद बैठे जो ब्राह्मणों को वेद कह रहे हैं। और देखिये—

महर्षि गौतम।

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।

न्यायद० अ० २ आ० १ सू० ५७

(तदप्रामाण्यम्) उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि (अनृत-व्याघात पुनरुक्तदोषेभ्य उसके वाक्यों में असत्, पूर्वापर विरोध, दो बार कहना इत्यादि दोष हैं। असत्य का उदहरण यथा 'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत' जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करे परन्तु कहीं पुत्रेष्टि करने से भी पुत्र नहीं होता, जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्य का प्रमाण नहीं तो 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' स्वर्ग की कामना से अग्निहोत्र करे, ऐसा जो वेद में अदृष्टार्थ वाक्य है उसको (प्रामाण्यम्) सत्यता में कैसे विश्वास होवे? यहां (तदप्रामाण्यम्) इस सूत्र में 'तत्' पद से 'वेद' ही का ग्रहण है, इस रीति से वेद के अप्रमाण की आशंका करके (अग्नि होत्र) इस ब्राह्मण वाक्य को अप्रमाण दिखलाते हैं।

यज्ञ का करना ब्राह्मणों में लिखा है। और 'पुत्रेष्टि करने से पुत्र नहीं होता' इस बात को लेकर वेद पर मिथ्या कलंक लगाया गया है। यदि ब्राह्मणों को वेद न माना जाता तो मिथ्या बोलने का कलंक केवल ब्राह्मणों पर ही लगता क्योंकि मंत्र भाग में कहीं पर पुत्रेष्टि, आदि यज्ञों की विधि नहीं लिखी। यहां वेद पर कलंक लगाया गया है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। महर्षि

गौतम कृत न्याय दर्शन से ब्राह्मणों का वेद होना सिद्ध हो गया। अब आगे चलिये—

महर्षि कणाद ।

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां,दृष्टाऽभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।

वैशे० द० अ० १० आ० २ सू० ८

(दृष्टानाम्) [वेद में] देखे हुये दृष्टप्रयोजनानां जिसका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है उनका तथा (दृष्टाभावे) जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी (प्रयोगः) अनुष्ठान करना (अभ्युदयाय) पार लौकिक फल के लिये [माननीय है]

दृष्ट और अदृष्ट फल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्ट फल वेद में बतलाया गया है। अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं।

महर्षि वात्स्यायन ।

वात्स्यायन भाष्यम्–पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृष्यते । दृष्टार्थस्य वाक्यस्य अनृतत्वाददृष्टार्थमपि वाक्यं अग्निहोत्रंजुहुयात्स्वर्गकाम इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते ।

वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होता अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसा कि 'अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है' यह भी मिथ्या है।

जिस प्रकार न्याय दर्शन के कर्ता महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में ब्राह्मणों को वेद माना है उसी प्रकार न्याय दर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ब्राह्मणों को वेद स्वीकार करते हैं।

महर्षि व्यास ।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।

वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म प्रत्यक्ष व अनुमान का विषय नहीं है, केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक (प्रमाणवान्) है, मूल शब्द यहां प्रमाण वाचक है, शब्द ही प्रमाण

में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना व कारण होना सिद्ध है। जब श्रुति (शब्द प्रमाण) से सिद्ध है तो अन्य प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध होने से उसके कारण व कर्ता होने में शंका व दोष आरोपण करना युक्त नहीं है।

ब्रह्म सूत्र के आरम्भ से अन्त तक उपनिषदों की व्याख्या है। यहां पर उपनिषद् जो ब्राह्मणों का भाग है उसको वेद मान कर भगवान् व्यास जी ने इस सूत्र को रचा है इससे सिद्ध है कि उपनिषद् जो ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग है वह वेद है ? वेदान्त के भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य भगवान् बल्लभ, प्रभु निम्बार्क तथा माध्व और जगद्गुरु शंकराचार्य हैं, इन सभी आचार्यों ने उपनिषदों को वेद माना है।

अब कौन विवेकी पुरुष कह सकता है कि ब्राह्मण भाग वेद नहीं है और न मानने का कोई यत्न नहीं "मेरे घोड़े के तीन टांग" इसका कोई उपाय भी नहीं।

और देखिये—

महर्षि बौधायन।

मंत्र ब्राह्मणमित्याहुः।

बौधायन० सूत्र

मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद है। हमको नहीं मालूम, वादी ने कात्यायनि सूत्र ब्राह्मणों को वेद कहता है, ऐसा क्यों लिखा और इस बौधायन सूत्र को क्यों छिपाया।

महर्षि आपस्तम्ब

मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम्।

मंत्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है।

ऊपर लिखे थोड़े से ऋषि हमने गिनवा दिये। इतने ही ऋषि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते किन्तु जितने ऋषि आज तक हुये हैं वे सब ही ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। एक ऋषि का प्रमाण और देकर हम इस लेख को बन्द करेंगे।

महर्षि मनु

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनु जी का कथन है वेद में बचन मिलता है कि सूर्य के उदय और अनुदय काल में तथा सूर्य और नक्षत्रों के अदृश्य काल में भी हवन करना चाहिये।

'उदिते जुहोति' - 'अनुदिते जुहोति'

ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनुजी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं? क्या आनन्द की बात है कि समस्त ऋषियों ने ब्राह्मणों को जो वेद माना है वह तो तुम मानो मत किन्तु किसी एक भी ऋषि ने जिन ब्राह्मणों को पुराण नहीं माना वह तुम मान लो। धन्य है इस उपदेश को?

ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं इस में पांचवां कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है इस कारण वे वेद नहीं? इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि मंत्रभाग में भी इतिहास है, तब तो मंत्र भाग भी इनकी दृष्टि में वेद न ठहरेगा।

मंत्र भाग का इतिहास देखिये

संमात पत्न्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
मूषो न शिश्ना व्यदयन्ति माध्यः स्तोतारं
ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी।

ऋ० अ० १ अ० ७ सू० १०५ मं०

त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रतिबभौ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्र मृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति त्रितस्तीर्णतमो मेधया बभूवापिवा संख्यानामेवाभिप्रेतं स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवुः।

यह निरुक्तकार का लेख है अर्थात् मुझको सौतों की समान चारों ओर से कुयें की ईटें दुःख देती हैं और जैसे मूसे अन्नलिपित सूत्रों को काटते व खाते हैं तैसे ही हे इन्द्र! तेरी स्तुति करने वाली मुझको कामनायें भक्षण कर रही हैं अर्थात् दुःख दे रही हैं। हे पृथ्वी आकाशाभिमानी देवताओं! मेरे इस बचन का प्रयोजन जानो अर्थात् जिस कारण से मैं रो रहा हूँ इस अतिभयानक कूप से मेरा उद्धार करो। यह सूक्त कुयें में गिरे हुये त्रित को प्रकाशित हुआ। इस सूक्त में जो वाक्य है वह इतिहास मिश्र है जैसे "त्रित कूपेऽवहितो देवा-

त्ववत् कनये इत्येवमादि" अर्थात् जैसे कुयें में पड़ा हुआ त्रित देवताओं की स्तुतियां करके आह्वान करता हुआ फिर यह इतिहास और गाथावद्ध होता है। उस का नाम त्रित क्यों हुआ? वुद्धि करके तीर्णतम अर्थात् अत्यंत तरने वाला हुआ, अथवा ये तीन भाई थे एकत, द्वित, त्रित, तीसरा होने से इसको त्रित कहते हैं।

मंत्र संहिता का एक इतिहास हमने पाठकों के आगे रख दिया, जो लोग इस के पक्ष पाती हैं ब्राह्मण ग्रंथ इस कारण वेद नहीं कि उनमें इतिहास है। अब वे क्या कहते होंगे? क्या इतिहास बीच में पड़ने से पुस्तक वेद नहीं रहता? यदि ऐसा है तब तो मंत्र भाग भी वेद नहीं रहेगा क्योंकि मंत्र भाग में इतिहास विद्यमान है और उसके ऊपर निरुक्त है, फिर पूर्व न्याय से मंत्र भाग वेद कैसे हो सकता है? हमने यहां पर एक इतिहास दिखला दिया, किंतु मंत्र भाग में सैकड़ों इतिहास हैं। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मंत्र भाग भी वेद नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते, पुराण तो ब्रह्मपुराण आदि अठारह ही पुस्तक रहेंगे। ब्राह्मण पुराण नहीं हैं इस के कारण नीचे दिखलाये जाते हैं।

(१) किसी भी ब्राह्मण के आरंभ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उनमें पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे? इसके विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कंध पर "इति श्री महापुराणे" लिखा है, आरंभ में पुराण, अन्त में पुराण, प्रत्येक अध्याय में पुराण।

(२) ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अंग है। वेद का प्रधान अंग ब्राह्मणों में वर्णित है इस कारण ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद हैं।

ब्राह्मणों का सम्बन्ध यज्ञ से है इसका प्रमाण नीचे देखिये—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधाबद्धो मंत्रब्राह्मणकल्पैर्वृषभो रोरवीति। रोरवण-

मस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुभिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुभिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति । महोदेव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येषहि मनुष्यानाविशति यजनाय । तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ।

चार वेद चार सींग हैं, तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायणीय और उदयणीय ये दो शिर हैं, सात छन्द हाथ हैं, मंत्र—ब्राह्मण–कल्प इन तीन से बंधा, शब्द करता हुआ बैल महादेव नाम यज्ञ यजमान के लिये मनुष्यों में प्रवेश करता है।

उपरोक्त मंत्र और निरुक्त से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञ कर्म का वर्णन है अतएव वे पुराण नहीं किन्तु वेद हैं. क्योंकि यज्ञ को विधि वेदों में ही है।

(३) वैदिक लोगों के यहां श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं, जिसमें वेद के मंत्र बोले जावें और वेद ही में जिसकी विधि मिले उस कर्म का नाम श्रौत कर्म है। मंत्र 'मंत्रसंहिता' से लिये जाते हैं और विधि 'ब्राह्मण' तथा 'श्रौतसूत्रों' से ली जाती है ऐसे कर्म का नाम श्रौतकर्म है। श्रौत का अर्थ है श्रुति नाम वेद का बतलाया कर्म। जब इनका बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है तब ये पुराण नहीं किन्तु वेद हैं।

(४) जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी न किसी वेद की शाखा के ब्राह्मण हैं। जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है। जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं तो फिर पुराण कैसे हो जावेंगे ? तब तो वेद ही रहेंगे।

(५) ब्राह्मण ग्रन्थ ब्राह्मण भाग कहलाते हैं, भाग नाम एक हिस्से का है। जहां पर हिस्सा अर्थात् जुज होता है वहां पर हिस्से वाला भी होता है। तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ जिसके भाग हैं ? ब्राह्मण समुदाय पुराण का भाग नहीं किन्तु वेद का भाग है अतएव ये पुराण नहीं है, वेद हैं।

(६) जहां जहां पर पुराण का पाठ उद्धृत किया गया है वहां पर 'अमुक पुराण में है' ऐसा लिखा है और जिस ग्रन्थ में ब्राह्मणों का पाठ उद्धृत किया वहां श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि यह शतपथ पुराण का वचन है किन्तु ऐसा कहीं नहीं मिलता अतएव ये पुराण नहीं।

(७) किसी भी ऋषि ने इनके विषय में पुराण होने की सम्मति नहीं दी अतएव ये पुराण नहीं।

(८) वेद के प्रादुर्भाव के साथ इनका प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भाव विधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक् और पुराण पृथक् हैं अतएव ये पुराण नहीं। ब्राह्मण और पुराणों की पृथक्ता में हम गोपथ ब्राह्मण की श्रुति ऊपर दे आये हैं।

(९) ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण इन दोनों के विषय में बड़ा अन्तर है। महर्षि वात्स्यायन ने 'समारोपणादात्मन्यप्रतिषेध.' न्याय दर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखा है कि 'यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य' अर्थात् मंत्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है और पुराण इतिहास का विषय लोकवृत्त है। जो बात महर्षि वात्स्यायन ने लिखी है वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है जो ब्राह्मणों में बिल्कुल नहीं है, पुराणों का लक्षण लिखते हुये महर्षि व्यास जी ने वायु पुराण में एक श्लोक लिखा है वह यह है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥

सर्ग (तत्वों की रचना) विसर्ग (प्राणियों की रचना) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र (कैरेक्टर) ये पांच बातें जिसमें हों उसको पुराण कहते हैं।

वंश और मन्वन्तर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सर्वथा अभाव है, फिर हम उनको पुराण कैसे मानलें। प्रोफेसर विलसन तथा वेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जो पुराणों पर विचार किया है वह पांच लक्षणों को लेकर किया है, ये दोनों ही उस ग्रन्थ को पुराण मानते हैं कि जिसमें पांच लक्षण हों और सभी शास्त्र इस बात को कह रहे हैं कि पांच लक्षण जिसमें हों वह पुराण है फिर हम ब्राह्मणों को पुराण कैसे मानें ?

हमने अनेक प्रमाण इसके दिये हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इस विषय में और भी सहस्रों प्रमाण इसकी पुष्टि में पाये जाते हैं किन्तु, दयानन्द इन सेकड़ों प्रमाणों को छिपा ब्राह्मणों को पुराण बतलाते हैं, क्या यह दयानन्द की चालबाजी नहीं है ?

आर्यसमाजियो ! तुम सच कहो स्वा० दयानन्द जी वेदों के रक्षक हैं या

मस्तक जो मार कूट-कचूमर निकाल वेदों को पुराण बतला रहे हैं ? संसार के आरम्भ दिन से सम्वत् १६२५ तक एक भी ऋषि-महर्षि-आचार्य-पण्डित संसार में ऐसा न हुआ जो ब्राह्मणों को पुराण लिखता । क्या ये सब मूर्ख थे ? एक दयानन्द जी ही ऐसे विद्वान् हुये जिन्होंने ब्राह्मण ग्रंथों को पुराण समझा ? जिस समय इस विषय पर शास्त्रार्थ होता है आर्यसमाजी स्पष्ट कहते हैं कि हम दयानन्द के लेख को बिल्कुल नहीं मानते । हम भी छुटे हुये हैं, उस समय प्रश्न कर बैठते हैं तो क्या तुम ईशामसीह के लेख को मानते हो ? स्वामी जी का यह अन्याय तुम्हारी इज्जतों को धूल में मिलाता रहेगा । तुम अब भी समझ जाओ, जिस दिन संसार को दयानन्द की इस चालाकी का पता लगेगा उस दिन आर्यसमाजी कुत्ते की भांति दुद्कारे जावेंगे । तुम जानते हो यह लेख स्वामी जी ने क्यों लिखा ? इसके लिखने का अभिप्राय यह है कि हमारे आर्यसमाजी शिष्य वेद-शास्त्र की तरफ से तो कोरे मूर्ख रहते हैं वे हमारे जाल में फंस जावेंगे, वेदों को पुराण कह कर दूर फेंक देंगे और हमारे मनगढ़न्त,कपोल कल्पित सिद्धान्तों को वेद मानने लगेंगे । तुमको इस जाल में फांसने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने अनोखी चालाकी की कबड्डी खेली है । तुम सच कहो वेद को पुराण बतलाना क्या यह स्वा० दयानन्द की चालाकी नहीं है ?

मंत्रभाग का कतल

दयानन्द जी केवल ब्राह्मणों को ही अमान्य,अप्रमाणिक नहीं लिखते किंतु ये महात्मा तो मंत्रभाग को भी वेद नहीं मानते ।

नं० (३६) आप ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं कि "वेदों की ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण हैं" ।

स्वामी जी की यह सफाई बड़े मजे की है इस को वेद के जानने वाले ही समझ सकते हैं । वर्तमान आर्यसमाजी जो वेद वेद रटते हैं ,जिन्होंने कभी भी वेद नहीं देखा वे स्वा० दयानन्द जी की इस चालबाजी को समझ नहीं सकते । चारों वेदों की ११३१ पुस्तकें हैं,इन से भिन्न एक अक्षर भी मंत्र भाग का नहीं है,इन ११३१ ग्रंथों को शाखा कहते हैं । इस के ऊपर महाभाष्य लिखता है कि

"बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदः" ।

वेद बहुत भागों में विभक्त हैं,यजुर्वेद की एक सौ एक और सामवेद की एक सहस्र एवं ऋग्वेद की इक्कीस और अथर्व वेद की नौ शाखा हैं ।

स्वा० दयानन्द जी की चालबाजी का मजा यहां आता है (१) ११३१ शाखाओं में से आपने चार शाखाओं को तो असली वेद माना और ११२७ को शाखा (२) ये समस्त शाखायें ईश्वर के अवतार ब्रह्मा के द्वारा संसार में प्रकट हुई हैं इन में से स्वा० दयानन्द जी चार को तो ईश्वर कृत और ११२७ को ब्रह्मादि ऋषियों की बनाई लिखते हैं. स्वामी की दोनो बातें सर्वथा असत्य हैं निराकार ने वेद का एक अक्षर भी नहीं बनाया,सभी वेद निराकार ईश्वर ने साकार ब्रह्मावतार बन कर कहे हैं फिर 'चार शाखा निराकार ने बनाई,इस वेद नाशक चालबाजी को कोई कैसे सच्ची साबित करेगा (३)ब्रह्मा ऋषि आज तक कोई हुआ ही नहीं, जब ब्रह्मा ऋषि ही नहीं हुआ फिर उस के द्वारा शाखाओं का निर्माण मान लेना चालबाजी बना कर आर्यसमाजियों की आखों में धूल झोकना है (४) शाखाओं में वेद का व्याख्यान बतलाना सिद्ध करता है कि दयानन्द ने कभी शाखा आंख से नहीं देखी, यह चण्डूखाने की गप्प है कि शाखाओं में व्याख्यान है, कोई आर्यसमाजी किसी शाखा में वेद का व्याख्यान सिद्ध नहीं कर सकता ।

जिन चार ग्रन्थों को दयानन्द असली वेद मानते हैं वे असली वेद नहीं हैं वरन् वे भी क्रम से शाकल,माध्यन्दिनी,कौथुमी, शौनकी शाखायें हैं । जिस को स्वा०दयानन्द जी यजुर्वेद कहते हैं वह यजुर्वेद की माध्यंदिनी शाखा और जिसको ऋग्वेद मानते हैं वह ऋग्वेद की शाकल शाखा तथा जिसको सामवेद लिखते हैं वह सामवेद की कौथुमी शाखा, इसी प्रकार जिसको अथर्व-वेद समझा दिया जाता है वह अथर्ववेद की शौनकी शाखा है । बहुत चालबाजी करी किन्तु चार शाखाओं को तो वेद मानना ही पड़ा । आर्यसमाजी यह कहदिया करते हैं कि ये शाखा तो अवश्य हैं किन्तु साथ ही साथ ये चारो संहिता भी हैं। हाय आर्यसमाजियो ? तुम्हारी तकदीर फूट गई, तुमको बार बार मूर्ख बनाकर चालाकियों में फांस लिया जाता है,तुम्हारे साथ में यह अन्याय हो रहा है इतने पर भी तुम कुछ नहीं समझते । जिस प्रकार ये चारो शाखायें शाखा रहने पर भी संहितायें हैं उसी प्रकार ११२७ शाखायें शाखा रहने पर भी संहितायें हैं। क्या तुम लोगों ने कभी यह भी नहीं सुना कि कृष्ण यजुर्वेद की शाखा तैत्तिरीय संहिता है । इसी प्रकार सब संहितायें और सब शाखायें हैं फिर क्या कारण है

कि ११२७ शाखाओं को दयानन्द जी प्रमाण नहीं मानते और चार को मानते हैं इसका कारण यही है कि स्वामी दयानन्द जी आगे चलकर घोर पाप, कठोर अन्याय करने वाले हैं वह यह कि वे कुछ नकली वेदमंत्र बनावेंगे। स्वामीजी की इच्छा यह है कि इस ईश्वरीय वेद में तो दियासलाई लग जाय और मेरे बनाये हुये वेद मंत्र कहलाने लगें इसलिये ये सब चालबाजियां हो रही हैं। इन चालबाजियों में फंसकर आर्यसमाजी अपनी इज्जत को दो कौड़ी में नीलाम कर रहे हैं।

एक दिन बालकृष्ण जी भट्ट और हमसे बंबई में 'ईश्वर स्वरूप' पर शास्त्रार्थ होने लगा। भट्ट जी ने सबसे प्रथम "अपाणिपादः" यह उपनिषद् की श्रुति पेश की और बतलाया कि ईश्वर निराकार है। हमने इसके उत्तर में कहा कि आर्यसमाज उपनिषद् को स्वतः प्रमाण नहीं मानती, आपने अपने पक्ष की पुष्टि में जो उपनिषद् का प्रमाण दिया है यह गलती खाई है, इस प्रमाण को वापिस लो और अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये वेद का प्रमाण दो? भट्ट जी हंसे और हंसकर उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि में "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" यह मंत्र दिया। इसके उत्तर में हमने कहा कि यह प्रमाण यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा का है, शाखाओं को दयानन्द प्रमाण नहीं मानते इस कारण शाखाओं को छोड़ कर वेद का प्रमाण दो? इसके ऊपर बालकृष्ण जी ने कहा कि शाखाओं से भिन्न तो कहीं एक भी मंत्र नहीं मिलता, क्या शाखा और हैं और वेद और हैं? हमने कहा जी हां, देखो सत्यार्थप्रकाश उठाकर स्वामी जी शाखाओं को स्वतः प्रमाण वेद नहीं मानते? अन्त में भट्ट जी को कहना पड़ा कि यह दयानन्द जी की भूल है। इसके उत्तर में हमने कहा कि आप शास्त्रार्थ हार गये। चालीस वर्ष से यह झगड़ा चला हुआ है, आर्यसमाज कहती है कि दयानन्द जी ने जो लिखा वह वेदानुकूल और सत्य है, इसके उत्तर में हम कहते हैं कि दयानन्द का सब लेख वेद विरुद्ध और मिथ्या है। आज आपने दयानन्द के लेख को मिथ्या मान लिया बस आपका पराजय और हमारा विजय हो गया।

जब तक आर्यसमाज दयानन्द की चालबाजियों में फंसी रहेगी, ठोकरें खाती रहेगी और शास्त्रार्थ में हारती रहेगी इस कारण दयानन्द की चालबाजी एवं घोर पाप तथा अन्याय से आर्यसमाज को दूर होजाना चाहिये।

चार शाखा

नं० (३७) दयानन्द और आर्यसमाजी इन चार शाखाओं को भी प्रमाण

नहीं मानते, इनके मंत्र आगे रख कर अर्थ मन माने करते हैं, न देवता का ख्याल करें, न प्रकरण को देखें जैसे जूते का अर्थ जलेबी और लकड़ी का अर्थ लड्डू हीं ऐसे मनमते फर्जी झूठे अर्थ करके चारों शाखाओं से ईसाई धर्म का मंडन करना यह दयानन्द का लक्ष्य है। यही लक्ष्य आर्यसमाजियों का है दयानन्द ने यजुर्वेद का भाष्य किया है,यजुर्वेद में जो कुछ भी वर्णन है उसको छिपा कर स्वामी जी ने समस्त यजुर्वेद से ईसाई पन सिद्ध किया है इस को देखने की कृपा करें।

१ 'यजनाद्यजुः' यजुर्वेद में यजन यज्ञों का वर्णन है इसी से इसका नाम यजुर्वेद रक्खा गया है। शतपथ और कात्यायनि श्रौत सूत्र के क्रमानुसार यजुर्वेद के वर्णनीय विषय ये हैं (१) दर्श पूर्णमास इष्टि के मंत्र (२) दर्शपूर्णमास के मंत्र(३) आधान,अग्न्युपस्थान,चातुर्मास्य आदि के मंत्र (४) अग्निष्टोम में ऋत्विक् सहित यजमान के शालाप्रवेश से आरम्भ होकर क्रीत सोम, शाला प्रवेश के अन्त तक के मंत्र (५) सौमिक वेदि प्रधान में आतिथ्य से लेकर यूपनिर्माण तक के मंत्र (६) अग्नीषोमीयपशु प्रधान में यूप संस्कार से लेकर सोमाभिषव के अन्त तक के मंत्र (७) उपांशुग्रहादिसवनत्रय प्राप्त दक्षिणा दान तक के मंत्र (८) तृतीय सवन में प्राप्त सूर्यादि ग्रहों के मंत्र (९) वाजपेय और राजसूय यज्ञ के अंग के मंत्र (१०) अभिषेक के लिये जल ग्रहणादि राजसूय शेष चरक सौत्रामणी के मंत्र (११) अग्निचयन में उखा से लेकर समिदाध्यन्त मंत्र (१२) उखाधारणादि मंत्र (१३) चितिपुष्कर पर्णाद्युपधान मंत्र (१४) द्वितीय तृतीय चतुर्थ चिति मंत्र (१५) पंचम चितिमंत्र और चयन मंत्र (१६) रुद्रों का वर्णन और शतरुद्रियाख्य होम मंत्र (१७) चित्यपरिषेकादि जप पर्यन्त मंत्र (१८) वसोर्धारादि मंत्र (१९) सौत्रामणी सम्बन्धी सुरादीन्द्राभिषेकान्त और पितृयज्ञ मंत्र (२०) सेकांचासन्दीहौत्रान्त मंत्र (२१) याज्यादि प्रैषण मंत्र (२२) आश्वमेधिक मंत्र (२३) आश्वमेधिक आहुति के मंत्र (२४) आश्वमेधिक पशुओं के देवता सम्बन्ध विधायक मंत्र (२५) होम के मंत्र (२६) खिलसंज्ञक मंत्र (२७) पंचचितिक अग्नि के मंत्र (२८) सौत्रामण्यंगभूत मंत्र (२९) आश्वमेधिक अध्याय और शिष्टाश्वमेध मंत्र (३०) पुरुषमेध के मंत्र (३१) पुरुष महत्त्व दर्शक औ सृष्टि विषयक मंत्र (३२) सर्वमेध के मंत्र (३३) सर्वमेध में सप्तदश पुरोरुग्गण मंत्र (३४) ब्रह्मयज्ञार्थक एवं शिवसंकल्पादि मंत्र (३५) पितृमेध सम्बन्धी मंत्र (३६) अश्वमेध

शान्तिपाठार्थ मन्त्र (३७) महावीर सम्बन्धी मन्त्र (३८) महावीर के उपक्रम में दुग्धादि समर्पण मन्त्र (३९) प्रायश्चित्तात्मक मन्त्र (४०) ज्ञानकाण्ड के मन्त्र हैं ।

ऊपर लिखी विषय सूची में यजुर्वेद के चालीस अध्याय का वर्णनीय विषय है । स्वामी जी ने अपने भाष्य में वेद के इन दर्श-पूर्णमास-इष्टि-रुद्रवर्णन-शत-रुद्रि--सौत्रामणी-वाजपेय-राजसूय-पुरुषमेध-सर्वमेध-अश्वमेध प्रभृति समस्त यज्ञों को यजुर्वेद से निकाल डाला । ऐसे विलक्षण अर्थ किये कि जैसे हाथी का अर्थ चूहा और शेर का अर्थ मच्छर । स्वा० दयानन्द के फर्जी अर्थ वाले गपोड़े वेद भाष्य को देख कर कोई भी विद्वान् आँसू बहाये बिना नहीं रहता । कहो आर्यसमाजियो ! स्वामी ने चालबाजी से तुमको कैसा बेवकूफ बनाया ? दिलीप, दशरथ, युधिष्ठिर, राम आदि राजाओं ने जो अश्वमेध और राजसूय यज्ञ की हैं वे कौन ग्रन्थ से कीं बाइबिल से या कुरान से ? दयानन्द जी का भाष्य तो यह कह रहा है कि वेद में इन यज्ञों का नाम भी नहीं ? फिर यज्ञें किन ग्रंथों से की गई ? तुमको बतलाना पड़ेगा ? शतपथ और कातीय-श्रौतसूत्र एवं निरुक्त जो वेदों में यज्ञ बतला रहे हैं क्या ये झूठे हैं और स्वा० दयानन्द जी सच्चे ?

स्वामी जी के भाष्य में तो बिजली से मशीनें तैयार करनी, तार और रेल, फौज तथा सेनापति, अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक-उपदेशिका, स्त्रियों की फौज, उल्लुओं का पालना ये विषय हैं, इस भाष्य को देख कर वेदतीर्थ पं० नरदेव जी शास्त्री आर्य इतिहास में लिखते हैं कि जो दयानन्द के भाष्य को देख लेगा उस मनुष्य को वेदों से घृणा हो जावेगी ।

इन अनेक चालाकियों से स्वामी जी ने वेदों का सफाया किया है अब आप ही बतलावें कि वेद के शत्रु वेन, कालयवन, औरंगजेब हैं या स्वामी दयानन्द ? दयानन्द जी वेद के जितने प्रबल शत्रु हैं उतना बड़ा सृष्टि के आरम्भ से आजतक कोई नहीं हुआ, कैसी युक्ति से वेद का सफाया किया है कि तुम वेद २ चिल्लाते ही रहो और वेद के दुश्मन बन ही जाओ । क्या कोई आर्यसमाजी दयानन्द की इन चालबाजियों को नेकनीति सिद्ध कर सकता है ? आर्यसमाज ने लाखों रुपये गुरुकुल में बहा के यदि कोई पंडित तैयार किया हो तो लेखनी उठावे ? आशा नहीं कि कोई लेखनी उठावेगा ।

धोखा

स्वामी जी धोखा देने में बड़े निपुण हैं, इनके लेखों में यदि कुछ निपुणता पाई जाती है तो वह धोखेबाजी की निपुणता है, धोखा देने में स्वामी जी इतने निपुण हैं कि आनन::फानन में रात का दिन और दिन की रात बनाते हैं। इनका कोई प्रधान सिद्धान्त है तो धोखा देना है। स्वामी जी चार प्रकार से धोखा देते हैं (१) अन्यथासिद्ध (२) वेदानुकूलता (३) वेद निर्माण (४) आग्रह

(१) जब स्वामी जी को कुछ नहीं सूझता तब ये पहिले एक लेख लिख देते हैं कि "हमारा धर्म वेद है, वेद ने जिस कार्य के करने को कहा है उसको हम करते हैं और वेद ने जिसके छोड़ने को कहा है उसको हम छोड़ देते हैं" वेद का लोभ देकर स्वामी जी ऐसे कृत्य बतलाते हैं कि जिनका वेद से कोई सम्बन्ध ही नहीं-इसी का नाम "अन्यथा सिद्ध" है। (२) जब इससे भी कार्य नहीं चलता तब स्वामी जी वेदानुकूलता का झगड़ा लगा बैठते हैं, जिस प्रमाण को लेना हो उसको वेदानुकूल कह कर ग्रहण कर लेते हैं और जिस प्रमाण से आर्यसमाज मत की कुछ हानि हो उसको वेद विरुद्ध कह कर छोड़ देते हैं-यह इनकी "वेदानुकूलता" है। (३) दयानन्द जी अपना मत चलाने के लिये कुछ नवीन मन्त्र बना उनको इस प्रकार से लिखते हैं कि जिस लेख में पढ़नेवाले को यह ज्ञान हो कि ये मन्त्र वेद के हैं-इसका नाम 'वेदनिर्माण' है। (४) जब स्वामी जी हार जाते हैं तब हार को स्वीकार नहीं करते, यह कहने लगते हैं कि तुम्हारा कथन असम्भव है, जैसा तुम कहते हो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

अन्यथासिद्ध–ताजा वेद

सत्यार्थप्रकाश पृ० ७२ पं० १४ से स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि (प्रश्न) क्या तुम्हारा मत है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा, है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष

कर आर्यों को ऐकमत्य होकर करना चाहिये'।

पाठकवृन्द! स्वामी जी का लेख आपने देख लिया, इस लेख से सिद्ध है कि स्वामी जी जो कृत्य बतलावेंगे वे वैदिक होंगे किन्तु नीचे लिखे विषयों का जो स्वामी जी ने उपदेश किया है यह सर्वथा वेद विरोधी है, आप क्रम से देख कर विचार करें।

नं० (३८) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६५ पं० ६ में लिखा है कि 'बच्चे को छः दिन तक माता और इसके बाद धायी दूध पिलावे'।

यह रिवाज योरुप के धनिक लोगों में प्रचलित है, वेद में इसका कहीं पता नहीं। यहां पर वेद का बहाना लेकर वैदिक लोगों को ईसाई बनाने का उद्योग किया है यदि ऐसी वेद विरुद्ध अनर्गल चालबाजियां स्वामी जी न करें तो फिर ये आर्यसमाजी ईसाई कैसे बनें? इस प्रश्न पर नीमच, सोनकच्छ, गीदड़बाहा, बुढ़ानपुर प्रभृति सैकड़ों स्थानों में आर्यसमाजियों ने मुंह की खाई है। कहीं पर भी धायी के दूध पिलाने को वैदिक सिद्ध नहीं करसके तो भी स्वा० दयानन्द जी का लेख असत्य सिद्ध न हो जावे, कोई यह न जाने जावे कि वेद का बहाना लेकर स्वामी जी वैदिक लोगों को ईसाई बना रहे हैं। इस भय से धायी के दूध पिलाने को आज भी आर्यसमाजी वैदिक मानते हैं, ऐसे झूठे आर्यसमाजी नहीं मालूम किस तरीके से दूसरे मजहब वालों के सामने मुंह दिखलाने को तैयार हो जाते हैं। एक बार बोलिये आर्यसमाज की बेहयायी की जय।

स्वामी जी महाराज हिन्दुओं के जाति बन्धन को तोड़ ईसाई बनाने के लिये एक नई बात लिखते हैं पढ़िये—

नं० (३९) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ८९ पं० ११ में लिखा है कि (प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये? (उत्तर) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से मिलेंगे।

इस लेख से स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि यदि भंगी का लड़का

वेद का विद्वान् होकर उत्तम कर्म करे तो वह किसी ब्राह्मण को और ब्राह्मण का लड़का न पढ़ सके एवं श्रेष्ठ कर्म भी न करे तो वह राज सभा के द्वारा भंगी को दे दिया जावे। इससे लाभ यह होगा कि हिन्दुओं में जो जाति बन्धन है उसका नाश होजावेगा और हिन्दुओं में ईसाइयत सभ्यता का प्रचार होगा।

स्वामी जी इसको वेदाज्ञा बतलाते हैं, यद्यपि फरह, इटौली, जुआरदार, कांगड़ा आदि स्थानों में इस विषय पर शास्त्रार्थ करके आर्यसमाजी हार चुके हैं और यह समझ गये हैं कि यह लड़कों का तबादला वेद के किसी मन्त्र में नहीं है, यह तो स्वा० दयानन्द जी को पी हुई भंग की तरंग की सूझ है तो भी आर्य-समाजी लोग इसको अभी तक जबर्दस्ती से वेदाज्ञा ही सिद्ध करने को तैयार बैठे हैं। एक दिन पं० बसन्तलाल जी ने कहा यह तो हम भी जानते हैं कि यह बात वेद के किसी मंत्र में नहीं है तो भी स्वामी जी का पक्ष लेना ही पड़ता है, यदि हम ऐसा न करें तो फिर स्वा० दयानन्द जी का लिखना गपोड़ा और 'सत्यार्थप्रकाश' 'मिथ्यार्थप्रकाश' तथा हमारे सिद्धान्त वेद विरोधी सिद्ध हो जाते हैं उनकी रक्षा के लिये कुछ कहना ही पड़ता है।

इस बात को सभी आर्यसमाजी जानते हैं कि लड़कों का यह तबादला बिल्कुल वेद विरुद्ध है और वेद विरुद्ध होने के कारण आज तक किसी भी आर्य-समाजी ने कभी भी अपने किसी लड़के का तबादला नहीं किया तो भी नीमच के शास्त्रार्थ में बुद्धदेव धर्म-कर्म, दीन-ईमान को तिलांजलि दे इसको वेदाज्ञा सिद्ध करने के लिये तैयार हो गये।

पं० बुद्धदेव ने कहा कि 'अहं राष्ट्री संगमनी अथर्व ४। ६। ३०' के मंत्र में राजसभा खुद कहती है कि मैं जिसको चाहती हूँ उसको वैसा बना देती हूँ।

यहां पर बुद्धदेव ने शास्त्रार्थकर्ता और शास्त्रार्थ श्रोताओं को धोखा दिया है। आर्यसमाज वेद शास्त्र को लेकर कभी विजय नहीं कर सकती केवल चालाकी और धोखादेही से काम लेती है इसी नियम से बुद्धदेव ने भी यहां पर धोखा-देही से ही काम लिया है। अब हम उन समस्त मंत्रों को पाठकों के आगे रखते हैं जो वागाम्भृणी सूक्त के मंत्र ऋग्वेद और अथर्ववेद में हैं।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहं-
मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं-
त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते-
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां-
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा-
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि-
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि-
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥४॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति-
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति-
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ५ ॥
अहं रुद्राय धनुरातनोमि-
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ ।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

इन मंत्रों का वागाम्भृणी ऋषि और वागाम्भृणी शक्ति ही देवता है। जब इन मंत्रों का देवता वागाम्भृणी ईश्वर शक्ति 'दुर्गा' देवता है तब फिर इसमें

राज सभा का वर्णन कैसे कूद बैठेगा ? जो देवता होता है वही तो मंत्र का वर्णनीय विषय होता है ? इन छः मंत्रों का देवता 'दुर्गा' है अतएव मंत्रों में दुर्गा का ही वर्णन रहेगा। अर्थ यह है।

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूँ, मैं बारह आदित्यों के साथ विचरती हूँ और विश्वे देवताओं के साथ भी विचरती हूँ, मैं मित्र देवता और वरुण देवता को धारण करती हूँ,मैं इन्द्र और अग्नि देवता को मैं ही दोनों अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ।१। मैं सब तरफ से मारने वाले सोम देवता का पोषण करती हूँ मैं ही त्वष्टा और पूषा एवं भग देवता को धारण करती हूँ, धन को हविषवाले सुन्दर प्राप्त करते हुये यजमान को सोम निकालते हुये को।२। मैं ईश्वरी मिलने वाली ज्ञान वाली पहिली अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली अनेक तरह से सब ओर से प्रवेश कराती हुई हूँ तिस मुझको देवलोग अनेक जगह विधान करते हैं।३। मैं ही आप यह कहती हूँ सेवित है देवताओं से और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बढ़िया बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ।४। मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है, जो देखता है, जो स्वास लेता है और सुनता है कहे हुये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते हैं या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं। सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले वंचन को तुझसे कहती हूँ।५। मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण के बैरी के लिये,हिंसक के मारने के लिये और मैं ही जन के लिये मदयुक्त करती हूँ मैं ही आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूँ।६।

पं० बुद्धदेव ने वेद मन्त्रों के असली अभिप्राय को दबाकर जनता को धोखा देना चाहा किन्तु जब यह सवाल किया गया कि इस मन्त्र का देवता कौन है ? तब बुद्धदेव गिर गये और शास्त्रार्थ में उनका पराजय हो गया। भाव यह है कि वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जिसमें लड़के बदलने की आज्ञा हो तो भी स्वामी जी की इज्जत बचाने के लिये आर्यसमाजी संसार को धोखा दे झूठ बात को सत्य सिद्ध करने को तैयार हो जाते हैं किन्तु आज तक एक भी आर्यसमाजी ऐसा पैदा नहीं हुआ और न आगे को हो सकता है जो लड़कों का बदलना वेदाज्ञा सिद्ध कर दे। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि

स्वा० दयानन्द जी वेद का धोखा देकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने का काम कर रहे हैं।

नं० (४०) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६० पं० ३ में लिखा है कि "जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्यापूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको फोटोग्राफ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं को अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें, जिस जिस का रूप मिल जाय उस उसके इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें जब दोनों के गुण,कर्म,स्वभाव सदृश हों तब जिस जिसके साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथ में देवें"।

यह प्रणाली ईसाई जाति की है किन्तु स्वामी जी इसको हिन्दुओं में चलाना चाहते हैं इस कारण से इसको वेद की आज्ञा मानते हैं चारों वेदों में से एक भी मन्त्र ऐसा नहीं कि जिसमें फोटू और जीवन चरित्र से विवाह होना लिखा हो। वेद में न होने पर भी आर्यसमाजी संसार को धोखा देने के लिये यही कहते रहते हैं कि यह सब वेद में है, इस प्रकार जबर्दस्ती से किसी मिथ्या कल्पना को वेद के मत्थे मढ़ना पाप है किन्तु पाप, पुण्य वह समझा करता है जो किसी धर्म को मानता हो ? जब आर्यसमाजियों का कोई धर्म ही नहीं फिर धोखा क्यों न दें ? संसार को धोखा देकर नास्तिक बनाने वाले आर्यसमाजियों के इस कर्तव्य को वेदज्ञ समुदाय अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है।

नं० (४१) सत्यार्थप्रकाश समु० १० पृ० २६३ पं० ६ में लिखा है कि "इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढ़ी मूछ और शिर के बाल सदा मुंड़वाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना शीतप्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है"।

यवन साम्राज्य में सहस्रों हिन्दुओं ने जान दे दी किन्तु चुटिया न दी,

इतिहास इसका साक्षी है। कवियों ने तो यहाँ तक लिख डाला कि "हिन्दुओं की रोटी बेटी चोटी को बचाय लीन्हों शिवा जी न होते तो सुन्नत होत सबकी" किन्तु स्वामी जी हिन्दुओं को ईसाई बनाने के प्रयोजन से गर्म देश में शिखा का कटवाना भी लिखते हैं और फिर उसको वैदिक धर्म बतलाते हैं यह स्वामी जी की चोरी और सीनाजोरी है। दयानन्द जी के लेख की पोल न खुल जावे इस कारण आर्यसमाजी धर्म को तिलांजलि देकर शिखा कटवाने को वेदाज्ञा मानते हैं किन्तु जब शास्त्रार्थ में शिखा कटवाने का वेद मन्त्र मांगा जाता है तब आर्यसमाजियों की नानी मर जाती है। हमको नहीं मालूम स्वा० दयानन्द जी के मिथ्या गपोड़ों को वैदिक सिद्ध करने के लिये आर्यसमाज क्यों वेदयायी का जामा पहिनती है।

नं० (४२) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ७७ पं० १० में लिखा है कि 'सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्षतक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है"।

ईसाई लोगों के यहां विवाह बड़ी उम्र में होता है इस कारण से स्वा० दयानन्द जी को भी वेद में विवाह मिला—क्या मजा है, ईसाईयों का समस्त व्यवहार वेद के मन्त्रों में लिखा है। स्वा० दयानन्द जी की इन वेदाज्ञाओं को पढ़ कर प्रत्येक मनुष्य यह समझ जाता है कि स्वामी जी वेद के बहाने से वैदिकों को ईसाई बनाते हैं किन्तु आर्यसमाजी इतने मिथ्यावादी और दुराग्रही हैं कि ये अब भी इस बड़ी उम्र के विवाह को वेदाज्ञा ही कहते जाते हैं। वास्तव में जो मनुष्य धर्म को एक दम तिलांजलि दे देता है फिर वह कुकर्म, अकर्म सभी कर सकता है। आर्यसमाजियों का संसार में कोई धर्म नहीं रहा इस कारण ये लोग मिथ्या बोलने, चालाकी करने, संसार को धोखे में फांसने को ही अपना कर्तव्य समझ बैठे किन्तु आर्यसमाज ने कोई ऐसा मनुष्य आज तक पैदा नहीं किया जो स्वा० दयानन्द के इन गपोड़ों को वैदिक सिद्ध कर देता तो भी इनकी दृष्टि में स्वा० दयानन्द जी का सब लेख वेद मन्त्रों का अनुवाद है इस हठ का किसी के भी पास जवाब नहीं।

नं० (४३) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६७ पं० ७ में लिखा है कि 'पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है 'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा-श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्राद्ध और जो श्रद्धा से कर्म किया

जाय उसका नाम श्राद्ध है और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्' जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यामान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायं उसका नाम तर्पण है परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं'।

ईसाइयों के यहां मृतक पितरों का श्राद्ध नहीं होता इस कारण स्वामी दयानन्द जी वेद के पांच सौ मंत्रों में कहे हुये मृतक पितृ श्राद्ध का निषेध लिख जीवित माता पिता की सेवा करने को श्राद्ध बतलाते हैं। यदि वेद टटोला जावे तो उस में कहीं पर भी जीवित माता पिता का श्राद्ध करना नहीं लिखा तो भी आर्यसमाजी जीवित माता पिता के श्राद्ध को वैदिक मानते हैं, सच पूछिये तो आर्यसमाजी कहने और लिखने पढ़ने में स्वा० दयानन्द जी के जितने अन्ध भक्त हैं इतना अंध भक्त संसार के किसी मजहब में कोई मनुष्य पाया नहीं जाता । यदि स्वामी जी यह लिख देते कि खड़े होकर लघुशंका करना वेद की आज्ञा है,तो इस लेख को देख कर आर्यसमाजी वेद को न टटोल उस को वेदाज्ञा मान ही लेते ? यह बात दूसरी है कि आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य झूठ के जोर पर संसार को धोखे में डालता है किंतु जिस समय आर्यसमाजियों के आगे यह प्रश्न रख दिया जाता है कि जीवित माता पिता के श्राद्ध की आज्ञा देने वाला वेद मंत्र बतलाओ, ? इस को सुनते ही आर्यसमाजी घुड़दौड़ का अवलम्बन लेते हैं। सच बात तो यह है कि दयानन्द के बनाये हुये मिथ्या जाल को कोई कैसे बचावेगा ? इसका तो भंडाफोड़ होना ही है।

नं० (४५) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ०८० पं० ४ में लिखा है कि "लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है"।

ईसाई संसार में वर कन्या अपने आप विवाह करते हैं अर्थात् योरुप आदि देशों में विवाह वर कन्या के आधीन है इसी कारण से स्वा० दयानन्द जी को वेद में मिल गया कि वर कन्या के आधीन विवाह उत्तम है। समस्त आर्यसमाजी इस बात को जानते हैं कि स्वामी जी हिन्दू व्यवहारों को हटा कर हिन्दुओं में ईसाई व्यवहार लाना चाहते हैं तो भी लज्जा जाने के भय से वर कन्या के स्वाधीन विवाह को वैदिक मानते हैं। खुशी की बात है कि नीमच के शास्त्रार्थ होने के समय से बुद्धदेव और रामचन्द्र सुनार देहलवी यह

साफ कहने और लिखने लग गये कि हम सत्यार्थप्रकाश को बिल्कुल ही नहीं मानते। है यह उनकी चालबाजी, नित्य तो, सत्यार्थप्रकाश और स्वा० दयानन्द जी की प्रशंसा के पुल बांधते हैं किन्तु जब शास्त्रार्थ का समय आता है तब कहते हैं कि न तो हम स्वामी जी को मानें और न ही 'सत्यार्थप्रकाश' को मानें-इस चाल-बाजी का भी कहीं ठिकाना है कि जो घंटा घंटा पर गिरगिट कैसा रंग बदल देते हैं। इन दोनों को अनुभव हो गया कि स्वा० दयानन्द जी के गपोड़ों का जवाब देने वाला मनुष्य न कोई पैदा हुआ और न आगे को हो सकता है इसको लक्ष्य रखकर दोनों उपदेशक दयानन्द के लेखको अप्रामाणिक और अनर्गल समझ उसके मानने से इन्कार करते हैं।

चालीस वर्ष से यह झगड़ा चल रहा था, आर्यसमाज कहती थी कि स्वा० दयानन्द जी वेदज्ञाता, परिव्राजक, महर्षि और आप्त हैं अतएव उनका समस्त लेख वेदानुकूल और प्रामाणिक है। सनातन धर्म कहता था कि स्वा० दयानन्द जी न वेदज्ञाता थे और न ही आप्त तथा महर्षि थे, उन्होंने जितने भी लेख लिखे हैं वे सब अज्ञान से भरे हुये, सर्वथा वेद विरुद्ध, प्रमत्त, उन्मत्त मनुष्यों के लेख की भांति हैं अतएव वे अमान्य हैं। बड़ी खुशी की बात है कि यह झगड़ा चालीस वर्ष चल कर ३० जून सन् २१ को समाप्त हो गया। ३० जून सन् २१ से पं० बुद्धदेव तथा महाशय रामचन्द्र जी दयानन्द के लेख मानने से इन्कार कर गये तो भी कोयरी चौधरी 'नीचे पड़े की ऊंची टांग' रखना चाहते हैं, वे आज भी तैयार हैं कि हम वेद से दिखला देंगे कि विवाह कन्या वर के आधीन ही वेद ने कहा है। हमारी समझ में ये मूर्ख महाशय प्रलय के बाद इस बात को दिखलावेंगे, प्रलय तक तो दिखला ही नहीं सकते। कहो आर्यसमाजियो! स्वा० दयानन्द जी ने जो तुमको कर्तव्य बतलाये वे वैदिक हैं या अवैदिक?

नं० (४५) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६३ पं० २५ में लिखा है कि 'दिन रात में जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक दूसरे से करें।

ईसाई जाति में एकसा व्यवहार है छोटा बड़े को और बड़ा छोटे को दिन में गुड-मौर्निंग और रात को गुडनाइट करता है। स्वा० दयानन्द जी की दृष्टि इस पर पहुँची कि हिन्दुओं के यहां तो ऐसा नहीं, उनके यहां तो मनु ने गजब कर डाला, लिख दिया कि छोटा बड़े को अभिवादन और बड़ा छोटे को प्रत्यभिवादन करे अर्थात्

छोटा प्रणाम करे और बड़ा आशीर्वाद दे। मनु ने इसको साधारण प्रणाली से नहीं लिखा वरन् सात श्लोकों में समाप्त किया ऐसा करने से हिन्दू-ईसाइयों का ऐक्य न हो सकेगा, इस ऐक्यता के लिये स्वा० जी ने परस्पर में नमस्ते करना लिखा। क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा पैदा हुआ है जो वेद से परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध कर दे? आज तक न कोई हुआ है और न हो सकता है फिर दयानन्द के झूठे गपोड़े को कोई कहां तक वैदिक बनावे?

जब नमस्ते पर शास्त्रार्थ आरम्भ होता है तब आर्यसमाजी 'नमस्ते रुद्र मन्यव' इत्यादि उन मंत्रों को प्रमाण में रखते हैं जिनमें 'नमस्ते' पद आया है। जब सनातनधर्मी इसके उत्तर में यह सिद्ध कर देते हैं कि नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिये है और ईश्वर भी नमस्ते के उत्तर में नमस्ते नहीं करता, ईश्वर को छोड़ परस्पर में नमस्ते करना किसी वेद मंत्र में नहीं लिखा इतना सुनते ही आर्यसमाजियों के चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है लाचार होकर एक दौड़ 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च १६। ३२' पर लगाते हैं, और सिद्ध करते हैं कि इस मंत्र में परस्पर में नमस्ते करना लिखा है। प्रथम तो इस मंत्र में समष्टि व्यष्टि-रूप परमात्मा को नमस्कार किया है और दुर्जन तोष न्याय से थोड़ी देर के लिये स्वा० दयानन्द का ही अर्थ मान लें तो भी परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध नहीं होता क्योंकि स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ यह किया है कि बड़ों को अन्न दो और उनका सत्कार करो और छोटों को अन्न दो और उनका सत्कार करो फिर नमस्ते करना कहां से आगया? दूसरे इस मंत्र में तो केवल 'नमः' है नमस्ते तो नहीं। 'नमः' पद को लेकर नमस्ते का धोखा देना यह आर्यसमाजियों का धर्म विवेचन है। तीसरे जहां कहीं नमस्ते किया है करने वाले को ईश्वर समझ किया गया है जिसको नमस्ते किया गया है उसने लौटकर नमस्ते नहीं कहा फिर परस्पर में नमस्ते करना क्या वेदों का गला घोटना नहीं है? शास्त्रार्थ में इस विवेचना को सुन आर्यसमाजियों का मुंह खेल करने वाली बन्दरिया के समान हो जाता है इतने पर भी आर्यसमाजी लोग यही कहते रहते हैं कि नमस्ते करना वेद में लिखा है, इस झूठे धोखा देने का अभिप्राय इतना ही है कि किसी प्रकार हिन्दुओं में प्रचलित छुटाई बड़ाई की प्रणाली का नाश होकर ईसाई पद्धति का प्रचार हो।

नं० (४६) सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २२५ पं० २१ में लिखा है कि 'मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई'।

ठीक है, नहीं मालूम वेद हिन्दुओं का धर्म पुस्तक है या ईसाइयों का ? हम तो यही सुनते थे कि वेद हिन्दुओं का धर्म पुस्तक है किन्तु आज स्वा० दयानन्दजी के लेख से यह जाना गया कि वेद में हिन्दुओं का एक भी सिद्धान्त नहीं लिखा वरन् ईसाइयों के समस्त सिद्धान्तों को वेद ने अच्छी तरह वर्णन किया है। ईसाई कहते हैं कि प्रथम सृष्टि तिब्बत में उत्पन्न हुई, स्वा० दयानन्द जी इसको वेद से सिद्ध करते हैं इस प्रकार का चक्कर देकर स्वा० दयानन्द जी वैदिक धर्मियों को ईसाई बनाना चाहते हैं।

क्या इस बात को आर्यसमाजी नहीं जानते ? आर्यसमाजी खूब जानते हैं कि 'त्रिविष्टप' नाम तिब्बत का नहीं वरन् स्वर्ग का है इतना जानकर भी 'त्रिविष्टप' का अर्थ तिब्बत मान लेते हैं इसका कारण यह है कि ऐसा जो न मानोगे तो फिर हिन्दू लोग वेद को तिलांजलि देकर ईसाई न बन सकेंगे। हिन्दू ईसाई बन जायं इस लोभ से स्वा० दयानन्द जी की अनर्गल बातों को आर्यसमाजी वैदिक धर्म मानते हैं।

यदि ऐसा नहीं तो वह कौन आर्यसमाजी है जिसने अपनी जननी का दूध पिया हो और वह यह सिद्ध करके दिखलावे कि 'त्रिविष्टप' का अर्थ तिब्बत अमुककोश-पुराण-धर्मशास्त्र-वेद-ब्राह्मण में लिखा है ? इसके लिये तो सभी आर्यसमाजियों के मुंह बन्द हो जाते हैं, जबान नहीं खुलती, लेखनी नहीं उठती तो भी त्रिविष्टप को तिब्बत बतला संसार की आंख से धूल झोकना आर्यसमाजियों का परमधर्म है।

अमरकोश में।

स्वर्लोको द्यौदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम्।

त्रिविष्टप नाम स्वर्ग का है। इसी प्रकार वाचस्पत्याभिधान-शब्द कल्पद्रुम प्रभृति जितने कोशों में त्रिविष्टप शब्द आया है उन सबने इसका अर्थ स्वर्ग किया है किन्तु स्वा० दयानन्द जी ने गाड़ी का अर्थ गन्ना जितना असंभव है उतना ही असंभव त्रिविष्टप का अर्थ तिब्बत इस लिये किया कि ईसाइयों का बतलाया प्रथम सृष्ट्युत्पत्ति का देश तिब्बत सिद्ध हो जावे। आर्यसमाजियो ! तुम स्वा० दयानन्द के गपोड़ों को वैदिक सिद्ध तो करते हो किन्तु किसी दिन शिर पकड़ कर रोओगे अतएव अब भी संभल जाओ ? आप समझाने पर भी नहीं समझें तो फिर हमारा क्या दोष ?

नं० (४७) सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २३१ पं० ४ में लिखा है कि पृथ्वी घूमती है।

अब तो स्वामी जी वेदों के पीछे पड़ गये । जब तक ईसाइयों के समस्त सिद्धान्त वैदिक न बना देंगे तब तक दम न लेंगे ? कहो आर्यसमाजियो ! कैसी रही, वेद धर्म पुस्तक तुम्हारा और उसमें सिद्धान्त ईसाइयों के ? अब बतलाओ कि तुम वैदिक हो या ईसाई ? अथवा ईसाई धर्म ही वैदिक धर्म है, इसमें तुम्हारी क्या राय है ? क्या कोई आर्यसमाजी पृथ्वी का घूमना वेद से सिद्ध कर सकता है ? इस विषय पर जब शास्त्रार्थ आजावे तब तो आर्यसमाजियों का मुंह काला हो जाता है और ऐसे कोई पूछे तो फौरन कह देते हैं कि हां वेद में पृथ्वी का घूमना लिखा है।

स्वामी जी एक वेद मंत्र का गला घोट, देवता मिटा, मंत्र के दो टुकड़े कर लिखते हैं कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ।

यजु० ३ । ६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इस लिये भूमि घूमा करती है ।

स्वामी जी वेद का कचूमर निकाल कर ईसाई सिद्धान्तों को वैदिक सिद्धांत बनाते हैं।

(१) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रु ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है। वेदों का यह नियम है कि जो जिस मन्त्र का देवता होता है उस मन्त्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इसका अग्नि देवता है तो पृथ्वी परक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मन्त्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृत ज्ञाता ही समझेंगे, संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य-मान लेंगे। सच है, पक्षपात बड़े २ अनर्थ करवा देता है, शोक इस बात का है कि ईसाइयों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोटते हैं।

(२) इस मन्त्र के अर्थ में "मातरम्-पितरम्-पुनः" आदि कई एक शब्द

बिल्कुल ही छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया। जिस अर्थ में मन्त्र के शब्द ही छूट जांय क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है? हमको नहीं मालूम ऐसे अर्थ को कोई कैसे सच मान लेगा।

(२) यदि हम इस मन्त्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रक्खें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मंत्र का यही अर्थ है जो इसके भाषा-टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मन्त्र में पृथ्वी का वर्णन है या अग्नि का। हमको तो इतना विचार करना है कि मन्त्र के नीचे टीका-रूप जो भाषा लिखी है वह इस मन्त्र का अर्थ है या नहीं। इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेदमन्त्र का अर्थ ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने पूछा 'लोटे' का क्या अर्थ, जिससे पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने 'जूता' है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करने वाले को भी हिन्दू वेद भाष्यकार मान लेते हैं।

वेद मन्त्र का ठीक अर्थ देखिये (आयम्) इस (गौः) यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले (पृश्नि) श्वेतरक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने (आ) सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्व दिशा में (मातरम्) पृथ्वी को (असदत्) प्राप्त किया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्ग में चलते अग्नि ने (पितरम्) स्वर्गलोक को (असदत्) प्राप्त किया। सिद्ध हो गया कि इस मन्त्र में भूभ्रमण † नहीं है किन्तु मन्त्र का धोखा देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

निघंटु ने पृथ्वी को 'निर्ऋति' लिखा है। निर्ऋति का अर्थ है गमन-रहित (चालशून्य) यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको निर्ऋति कैसे लिखता।

इन बातों को लिखे पढ़े ही मनुष्य जानते हैं। आर्यसमाज में कोई भी मनुष्य वेद नहीं पढ़ा अतएव इनकी दृष्टि में तो स्वामी जी जिसको वैदिक धर्म लिखदेंगे उसी को वैदिक धर्म मानना होगा। यदि आगे को भी आर्यसमाजी इसी प्रकार वेद-ज्ञान से वंचित रहे तो फिर वर्तमान समय की भांति हठ–झूठ–धोखा देना यही

† पुराणवर्म का भूभ्रमण विचार देखो।

इनका वेद होगा और इनको स्वा० दयानन्द के पंजे में पड़ ईसाई होजाना होगा। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि प्रभो ! आप आर्यसमाजियों को विद्वान् बनाकर दयानन्द के पंजे से बचावे।

निष्कर्ष

पहिले स्वा० दयानन्द जी ने संसार को यह लोभ दिया कि हमारा मत वेद है। जब वेदविज्ञानशून्य कुछ मूर्ख हिन्दु दयानन्द के इस जाल में फंस आर्यसमाजी बन गये तब स्वामी जो ने वेद विज्ञान में ईसाई धर्म के सिद्धान्त आर्यसमाजियों के आगे रख दिये और यह समझा दिया कि ये सिद्धान्त वेद के हैं इनको करो और मानो। आर्यसमाजी वेद को जानते नहीं थे इस कारण दयानन्द के लेख को सत्यमान वे समझ बैठे कि (१) बच्चे को धायी से दूध पिलाना (२) ब्राह्मण-भंगी का परस्पर में पुत्र बदलना (३) फोटू और जीवन चरित्र के ऊपर से लड़का लड़कियों का विवाह करना (४) गर्म देश में चुटिया कटवाना (५) सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या का और पच्चीस वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह काल बतलाना (६) जीवित पितरों का श्राद्ध करना (७) विवाह लड़का लड़की के आधीन रखना (८) परस्पर में नमस्ते करना (९) मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में होना और (१०) पृथ्वी का घूमना मानना ये दश सिद्धान्त वैदिक वेद प्रतिपाद्य हैं और इनके करने एवं मानने से हम वैदिकधर्मी कहलावेंगे इस प्रेम तथा धोखे में आकर आर्यसमाजियों ने स्वामी जी के लिखे इन सिद्धांतों पर विश्वास किया किंतु मामला झूठा था अधिक दिन तक छिपा न रहा सनातनधर्मी स्वा० दयानन्द के इन लेखों को लेकर शास्त्रार्थ करने लगे, प्रत्येक शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की हार होने लगी। यद्यपि आर्यसमाज में प्रेंसिपल-प्रोफेसर-पंडित-उपदेशक प्रभृति अनेक अच्छे २ अंग्रेजी के विद्वान् पुरुष मौजूद हैं, इतना ही नहीं भारत वर्ष के प्रत्येक विभाग में आर्यसमाज नामक संस्थायें और प्रतिनिधि सभायें भी विद्यमान हैं एवं आर्यसमाज के समाचार पत्र सम्पादक-लेखक सब मौजूद हैं, यह मामला सब के आगे रक्खा गया किंतु सभी ने टुकासा जवाव देते हुये कह दिया कि दयानन्द के इन गपोड़ों को हम वैदिक सिद्ध नहीं कर सकते।

इस कथन से आर्यसमाजियों को ज्ञान हुआ कि जिस प्रकार रोटी के टुकड़े का लोभ देकर कुत्ते को मारा जाता है इसी प्रकार स्वा० दयानन्द जी वेद मत का लोभ देकर हमको ईसाई बना रहे हैं इतना जानने पर भी आर्य-समाजियों ने आर्यसमाज से स्तीफे नहीं दिये इस के कारण दो हैं। प्रथम कारण तो यह है कि आर्यसमाज में प्रायः समस्त मनुष्य ऐसे हैं जो धर्म कर्म को निष्प्रयोजन झगड़ा समझते हैं। दूसरे जो धर्म कर्म को कुछ मानते हैं वे इस लिये घबड़ाये कि जो हम आर्यसमाज को छोड़ देंगे तो हमारी संसार के सामने बड़ी बेइज्जती होगी, संसार कहेगा कि जब तक तुमने आर्यसमाज के दोष गुण नहीं जाने थे तो तुम आर्यसमाज में गये क्यों? इस दूसरे गिरोह में कुछ मनुष्य ऐसे भी थे जो धर्म को मनुष्य कर्तव्य मानते थे, जब उन को पता लगा कि स्वामी दयानन्द जी ने एक झूठा जाल रचा है और बुद्धि की कमजोरी से हम उसमें आ फंसे हैं तो वे तत्काल दयानन्द के जाल से बाहर निकल गये और उन्होंने अनेक पुस्तकें लिख कर स्वामी जी के बनावटी जाल का भंडा-फोड़कर दिया। इस के राजा फतेसिंह पुवायां नरेश सभापति संयुक्तप्रांत आर्य-प्रतिनिधि सभा एवं मुंशी जगन्नाथप्रसाद मंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रांत चमकते हुये उदाहरण हैं, पढ़ने लिखने पर जब इनको स्वा० दयानन्द जी के गोरख धंधे का ज्ञान हुआ तब ये दोनों स्तीफे देकर आर्यसमाज से बाहर निकले एवं इन दोनों ने ही आठ आठ-दश-दश किताबें लिख कर अनेक मनुष्यों को दयानन्द के जाल में फंसने से बचाया।

कहो आर्यसमाजियो! ऊपर लिखे हुये स्वा० दयानन्द जी के दश सिद्धान्तों को तुम कभी वैदिक सिद्ध करोगे या सर्वदा झूठ बोल, चालबाजियां फैंक संसार को धोखा दे इन दश सिद्धान्तों को जबर्दस्ती वैदिक कहते रहोगे? आज तो क्या जब तक संसार में आर्यसमाज रहेगी तब तक इन सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध नहीं कर सकती, बस ये दश ही सिद्धान्त ऐसे हैं जो आर्यसमाज के आधे शरीर को निकम्मा करके आर्यसमाज के लिये लकवा बन गये हैं। संसार में कोई पंडित, कोई ज्ञानी, कोई वेदज्ञ ऐसा कभी भी नहीं हो सकता जो इन सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध करदे और आर्यसमाजी सत्य झूठ को जानते हुये भी कभी यह नहीं कहेंगे कि वास्तव में स्वामी जी के ऊपर लिखे दश सिद्धान्त अवै-दिक हैं, ये तो झूठ बोल-झूठ लिख दश सिद्धान्तों को वैदिक ही कहते रहेंगे

ऐसी दशा में ये दश सिद्धान्त लकवा बन कर आर्यसमाज के आधे शरीर को तब तक निकम्मा रक्खेंगे जब तक कि आर्यसमाज का शरीर संसार में रहेगा, ऐसे भयंकर रोग में फंसी हुई आर्यसमाज को बचाने के लिये आज एक भी आर्यसमाजी तैयार नहीं ? आर्यसमाजियों का तो स्वा० दयानन्द जी की प्रशंसा करना एवं धर्म को बिल्कुल छोड़ देना, झूठ बोलना, धोखा देना, जाल बनाना, प्रतिष्ठा पाना, आर्यसमाज के बहाने से कुछ रुपया कमा कर पेट भरना कर्तव्य हो गया है। आर्यसमाज से गन्दे सिद्धान्त निकाल कर इसको पवित्र बनाना यह काम इनका नहीं है। आर्यसमाजियो ! संभलो, आर्यसमाज को धार्मिक और पवित्र सोसाइटी बनाओ नहीं तो किसी दिन इस समाज का अवश्य ही जनाजा निकल जावेगा फिर तुमको केवल ईसाई सोसाइटी को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी स्थान न मिलेगा किंतु आर्यसमाजी भी ऐसे नहीं रहे जो हमारी प्रार्थना को सुन कर कुछ विचार करें' इन को तो आर्यसमाज का जनाजा निकल जाने पर ही हर्ष है। अच्छा

हुइ है वही जो राम रच राखा ।
को कर तर्क बढ़ावै साखा ॥

स्वा० दयानन्द जी ने अपने लिखे ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे गपोड़े हांके हैं कि जिनको हम चण्डूखाने की गप्पों की डिगरी दे सकते हैं किंतु स्वामी जी इन गप्पों को गप्प या मिथ्या लेख नहीं मानते वरन् वैदिक आज्ञायें मानते हैं। फिर याद करिये स्वामी जी के उस लेख को जिसको हम पाठकों के लिये दुबारा लिखते हैं वह यह है कि—

सत्यार्थप्रकाश पृ० ७२ पं० १४ से स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि (प्रश्न) क्या तुम्हारा मत है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है उस उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष कर आर्यों को ऐकमत्य होकर करना चाहिये, ।

स्वामी जी ने स्पष्ट कर दिया कि हमारा मत वेद है और वेद में जो करना लिखा है उस को हम करते हैं, इतना लिख कर स्वामी जी आर्यसमाजियों को कर्तव्य बतलाने लगे। स्वामी जी के बतलाये हुये कर्तव्यों में से एक भी वैदिक नहीं है, सब वेद विरुद्ध मन माने अनर्गल लेख हैं, पाठक उन के अवलोकन

का कष्ट उठावें ।

नं० (४८) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६१ पं० ६ में लिखा है कि भोग के अन्त में सोंठ केशर असगंध छोटी इलायची और सालम मिश्री दूध में डालके और गर्म जल से स्नान करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठंडा दूध है उस को यथारुचि दोनों पीकर अलग अलग अपनी अपनी शय्या में शयन करें ।

स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि वेदों में जिन कामों का करना लिखा है उनको हम करते हैं । अब पूछना यह है कि यह नुसखा कौन वेद में लिखा है ? कई एक आर्यसमाजी यह कह दिया करते हैं कि यह वैद्यक का नुसखा है, स्वामी जी अपने मत को वेद मत मानते हैं वैद्यक मत नहीं मानते । वैद्यक में रहे तुम से क्या प्रयोजन ? आर्यसमाज वैद्यक को स्वतः प्रमाण नहीं मानता, वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानता है ? वेद में इस नुसखे का कहीं जिक्र नहीं इस कारण वैद्यक में कहीं हो भी तो वेदानुकूलता का अभाव होजायगा, फिर आर्यसमाज वेदानुकूलता के अभाव में वैद्यक को प्रमाण कैसे मानेगा ? हमने कई एक वे आर्ष वैद्यक ग्रंथ देखे कि जिनको वेदानुकूल होने पर आर्यसमाज प्रमाण मानता है किंतु उन आर्ष ग्रन्थों में यह नुसखा नहीं फिर यह नुसखा वैदिक कैसे हुआ ? क्या यह नुसखा स्वा० दयानन्द जी का स्वकीय अनुभूत तो नहीं है ? जो लोग इस को वैदिक मानते हैं वे इसका वेद मंत्र दिखलावें नहीं तो साफ २ लिखदें कि नित्य भंग पीने वाले दयानन्द जी ने भंग की तरंग में लिखा है ।

नं० (४९) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पं० २१ में लिखा है कि जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं । पुरुष अपने शरीर को ढ़ीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति समय अपानवायु को ऊपर खींचे । योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे । पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें ।

कहिये, स्वामी जी वेदों से कैसी २ मजे की बातें निकाल रहे हैं, वेद से क्या निकाल रहे हैं, वेद का धोखा देकर अपने अनुभूत सांसारिक भाव अपने

शिष्यों को सिखला रहे हैं। क्या कोई जीता जागता आर्यसमाजी ऐसा संसार में बाकी है जो इस को वैदिक सिद्ध करदे ? यदि नहीं कर सकते तो फिर दयानन्द के इन लेखों को गपोड़े क्यों नहीं लिखते ? क्या करें विचारे भईगति सांप छछूंदर केरी "इधर कुआ उधर खाई" गिरे तो कहां गिरें।

नं० (५०) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ४० पं० १७ में लिखा है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें।

आज तो स्वामी जी ने वेद का खजाना खोल दिया, अब तो आर्यसमाजियों को प्लेग इन्फ्लूएंजा और हैजे का भी भय नहीं रहा क्योंकि आर्यसमाजियों के हाथ यह एक ऐसा कीमिया लगा है कि जिससे प्रत्येक आर्यसमाजी चार सौ वर्ष की उम्र वाला बन जावेगा। यह सन्निपात की बात कौन वेद में लिखी है जरा हमको वह वेद मन्त्र तो दिखलाया जावे जिसमें मनुष्य की चार सौ वर्ष की आयु बनने का हुक्म हो ? नहीं मालूम आर्यसमाजी इस नुसखे को क्यों अमल में नहीं लाते ? सभी आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्द जी मरण पर्यन्त आबाल ब्रह्मचारी रहे, फिर वे चार सौ वर्ष की अवस्था होकर क्यों नहीं मरे ? बीच में ही क्यों मर गये ? यहां पर तो 'खुदरा फजीहत दीगरा नसीहत' का मामला गंठ गया। क्या ब्रह्मचर्य से चार सौ वर्ष की अवस्था हो जाती है यह सत्य है ? कोई आर्यसमाजी ऐसा हुआ है जो चार सौ वर्ष का होकर मरा हो ? और फिर ब्रह्मचर्य में यह कैसी विलक्षण शक्ति है जो चार सौ वर्ष की उम्र बनाती है इस ब्रह्मचर्य से न तो तीन सौ वर्ष की आयु हो और न पांच सौ वर्ष की, जब हो तब चार सौ वर्ष की हो। यहां पर तो ब्रह्मचर्य अड़ियल टट्टू की भांति चार सौ वर्ष पर डट गया, इसकी फिलास्फी हमारी समझ में नहीं आई, इस अनोखी घटना पर आर्यसमाजी वेद मंत्र दिखलावें, यदि नहीं दिखला सकते तो इसको स्वामी जी के प्रमाद की डिगरी क्यों न दे दें ?

नं० (५१) सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १६३ पं० ४ में लिखा है कि ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है।

संसार के आरम्भ से आज तक जितने भी विद्वान् हुये हैं उन सब ने ईश्वर को त्रिकालदर्शी माना है किन्तु स्वा० दयानन्द जी इतने प्रबल विद्वान् हुये कि उन्होंने ईश्वर के त्रिकालदर्शीपन को ऐसा उड़ाया जैसे कि गधे के शिर से सींग।

क्या कोई आर्यसमाजी इस खण्डखाने की गप्प को सत्य सिद्ध करने के लिये लेखनी उठा कर हमको यह बतलावेगा अमुक वेद के अमुक मन्त्र में लिखा है कि ईश्वर त्रिकालदर्शी है। लिखते समय आर्यसमाजी यह भी याद करलें स्वा० दयानन्द जी का लेख यह है कि 'हम वेद को मानते हैं और हमारा मत वेद है, कहो आर्यसमाजियो! दयानन्द जी ने तुमको कैसा बेवकूफ बनाया? यदि तुम पढ़े होते तो फिर स्वामी जी के जाल में न फंसते किन्तु अविद्या ने तुमको स्वा० दयानन्द जी के जाल में ढकेल दिया अब तुम इस जाल से निकल नहीं सकते, यदि ईश्वर को त्रिकालदर्शी मानते हो तो आपके महर्षि झूठे बनते हैं और महर्षि के लेख को सत्य सिद्ध करते हो तो वेद टका सा जवाब दे देता है, हाय अविद्या तेरा सत्यानाश हो जाय तैंने आर्यसमाजियों को इतना बदनाम करवाया कि विचारे संसार के सामने मुंह दिखलाने योग्य नहीं रहे? हमें आशा नहीं है कि इस गोरखधंधे को सुलझाने के लिये कोई लेखनी उठावेगा?

नं० (५२)　सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ०१८७ पं० ११ में लिखा है कि मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय-कंठ-नेत्र-शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर करे।

कहो कैसी रही, आर्यसमाजियो! वेद ने जो मूर्ति के द्वारा मन अवरोध करना बतलाया था उसको तो स्वामी जी ने खण्डन कर दिया और तुम्हारे जीवन को बरबाद करने के लिये नाभि-कंठ-नासिका प्रभृति स्थानों में मन का स्थिर करना लिखा एवं फिर सब के बाद कौन स्थान बतलाया, पीठ का हाड़? ठीक है, स्वामी जी ने "जैसा मुंह वैसा थप्पड़" इस कहावत को सत्य कर दिया। तुम घोर नास्तिक हो, देवप्रतिमा में मन स्थिर करने के अधिकारी नहीं हो इसकारण स्वा० दयानन्द जी ने तुम्हारे मन को हाड़ में उलझाया किंतु तुम इतने मूर्ख निकले कि उसी में मोक्ष समझ बैठे। कहिये कैसी रही, जो विना विद्या के केवल हुज्जतबाजी से धर्म के निर्णय करने का दावा करता है उसको ऐसी ही जगह उलझाया जाता है। हम आज भारत वर्ष के आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि वे कौन २ आर्यसमाजी हैं जो पीठ के हाड़ में अपने मन को रोका करते हैं? वारंट निकालने पर भी कोई आर्यसमाजी ऐसा न मिलेगा जो नित्य बैठकर घंटा दो घंटा के लिये अपने मन को पीठ के हाड़ में उलझा देता हो फिर कौन कहता है कि आर्यसमाजी धार्मिक हैं, क्या तुम स्वा० दयानन्द जी की इस आज्ञा

को चण्डूखाने की गप्प नहीं मानते ? तुम सच सच बतलाओ क्या स्वा० दयानन्द जी तुमको धर्म से नहीं गिरा रहे ?

यदि स्वा० दयानन्द जी का यह लेख वैदिक है तो फिर इसमें वैदिक प्रमाण दिखलाओ। स्वा० दयानन्द जी साफ लिखते हैं कि 'वेद में जिन कार्यों का करना लिखा है उनको हम यथावत् करते हैं'। तुम जो पीठके हाड़ में अपने मनको कबड्डी खिलाते हो तो इस कबड्डी का कोई वेद मंत्र बतलाओ,नहीं बतला सकते तो छोड़ो स्वामी जी की लिखी चण्डूखाने की गप्पें ? हमको तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है तुम मानते तो चण्डूखाने की गप्पों वाला धर्म हो और संसार को धोखे में फांसने के लिये इन गप्पों को वैदिक धर्म कहते हो। आर्यसमाज में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो इसका वैदिक मंत्र पेश कर दे ?

नं० (५३) सत्यार्थप्रकाश समु० २ पृ० २२ पं० १० में लिखा है कि धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

कितनी असंभव बात है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से गर्भ में पड़े हुये वीर्य को सुशीलता सिखला दी जावे ? आर्यसमाजी तो बड़े हुज्जतबाज होते हैं, यहां पर इनकी समस्त हुज्जतों का क्या खातमा हो गया ? वेद न पढ़े तो न सही, इतनी बात तो साधारण मनुष्य भी समझ लेता है कि चेतनता के बिना सुशीलता का उपदेश कैसा ? सब समझते हैं किन्तु स्वा० दयानन्द जी भी बड़े उस्ताद हैं, स्वामी जी ने समस्त आर्यसमाजियों पर वह बाजीगर की लकड़ी फेरी कि अब इनकी बुद्धि काम ही नहीं देती। यदि स्वामी जी यह लिख जाते कि सृष्टि के आरंभ में चार ऊंट और तीन भैंसे वेद के बड़े विद्वान् हुये, इतने पर भी आर्यसमाजी स्वामी जी के लेख को सत्य ही कहते ? अब पूछना यह है कि चार लाख आर्यसमाजियों में कितनी स्त्रियां ऐसी हैं जो गर्भाधान के दिन से वीर्य को सुशीलता का पाठ पढ़ाती हैं ? यदि किसी एक स्त्री ने भी ऐसा करके दिखलाया होता तो हमको कुछ न कुछ सन्तोष होता किन्तु न किसी स्त्री ने ऐसा किया और न आगे को कर सकती है फिर स्वामी जी के इस वैदिक कार्य को क्या हिरणियां करेंगी या भेड़ बकरियां ? आर्यसमाजियो ! जरा तो आंख खोलो,सर्वथा ही अक्ल को बूट के नीचे मत कुचलो,तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम प्रत्यक्ष विरुद्ध दयानन्द के इस गपोड़े को वैदिक धर्म बतलाते हो ? यह

तुम्हारी चोरी और सीना जोरी कितने दिन चलेगी ? वाहरे आर्यसमाजियो ! धन्य है तुमको और तुम्हारी हठ को जिस हठ से तुम गपोड़ों को वैदिक बनाने का मिथ्या साहस करते हो ?

आर्यसमाजियो! वेद का एक एक अक्षर तुम्हारी दृष्टि में भयंकर भैंसा है, जब तुम लाचार हो जाते हो और इज्जत का चकनाचूर होता देखते हो तब इस गपोड़े की हांडी को सनातनधर्म के शिर पर फोड़ते हो ? तुम कहते हो कि प्रह्लाद ने भी तो नारद का उपदेश गर्भ में रहते ही सुना था ? यह तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु जिस समय नारद का उपदेश प्रह्लाद ने सुना उस समय तो प्रह्लाद में चेतनता आ गई थी, वेद का सिद्धान्त है कि सप्तम मास में चेतनता पाकर जीव गर्भ के दुःखों से घबरा जाता है और वह गर्भ से छुटकारा पाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ अपना इकरार नामा भी पेश करता है। इस विषय में निरुक्त के लेख को हम उद्धृत करते हैं पढ़िये—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नाना योनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥
अहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ।
सांख्यं योगं समभ्यस्येत्पुरुषं वा पंचविंशकम् ॥

परिशिष्ट ।

मैं मरा, फिर उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर फिर मरा, सहस्रों योनियों में मैंने निवास किया, अनेक आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया, विविध प्रकार की मातायें देखीं, इसी प्रकार अनेक पिता और अनेक सुहृद् मिले किन्तु अब मैं नीचे को मुख कर पीड़ा से पीड़ित हो अनेक जन्तुओं से समन्वित हो लटका हूँ, इस बार जो गर्भ से छूट जाऊंगा तो सांख्य योग के अभ्यसन द्वारा पंचविंशत्यात्मक पुरुष का अभ्यसन करूंगा।

यह चैतन्य जीव की पुकार निरुक्त ने लिखी है इस कारण चेतनावस्था में प्रह्लाद को भक्ति योग के उपदेश का ज्ञान होना निरुक्त दृष्टि से संभव है किन्तु गर्भ धारण के दिन से 'सुशीलता का उपदेश' सर्वथा शास्त्र और प्रत्यक्ष के

विरुद्ध है उस समय वीर्य में व्यापक जीव चेतनता रहित है। इस इतनी मोटी बात को स्वा० दयानन्द जी की बुद्धि ने न जाना ये कैसे महर्षि हैं, मालूम होता है कि कुछ नरपशुओं ने अपनी मूर्खता से हल्ला मचा जबर्दस्ती से महर्षि बना दिये ?

क्या कोई आर्यसमाजी इतना साहस रखता है जो इस प्रश्न के ऊपर लेखनी उठा दे ? लेखनी उठाना तो दूर रहा, हमने यह आंख से देखा है कि इस प्रश्न को सुनते ही आर्यसमाजी उठ भागते हैं और इस दौड़ से चलते हैं कि कलां घोड़े की घुड़दौड़ को भी मात कर देते हैं-जय हो इस महाराणी अविद्या की जो आर्यसमाजियों के पीछे पड़कर इनकी इज्जत का स्वाहा कर रही है,शोक इस बात का है कि इतने पर भी आर्यसमाजियों की आखें नहीं खुलतीं। कहो आर्यसमाजियो ! दयानन्दजी ने तुम लोगों को कैसा वैदिक धर्म बतलाया ? 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुनबा जोड़ा' "टाट की अंगिया मूज की तनी कहो मेरे बलमा कैसी बनी" आर्यसमाजियो ! संभल जाओ, दयानन्द जी के गपोड़े को छोड़ भागो नहीं तो संसार में मुंह दिखलाने के लायक नहीं रहोगे ?

नं० (५४.) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३५ पं०१६ में लिखा है कि आचमन से कंठस्थ कफ की निवृत्ति थोड़ी सी होती है।

आर्यसमाजियो ! हम तुमसे पूछते हैं तुम सच २ बतलाओ कि जल से कफ की निवृत्ति होती है या स्वामी जी तुमको बेवकूफ समझ अपने जाल में फांस रहे हैं ? तुम हमारे इस प्रश्न को सुनकर चुप क्यों रह जाया करते हो, क्या तुम यह चाहते हो कि हम तो दयानन्द के ढकेले खंदक में गिर ही गये हैं किन्तु हमारी भाँति समस्त संसार खंदक में गिर जावे। यदि तुम्हारा यह ख्याल है तो यह ख्याल बिल्कुल गलत है, तुम शास्त्रानभिज्ञ थे, तुमको वेद का प्रत्येक अक्षर काला सांप दीखता था, तुम्हारा विचार सर्वथा मारा गया था इस कारण तुम दयानन्द के जाल में फंस गये किन्तु संसार तुम्हारी भांति सफा-चट-निरक्षर नहीं है जो दयानन्द जी के धोखे को न समझता हो ? संसार खूब जानता है कि स्वामी जी घोर नास्तिक हैं और चार्वाक् से भी दो कदम आगे हैं एवं ये वेद के नाम के झूठे गीत गाकर वेद का प्रलोभन दे अपने जाल में उसी तरह फांस रहे हैं जैसे कि कलंदर चने दिखला कर बन्दर को जाल में बांध लेता है।

आर्यसमाजी कान खोल कर सुनलें,जल से कफ की निवृत्ति नहीं होती-वृद्धि होती है । जल से कफ की निवृत्ति का होना स्वा० दयानन्द जी का यह मिथ्या गपोड़ा तुमने माना कैसे ? क्या आप लोगों ने अपनी बुद्धि को नीलाम करके 'बाबा वचनं प्रमाणम्' गुरुडम को तो स्वीकार नहीं कर लिया ? हम तुमसे नम्रभाव से पूछते हैं कि मामला क्या है ? हमारे हजार बार पूछने पर भी तुम चुप क्यों हो जाते हो ? चुप रह कर संसार में आर्यसमाज की बेइज्जती क्यों करवा रहे हो ।

'बड़े मियां सो बड़े मियां-छोटे मियां सुभान अल्ला'स्वा० दयानन्द ने आचमन से कफ की निवृत्ति बतलाई है किन्तु इनके विरुद्ध एक आर्यसमाजी ही कहता था स्वामी जी का यह लिखना तो गलत है, संभव है कि उन्होंने भंग के नशे में लिखा हो ? हां अलबत्ते यह हमारा मन कहता है कि संध्या में आचमन करने से कफ निवृत्ति नहीं होती वरन् दो लड़के पैदा होते हैं, इसको सुन कर हमको हंसी आई, हमने पूछा कि आचमन से दो लड़के पैदा होते हैं इसमें कुछ प्रमाण ? तब उस आर्यसमाजी ने उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्द जी ने आचमन से कफनिवृत्ति में क्या प्रमाण दिया था जो हमसे प्रमाण मांगते हो ? हम तो आर्यसमाजी हैं औरों से प्रमाण मांगा करते हैं ,प्रमाण हम नहीं दिया करते हमारे मुंह से जितने अक्षर निकलते हैं वे सब प्रमाण हैं क्योंकि हम वेद निर्माता ईश्वर से कुछ न कुछ विद्वान् ही हैं । हमारे यहां तो 'मुखं किमस्यासीत्' इस वेद मंत्र के भाष्य में साफ २ लिख दिया है कि ईश्वर मूर्ख है देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका । फिर जब संसार मूर्खराज ईश्वर के बनाये हुये वेद को स्वतः प्रमाण मानता है तो हमने तो करीब २ मिडिल तक पढ़ा है हमारा कथन प्रमाण क्यों न होगा ? मजा रहा,इस आर्यसमाजी ने आचमन से कफ निवृत्ति की उत्तम रीति से मिट्टी पीटी ।

हमारे एक मित्र एक दिन इस पर त्रैराशिक (अर्वा) बना लाये और हमसे बोले कि पंडित जी हमने एक हिसाब लगाया है जरा सुन लीजिये । हमने कहा क्या है ? वह सुनाने लगे कि स्वामी जी के लेखानुसार थोड़े जल से थोड़े कफ की निवृत्ति और बहुत जल से बहुत कफ की निवृत्ति, इस हिसाब से यदि ऐसे मनुष्य को कि जिसको कफ के कष्ट से नींद न आती हो, यदि एक हंडा या एक मसक जल पिला दिया जावे तो वह कफ के फन्दे से छूट कर

इतने घर्राटे लगाता है कि पड़ासियों को भी नहीं सोने देता। समझ में नहीं आता क्या बात है। आर्यसमाजियो ! क्या तुम को सुनता नहीं क्या तुम गूंगे हो या तुमको नेत्र तिमिर ने घेर लिया अथवा तुम्हारे पास कलम दवात कागज नहीं रहा, तुम ऐसे २ हृदयविदारक तीरों को सहते हो किंतु चूं नहीं करते ? भागो, छोड़ो दयानन्द के मत को नहीं तो संसार बुरी तरह तुम्हारी मिट्टी कूटेगा ।

एक वैद्य हमारे पास आकर रोने लगा, हमने पूछा रोते क्यों हो ? उस ने उत्तर दिया कि पहिले चैत के महीने में कुछ मनुष्य रोग से पीड़ित हुआ करते थे और उन से कुछ हम को मिल जाया करता था किंतु पारसाल से गांव में सत्यार्थप्रकाश आगया है, उस को पढ़ कर कफ पीड़ित मनुष्य आचमन कर अच्छे होजाते हैं अब हम को कोई पूछता भी नहीं, यदि पहिले से हम को सत्यार्थ-प्रकाश के इस लेख का पता लग जाता तो हम फिर न तो बनवारीलाल पाठशाला में भरती होते और न वैद्यक शास्त्र पर परिश्रम करते। इतने में एक आर्यसमाजी आगया उसने कहा कि वैद्य जी आप कफ को क्या लिये फिरते हो, हमारे यहां तो समस्त रोगों की दवाइयां तैयार होगई सुनिये हम आप को दो चार सुनाते हैं। यदि पैर के अंगूठे पर सन्ध्या के समय पानी छिड़का जावे तो चाहे कैसा अंधा हो फौरन आंख खुल जाती है, अगर पैर की छोटी अंगुली पर सन्ध्या का पानी छिड़का जावे तब तो एक आंख वाला दोनों नेत्रों से देखने लगता है, सन्ध्या का पानी एक बूंद कान में डाल दिया जावे तो फिर नये पुराने सभी प्रकार के आतशक और सुजाक भाग जाते हैं, यदि एक बिंदु जल कमर पर डाल दिया जावे तो फिर डाक्टर वर्मन की धातुपुष्ट की गोलियों की जरूरत नहीं रहती। यह सुन कर हमने पूछा कि इस का कहीं प्रमाण है ? तब उसने उत्तर दिया कि प्रमाण का पचड़ा तो केवल सनातनधर्मी ही लगाते हैं। हमारे मजहब में तो यह बात है कि जो सम्भव असम्भव लिख दिया वह पत्थर की लकीर है यदि इतने पर भी उस लेख पर कोई चीं चपड़ करे तो फिर उसको मुंहतोड़ उत्तर देने के लिये ब्राह्मण बनने के भूत के जकड़े हुये चौधरी साहब बनारस में रहते हैं वे न लेखनी उठावें और न जबान खोलें किंतु उत्तर ऐसा बिकट देते हैं कि उस उत्तर के मारे उनको रोटी अच्छी नहीं लगती ।

हमको एक सिविल सर्जन मिले वह कुछ और ही कहते थे, वह हम से पूछते

थे कि आप हमको ऐसे मनुष्यों के नाम लिखवाओ कि जिन्होंने कफ रोग पर केवल जल (औषधि) दिया हो,हम ऐसे मनुष्यों की लिस्ट तैयार करके जिला-मजिस्ट्रेट को भेजेंगे ताकि जिलाधीश उनके ऊपर मुक़दमा क़ायम करके पुलिस द्वारा गिरफ्तार करवा अदालत भेजे,अदालत में हम उनको सजा करवावेंगे,कफ में जल देना अच्छा करना नहीं वल्कि इरादतन मार डालना है।

आर्यसमाजियो! हम तुम्हारा कल्याण चाहते हैं तुम्हारी बाबत ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ताकि वह ईश्वर तुम्हें बुद्धि दे और तुम घोर नास्तिक दयानन्द के जाल से निकल आओ किंतु तुम्हारी बुद्धियों को हो क्या गया ? तुम्हारे मन ने सोलह आने यह फैसला भी दे दिया कि दयानन्द जी वेद का उपदेश नहीं करते किंतु वेद का बहाना लेकर अपने मन के लवेद में फांस संसार को मूर्ख समझ अपनी सम्प्रदाय बढ़ा रहे हैं,तुम इतना जानबूझ कर भी उन के सिद्धांत को वैदिक और उनको महर्षि कहते हो तुम से अधिक अज्ञानी संसार में कौन होगा ?

क्या सच ही वेद में आचमन करने की आज्ञा लिखी है और आचमन से कफ की निवृत्ति होना वैदिक धर्म है ? यदि है तो श्रुति पेश कीजिये। हमें आशा है कि प्रलय तक भी किसी आर्यसमाजी की लेखनी न उठेगी, सच तो यह है कि झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करना,मीठी मीठी बातें बना कर साधारण मनुष्यों को धोखे में फांसना यह तुम्हारी ठग्गीबाजी कितने दिन चलेगी। धन्य है अविद्या देवी तुम को तैने अपने प्रताप से ठगों को भी पंडित, सम्पादक और धार्मिक बना दिया ? किंतु जिस समय वेद विज्ञान का प्रकाश होगा उस समय आर्यसमाजी ऐसे भाग कर छिपेंगे कि जैसे सूर्य भगवान् के निकलने पर पक्षी विशेष छिपा करता है।

नं० (५५) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३५ पं० २० में लिखा है कि मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगो पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है।

स्वामी जी भी अजब किस्म के मनुष्य हैं प्रत्येक बात को वेद के मत्थे मढ़ देते हैं। स्वामी जी पहिले लिख आये हैं कि 'हम वेद में कहे हुये कार्यों को करते हैं,हम सच कहते हैं सौबार नहीं हजारबार कहते हैं वेद के किसी मंत्र में मार्जन करना और उस से आलस्य दूर होना नहीं लिखा।

स्वामी जी मार्जन से आलस्य की निवृत्ति लिखते हैं इसके ऊपर हमारा कथन है कि अभी तो वह स्नान करके आया है स्नान से भी जिसका आलस्य न गया तो फिर जरा से जल के छींटों से कैसे चला जावेगा ? और हमने मान भी लिया कि स्नान कर के भी जिसका आलस्य दूर न हुआ तो फिर उसको हुलास क्यों न सुंघा दी जावे या चाय व काफी क्यों न पिला दी जावे ? सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि एमोनियां की शीशी सूंघ ले जिससे मूर्छा तक भी दूर हो जावे ? जिस मनुष्य का आलस्य स्नान से दूर न हुआ उस कुंभकर्ण का आलस्य अढ़ाई रत्ती जल के छींटेबाजी से दूर हो जावेगा ? भला क्या कोई मनुष्य इस बात को मान सकता है कि स्नान करने पर भी आलस्य रह जावे । हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि कृपाकर ऐसे आलसियों का जन्म या इन दूसरे कुंभकर्णों की उत्पत्ति भारतवर्ष में न कीजिये । सबसे अच्छा तो यह है कि ऐसे मनुष्य नौकर रख लें जो स्नान के समय में आंखों पर इतने छींटे मारें कि जब तक आलस्य दूर न हो जावे इन कुंभकर्ण आर्यसमाजियों को दम न लेने दें जिससे वहीं आलस्य उतर जावे । जब आलस्य के लिये ही मार्जन है तो जिसको आलस्य न हो वह मार्जन भी न करे । स्वामी जी ने कैसी बाजीगर की सफाई से मार्जन को उड़ाया है ।

क्या आर्यसमाज में कोई मनुष्य ऐसा है जो वेद में मार्जन अथवा मार्जन से आलस्य दूर होना सिद्ध कर दे ? इस प्रश्न को सुनकर आर्यसमाजियों को घर में धंसने के सिवाय और कुछ नहीं सूझता । क्या मजे की बात है जो आर्यसमाजी रात दिन अपने मजहब को सत्य बतलाने का धोखा दें, जब उन पर कोई प्रश्न हो जाय तो प्रश्न को देखकर घर में ऐसे धंसें जैसे बिल्ली को देखकर चूहा बिल में धंस जाता है । सच पूछिये तो आज कल मनुष्य आर्यसमाजी बन कर संसार के सामने अपनी इज्जत को नीलाम करके दिखलाते हैं । अविद्या जो चाहे सो करदे, यदि स्वामी जी यह लिख देते कि संध्या गधे पर चढ़कर करनी चाहिये या ऊंटनी का दूध पीते जाओ और संध्या करते जाओ अथवा संध्या के समय दोनों जूते दोनों कानों में बांधो क्योंकि वेदमें इसी प्रकार संध्या करनी लिखी है । स्वामी जी के इस अयोग्य लेख पर अन्य धर्मियों को चाहे विश्वास न होता किन्तु आर्यसमाजी तो इन बातों को खास वेद की आज्ञा मानते कारण इसका यही है कि अविद्या ने आर्यसमाजियों की गर्दन ऐसी जकड़

कर पकड़ी है कि अब ये लोग दयानन्द की बतलाई बातों को वैदिक ही मानते रहेंगे, अब इनके पास ऐसा कोई उपाय नहीं कि जिसका अवलम्बन करके दयानन्द जी के गोरख धंधे से छुट्टी पा जावें। ईश्वर इनकी अविद्या का नाश करे और इनके अन्तः करण में वेद तत्व का प्रकाश हो जिससे वे पाप कर्म को छोड़ धार्मिक मार्ग पर आवें।

कई एक आर्यसमाजी लोगों के सामने चालबाजी करके अपनी सत्यता सिद्ध किया करते हैं इनको कुछ और तो सूझता नहीं यह कह बैठते हैं कि आचमन और मार्जन तो सनातनधर्मी भी करते हैं,यदि वेद में दोनों चीजें नहीं हैं तो फिर सनातनधर्मी आचमन और मार्जन क्यों करते हैं ?

वाहरे अक्ल के दुश्मनो ! जब तुमको कुछ नहीं सूझता, दयानन्द के लेख में चारों तरफ अंधकार ही अंधकार दीखता है तब तुम स्वामी जी के मनगढ़न्त अनर्गल कार्यों का भंडाफोड़ सनातनधर्मियों के शिर पर करते हो ? याद रक्खो ऐसी चालबाजियों से कोई भी मनुष्य धर्म निर्णायक बनकर प्रतिष्ठा नहीं पा सकता किन्तु संसार ऐसे मनुष्य को धोखेबाज आदि उपाधियां देकर अन्त में धर्म का दुश्मन समझ बैठता है अतएव चालबाजी से मनुष्य की प्रतिष्ठा न होकर हानि ही होती है क्या हम आर्यसमाजियों से यह आशा कर सकते हैं कि आर्यसमाजी चालबाजी रूप कबड्डी को छोड़ देंगे। रही बात सनातनधर्मियों की, सनातनधर्म के गृह्यादि ग्रन्थों में तो मार्जन करना लिखा है किन्तु वेद में न मार्जन है और न मार्जन से आलस्य का दूर होना।

नं० (५६) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० १३ में लिखा है कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है।

बिल्कुल गप्प, सोलह आने गप्प। वेद में कोई भी मंत्र ऐसा नहीं है कि जिसमें हवन की वायु से दुर्गंधि का नाश होना लिखा हो ? यह कैसा वैदिक धर्म है कि वेद का नाम लेकर स्वा० दयानन्द जी अपने मस्तिष्क की बातों का उपदेश कर रहे हैं। वास्तव में स्वामीजी वेद के कहे हुये धर्म को वैदिक धर्म नहीं मानते वरन् अपने मन में भरे हुये योग्य अयोग्य भावों को वैदिक धर्म मानते हैं उन्होंने किसी से सुन लिया है कि हवन की वायु से दुर्गंधि का नाश होता है बस उसी को सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया और वेद की छाप जमादी।

आर्यसमाजी भी स्वामी जी के इतने भक्त हैं कि स्वामी जी जिस बात को वेद के नाम से लिखदें बुद्धि की चटनी पीस, आंखें बन्द कर फौरन वैदिक धर्म मान लेते हैं। एक आर्यसमाजी ने कहा कि अग्निहोत्र का फल वायु शुद्धि नहीं है किन्तु जिसके घर में अग्निहोत्र होता रहेगा उसके घर में नित्य एक भैंस एक बच्चा देती रहेगी, मोटर उसके दरवाजे पर खड़ी रहेगी, उसको कभी पाखाना नहीं जाना पड़ेगा, अग्निहोत्र का धुआं पेट में धंस के म्युनिस्पेलटी के माल को वहां ही सुखा देगा, अग्निहोत्र करने वाले को नाई के पैसे बचते रहेंगे क्योंकि अग्निहोत्र का धुआं जब शरीर में लगेगा तब एक भी बाल शरीर के बाहर न निकलेगा। हमने कहा तुम कोरे गपोड़े हांकते हो ऐसा नहीं हो सकता, यदि होता है तो इसकी पुष्टि में प्रमाण दीजिये? इसको सुन कर इस आर्यसमाजी ने कहा कि हम आपसे बात नहीं करते, अपने आर्यसमाजी भाइयों को समझाते हैं आर्यसमाजी हुज्जतबाज नहीं होते। आर्यसमाजियों ने वेद विरुद्ध, युक्ति विरुद्ध, प्रत्यक्ष विरुद्ध स्वा० दयानन्द के लिखे सहस्रों मिथ्या गपोड़ों को सत्य मान लिया तो क्या वे श्रद्धालु हमारे मिथ्या चार गपोड़ों को न मान लेंगे?

वास्तव में दयानन्दीय मत में गपोड़ों के सिवाय और कुछ नहीं, अग्निहोत्र के वायु से दुर्गंधि का नाश होता है यह स्वामी जी का बनाया हुआ ताजा गपोड़ा है। हम हजार वार चेलेंज देने, वारंट निकालने पर एक भी आर्यसमाजी ऐसा न पावेंगे जो हवन की वायु से दुर्गंधि का मिटना वेद से सिद्ध करदे। दौड़ियो आर्यसमाजियो! दयानन्द के गपोड़े को वेद से सिद्ध करियो नहीं तो आज तुम्हारा आंख के नीचे का हिस्सा कटा जाता है। कुछ भी हो, मूर्खसमाज की हिम्मत नहीं है कि कोई ऐसा मन्त्र टटोल ले जिसमें हवन की वायु से दुर्गंधि का नाश लिखा हो। हमको शोक इस बात का है कि जिस धर्म में वेद के नाम से ऐसे गपोड़े लिखे हों वे आर्यसमाजी अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ और सच्चा बतलावें। हाय निर्लज्जता तेरा सत्यानाश हो तैंने अपने पंजे में डाल इन गरीब आर्यसमाजियों को नग्न नाच नचा कर छोड़ा।

नं० (५७) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३६ पं० ६ में लिखा है किसी धातु वा मिट्टी के ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे।

यह वेदी एक अजब ही किस्म की है,स्वा० दयानन्दजी के मन में ऐसी वेदी भरी होगी उसको यहां पर लिख दिया, यह बात याद न रही कि चतुर्थ समुल्लास में हमने लिख दिया है कि जिन कार्यों का वेदों में करना लिखा है उन्हीं को हम करते हैं। वेद में ऐसी वेदी बनाने की कहीं पर भी आज्ञा नहीं क्या किसी आर्यसमाजी ने ऐसी वेदी बनाना वेद में पाया है ? नहीं पाया तो वेद-विरुद्ध वेदी परिमाण दयानन्द के गपोड़ें को कैसे वैदिक माना ? यह मजा है स्वा० दयानन्द जी जो लिखदें वही वैदिक बन जावे। अंधेर के गढ़े में गोता लगाने वाले आर्यसमाजी भाइयो जरा पढ़ो और स्वामी जी की चालबाजी से छुटकारा पाओ। क्या तुमको इतना नहीं सूझता कि वेद का बहाना लेकर स्वा० दयानन्द जी अपने बनावटी जाल में हमको ऐसे फांस रहे हैं कि जैसे कांटे में आटा लगा कर मछली फांसी जाती है।

वर्तमान आर्यसमाजी वैदिक साहित्य के लिखने पढ़ने को तो तिलांजलि दे चुके, विचार की अन्त्येष्टि कर चुके फिर वे कैसे जानें कि कौन बात सत्य है ? जब उनको कुछ नहीं सूझता तब वे अपने नये नये हथियारों से काम लेते हैं (१) कालूराम मूर्ख है बका ही करता है (२) कालूराम आर्यसमाज से जलता है (३) कालूराम हसन निज़ामी का नौकर है इस कारण आर्यसमाज का खण्डन करता है (४) कालूराम क्या सनातनधर्म का वकील या ठेकेदार है ? ऐसे २ नये २ हथियारों से तुमने बहुत दिन पबलिक् को धोखे में डाला अब तुम्हारी यह नीचता संसार जान गया है, संसार को यह मालूम हो गया है कि झूठ बोलना, धोखा देना,साधारण मनुष्यों को चालबाज़ी में फांसना इन तीन कामों के अतिरिक्त आर्यसमाज के पास और कुछ नहीं रहा, क्या कोई आर्यसमाजी भारत-जननी ने ऐसा पैदा किया है जो दयानन्द के मन से गढ़ी हुई फर्जी वेदी को वैदिक सिद्ध करदे ? याद रक्खो, आर्यसमाजियो! लिखते समय कलम टूट जावेगी, बोलते समय जीभ में दो इंची लोहे की कील ठुक जावेगी। तुम्हारा कैसा मजहब है तुम अपने मजहब की एक बात को भी वैदिक सिद्ध नहीं कर सकते ? कहां गये वे आर्यसमाजी जो सनातनधर्म को झूठा बतलाया करते थे ? क्या आज उनका अस्तित्व संसार में नहीं है ? क्या उनकी उछल कूद मारी गई ? यदि तुममें जरा भी लज्जा हो तो कूदो मैदान में और वेदी वैदिक सिद्ध करो। हमारे हजारवार पुकारने पर भी यदि तुम मैदान में न आओगे तो फिर तुम्हारी इज्जत की कौड़ियां हो जावेंगी इससे अधिक हम कुछ न कहेंगे।

नं० (५८) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ०३६ पं० २१ में लिखा है कि मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायं और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कंठस्थ रहें।

यह विलक्षण सूझ स्वा० दयानन्द जी को किसी वेद मन्त्र में से सूझी या अपने ही दिमाग से निकली ? स्वामी जी 'सत्यार्थप्रकाश' लिख रहे हैं या 'गपोड़ार्थप्रकाश' ? स्वामी जी आप हमें क्षमा करें, हम निरक्षर भट्टाचार्य आर्यसमाजी नहीं हैं कि जो वेद के नाम पर आपके पैदा किये बड़े २ गपोड़ों को सत्य मान लेंगे ? हमने कुछ पढ़ा है इसलिये हम कहते हैं कि यह आपका गपोड़ा है 'जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है उनमें हवन के गुण लिखे हैं' प्रथम तो आपके यहां हवन के कुछ गुण ही नहीं केवल एक गुण है कि 'हवन के वायु से दुर्गंधि का नाश होता है' फिर क्या हवन के समस्त मन्त्रों में यही लिखा है कि हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट हो जावेगी ? यदि ऐसा है तब तो वेद में पुनरुक्त दोष आजावेगा। वेद को एक मन्त्र में कहना चाहिये कि हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट हो जाती है परन्तु आपके कथनानुसार वेद ने इस बात को एक मन्त्र में न कह कर हवन के समस्त मन्त्रों में कहा यह पुनरुक्त दोष है। ओहो, मालूम हो गया कि आपने 'मुखं किमस्यासीत्' इस मंत्र का अर्थ करते हुये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर को मूर्ख बतलाया है उसकी पुष्टि तुम यहां कर रहे हो कि ईश्वर ने हवन के समस्त मंत्रों में यही कहा है कि 'हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट होती है-हवन के वायु से मिट जाती है दुर्गंधि-हवन मिटाता है दुर्गंधि को-इन्हीं शब्दों को ईश्वर हवन के समस्त मंत्रों में कहता है तब तो वास्तव में ईश्वर मूर्ख है। स्वामीजी महाराज ! ईश्वर मूर्ख नहीं है आप नास्तिक हैं अतएव ईश्वर से डरते नहीं, गपोड़े हांकने को आप वैदिक समझते हैं इस कारण सर्वथा मिथ्या गपोड़े हांक कर मूर्ख आर्यसमाजियों को अपने जाल में फांसते हैं। आज हम तुम्हीं से पूछते हैं कि आपने गायत्री मंत्र से भी हवन करना लिखा है अब आप ही बतलावें कि गायत्री मंत्र में हवन के कितने गुण हैं ? आपने जो गायत्री मंत्र का भाषा टीका लिखा उसमें तो हवन का एक भी गुण नहीं लिखा। क्या गायत्री का अर्थ करते हुये आप यह बात भूल गये थे कि 'इसमें हवन के गुण हैं' आप भी खूब राग रचते हैं अपने सिद्धान्त को अपने ही लेख से गपोड़ा बना देते हैं।

अब हम अग्निहोत्र के उन मंत्रों को पाठकों के आगे रखते हैं जिनसे स्वा० दयानन्द जी ने हवन करना लिखा है। मंत्र ये हैं "ओं अग्नये स्वाहा-सोमाय स्वाहा-अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा-विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा-धन्वन्तरये स्वाहा-कुह्वै स्वाहा-अनुमत्यै स्वाहा--प्रजापतये स्वाहा--सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा-स्विष्टकृते स्वाहा।

दौड़ियो आर्यसमाजियो! बतलाइयो कौन मंत्र में से हवन के गुणों का वर्णन टपकता है, क्या आर्यप्रतिनिधि सभाओं में इतना दम है कि हवन के मंत्रों में से हवन के गुण निकाल दें ताकि स्वा० दयानन्द का लिखा यह गपोड़ा सत्य सिद्ध हो जावे कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं। हमें तो मालूम है कि आर्यप्रतिनिधि सभायें और समस्त आर्यसमाजें वेद विज्ञानशून्य सर्वथा मूर्ख अंग्रेजी पढ़े लिखे आदमियों की सोसाइटियां हैं इनमें क्या हिम्मत है कि वेद पर लेखनी उठा जायं। आर्यसमाज की समस्त सोसाइटियां यदि इकट्ठी होकर विवेचन करें कि क्या हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं तो स्वामी दयानन्द जी की बुद्धि का दिवाला साक्षात्सामने आकर खड़ा हो जाता है। ऐ आर्यसमाजियो! तुमने अपनी लज्जा को बूट से कुचल दयानन्दीय गपोड़ों को वैदिक धर्म बतला कर जो मूर्ख चिड़ियाओं को अपने जाल में फांसने का काम आरम्भ किया है तुम्हारे इस कार्य को संसार घृणा की दृष्टि से देख रहा है। क्या किसी आर्यसमाजी में इतनी हिम्मत है जो हवन के मन्त्रों में से हवन के गुण बतलावे। याद रक्खो यह तुम्हारा झूठा धोखा अब न चलेगा, तुमने कालूराम और अखिलानन्द को छेड़ा है ये दोनों ही साधारण पुरुष नहीं हैं, अखिलानन्द तो अपने घर बैठे रहें केवल कालूराम ने आर्यसमाज की प्रत्येक बात को झूठ, चालबाजी, धोखा, चिड़िया फांसने का जाल सिद्ध न कर दिया तो फिर हमारा नाम कालूराम ही न ठहरा। इसी एक प्रश्न पर लीजिये, है कोई दुनियां में ऐसा आर्यसमाजी जो हवन के मंत्रों में से हवन के गुण निकाल दे? यदि तुम नहीं निकाल सकोगे तो तुम्हें साफ साफ कहना होगा कि स्वा० दयानन्द जी का लेख सर्वथा असत्य और वेद विरुद्ध है। यह कैसी भई बोलो आर्यसमाजियो यह कैसी भई, जैसी भई, यह वैसी भई, दुनियां में इज्जत की ख्वारी अविद्या से कैसी भई।

नं० (५६) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३२ पं० १७ में लिखा है कि इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें।

इस लिखने का प्रयोजन केवल इतना है कि मनु जी ने जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में भिन्न २ वर्ष की व्यवस्था की है वह दुनियां से उड़ कर समस्त वर्णों की एक व्यवस्था हो, इस प्रकार के फैसले को देख कर हम यही कह सकते हैं कि स्वामी जी भारतवर्ष में सब को एक लाठी से हांक कर क्रश्चियन धर्म के नियमों में बांधना चाहते हैं। इस प्रकार की चाल से भारतवर्ष को ईसाई बनाना इस चालाकी को विद्याहीन आर्यसमाजी भले ही न समझें किन्तु लिखे पढ़े लोगों के चित्त में यह भली भांति समा जाता है कि भिन्न भिन्न वर्णों में पृथक पृथक् वर्षों की व्यवस्था को तोड़ने का अभिप्राय क्रश्चियन् धर्म में लेजाना है।

स्वामी जी ने लिखा है कि हम जो काम करते हैं वह वेदानुकूल करते हैं। क्या आर्यसमाजी यह बतलावेंगे कि पांचवर्ष से आठ वर्ष तक सब लड़कों को पाठशाला में भेजना किस वेद मन्त्र में लिखा है? साथ ही साथ यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह कौन वेद मन्त्र है जिसमें इस विषय के लिये राजनियम का होना लिखा हो? आज जितने भी आर्यसमाजी संसार में मिलते हैं वे तीन काम करते हैं (१) दूसरे धर्मों को मिथ्या सिद्ध करना (२) स्वामी दयानन्द जी की अत्यन्त प्रशंसा गाकर उनको जबर्दस्ती से महर्षि बनाना (३) आर्यसमाज को वैदिक धर्म सिद्ध करना किन्तु ऐसा मनुष्य हमको एक न मिला जो स्वा० दयानन्द जी के इस गपोड़े पर जबान खोलता? हम आर्यप्रतिनिधि सभाओं से प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे मनुष्य की खोज करें जो स्वा० दयानन्द जी की इस गप्प का जवाब दे? यदि वैसा न मिले तो वारंट निकाल कर तलाशें। यदि आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द के वेद विरुद्ध, मन गढ़न्त गपोड़े का तीन काल में भी जवाब नहीं दे सकते तो ऐसे झूठे जाल को तोड़ कर बाहर आजावें। हमें इस बात का बड़ा आश्चर्य है आर्यसमाजी यह समझते हैं कि स्वा० दयानन्द जी के समस्त लेख चंडूखाने की गप्पें हैं इतना समझ कर भी स्वामी जी के जाल में फंसे ही रहते हैं इसका कारण केवल स्वार्थ है, क्या कोई स्वार्थी आर्यसमाजी लेखनी उठा सकेगा? हमें आशा नहीं है। लेखनी उठाना पढ़े लिखे मनुष्यों का काम है, जब आर्यसमाज में एक भी वेद ज्ञाता नहीं तो क्या गोभी

बेचने वाली लेखनी उठावेगा ?

नं० (६०) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० १ में लिखा है कि ओं भूः और प्राण आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं ।

नहीं मालूम स्वामी जी ने आर्यसमाजियों को क्या समझा है । संसार में यदि कोई मनुष्य भैंस का अर्थ हिरण करे तो मूर्ख से मूर्ख मनुष्य उसकी हँसी कर कह उठेगा कि हिरण की जाति और है, ये प्रायः जंगलों में रहते हैं और भैंस को मनुष्य पालते हैं, यह दूध देती है एवं इसके दूध से घी खूब निकलता है । भैंस-हिरण कभी एक हो नहीं सकते, जैसा भैंस का अर्थ हिरण है स्वा० दयानन्द जी ने हूबहू वैसा ही भूः और प्राण का अर्थ करके इनको ईश्वर के नाम बतलाये हैं किन्तु आर्यसमाजी वेद की तरफ से चौपटानन्द हैं इस कारण इस गपोड़े को सत्य मान बैठे कि हां भूः नाम ईश्वर का है और प्राण नाम भी ईश्वर का है । यदि आर्यसमाज में एक भी मनुष्य ऐसा होता जो किंचित् भी वेद जानता होता तो वह फौरन कह देता कि भूः और प्राण त्रिकाल में भी ईश्वर के नाम नहीं हो सकते, क्या करें विचारे ये लोग मूर्ख होने के कारण स्वामी जी के चंगुल में आ पड़े । इनका कोई दोष तो है नहीं, हां मूर्ख लोगों को अनेक ठग ठग लेते हैं उसी भांति ये लोग स्वामी जी के चंगुल में जापड़े तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

क्या भारत जननी ने किसी ऐसे आर्यसमाजी को पैदा किया है जो भूः और प्राण को ईश्वर के नाम सिद्ध करदे ? कोई चूं तक न करेगा, स्वांस या डकार न लेगा ? सच तो यह है कि बिना लिखा पढ़ा मनुष्य अर्ध पशु होता है । आर्यसमाजी अपने ऊपर आये हुये प्रश्नों के द्वारा अपने और स्वामी जी के अपमान को सहने को तैयार हैं किन्तु लेखनी उठाने के लिये इनकी नाक कट जाती है । जिस आर्यसमाज में समस्त आर्यसमाजी मिलकर अपने ऊपर हुये एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते वे आर्यसमाज को कितने दिन बचा सकेंगे ?

नं० (६१) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० २ में लिखा है कि स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले ।

अर्थ बड़ा अच्छा है, जैसे कोई बाबू का अर्थ कंजर और कीकर का अर्थ

भेड़िया, पीपल का अर्थ मुसलमान और तुर्क का अर्थ ब्राह्मण करे ऐसा ही अनोखा अर्थ स्वामी जी ने स्वाहा शब्द का किया है? अतएव हम स्वामी जी को धन्यवाद देते हैं और सब से अधिक धन्यवाद देते हैं उन आर्यसमाजियों को कि जिन्होंने यह अयोग्य अर्थ आंखों में पट्टी बांध और अक्ल को नीलाम कर सच मान लिया है। मंत्रभाग तथा ब्राह्मणभाग-वेद-निरुक्त-निघंटु-कल्प-गृह्य-पुराण-कोष-काव्य-चम्पू प्रभृति संस्कृत साहित्य के किसी भी ग्रंथ ने यह अनोखा अर्थ नहीं लिखा, संभव है स्वामी जी ने अपने स्वतः प्रमाण ग्रंथ यथाश्रुतगत या किसी अंग्रेजी की डिक्सनरी से लिखा हो, ऐसे अण्ड बण्ड सर्वथा अयोग्य, असम्भव अर्थ करने वाले को जो आर्यसमाजियों ने महर्षि की पदवी दी है यह आर्यसमाजियों की अविद्या का फल है, क्या किसी आर्यसमाजी में इतना साहस है कि स्वाहा शब्द के अर्थ को सत्य सिद्ध करके दिखला दे? किसी आर्यसमाजी में दम नहीं है जो लेखनी उठाजाय? मुझे नहीं मालूम आर्यप्रतिनिधि सभायें क्या करती रहतीं हैं जो स्वा० दयानन्द जी के खण्डन पर लेखनी नहीं उठातीं? एक दिन वह आवेगा कि आर्यप्रतिधि सभाओं को यह कहना पड़ेगा कि हम स्वा० दयानन्द जी के अर्थ को नहीं मानते? कहां तक स्वामी जी के गपोड़ों को सत्य सिद्ध किया जावेगा? यदि कोई संसार में लिखा पढ़ा मनुष्य हो तो उठावे लेखनी और करे स्वा० दयानन्द के स्वाहा शब्द के अर्थ को सत्य सिद्ध? सिद्ध क्या करेगा यह प्रत्येक आर्यसमाजी समझता है कि स्वा० दयानन्द जी को वेद शास्त्र कुछ नहीं आता था जो उन के मन में लहर उठती थी वे उसी लहर को वेद के नाम से लिख देते थे, फिर कोई आर्यसमाजी लेखनी उठावे तो किस हिम्मत पर उठावे।

नं० (६२) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३८ पं० ४ में लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य को सोलह२ आहुति और छै: २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये।

धन्य है स्वामी जी को जो वेद के नाम से नये २ गपोड़े तैयार कर रहे हैं और शाबास है उन आर्यसमाजियों को जो आंख में पट्टी बांध कर दयानन्द जी के झूठे गपोड़ों को वेद का हुक्म मानते हैं। वाहरे आर्यसमाजियो! तुमने लुटिया डुबोदी, संसार का कोई भी मनुष्य वेद की छाप लगा कर चाहे तुम्हें कुछ भी बतलावे किंतु तुम सत्य मान लेते हो, यदि तुम्हारी यही दशा रही तो

कोई दिन में उस्ताद् लोग वेद की छाप लगा कर तुम को खड़े होकर मूतना सिखला देंगे। प्रत्येक धर्म में मूर्ख अवश्य होते हैं किंतु उसी धर्म में कुछ संख्या विद्वानों की भी होती है,यदि भूतल पर कोई ऐसा धर्म मिलता है तो वह आर्यसमाज ही है कि जिस में एक भी धार्मिक विद्वान् न हो,गिरोह का गिरोह सब मूर्ख। मूर्ख होने के कारण स्वामी जी के लिखे गपोड़े आर्यसमाज की दृष्टि में वेद धर्म हैं। हाय मूर्खता तेरा सत्यानाश होजाय तैंने आर्यसमाजियों की वह बेइज्जती की कि जिस पर आज संसार ताली देकर हंसता है।

क्या कोई आर्यसमाजी ऐसा पैदा हुआ है कि जो दयानन्द की आहुतियों के प्रमाण और संख्या को वैदिक सिद्ध करदे ? हाय हाय इस के ऊपर लेखनी उठाते समय आर्यसमाजियों के शिर में आधे शिर का दर्द शुरू होजाता है। क्या करें मूर्खलोग वेद क्या जाने,कोई भी आर्यसमाजी हमारे प्रश्नों पर लेखनी न उठावेगा ? हम को संतोष कर घर में ही बैठना पड़ेगा।

नं० (६२) सत्यार्थप्रकाश समु० ६ पृ० ३८ पं० ११ में लिखा है कि अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ।

हाय हाय स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को पशुओं से भी बदतर समझा, जो जी में आया लिख दिया और आर्यसमाजी भी इतने बहादुर निकले कि जो दयानन्द लिखदे उसी को वेद मान लेते हैं। इस स्थल पर स्वा० दयानन्द जी ने चालाकी की है उस चालाकी को जो आदमी समझ लेता है उसको स्वामी दयानन्द जी से घृणा हो जाती है और स्वा०दयानन्द जी को वेदों का परमशत्रु समझ लेता है इस मार्के की बात को पाठक ध्यान से समझें। यहां पर स्वा० दयानन्द जी ने अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध तक यज्ञ बतलाई किन्तु अग्निहोत्र की कथा तो यह है कि जिस प्रकार का अग्निहोत्र गृह्य और स्मृतियों ने लिखा था उसको तो स्वा० दयानन्द जी ने उड़ा दिया और मनगढ़न्त वेद विरुद्ध एक नया अग्निहोत्र बना कर तैयार किया। आर्यसमाजी सर्वथा मूर्ख हैं इस कारण इनको यह ज्ञान न हुआ कि यह अग्निहोत्र बनावटी मनगढ़न्त है या वैदिक यदि किसी आर्यसमाजी का दावा हो कि दयानन्द लिखित अग्निहोत्र वैदिक है तो वह कलम उठावे। कलम कौन उठावे,कोई संस्कृत ज्ञाता हो तब तो कलम उठावे, ऐसे भोले भाले आर्यसमाजियों को बनावटी अग्निहोत्र में फांस स्वा० दयानन्द जी ने वेद का भी गला घोट डाला और आर्यसमाजियों को भी नरक

में ढकेल दिया। क्यों न हो कलियुगी महर्षि ही तो ठहरे ?

रही बात यज्ञों की, यहां तो स्वामी जी यज्ञों को मानते हैं किन्तु यजुर्वेद भाष्य में यज्ञों का सफाया कर देते हैं। स्वा० दयानन्द जी ने वेद के ईसाइयत भरे वे अर्थ किये कि इन बनावटी अर्थों से वेद में एक भी यज्ञ न रहा। अब इसको समझिये "यजनाद्यजु:" यजुर्वेद में यजन यज्ञ हैं इसी से इसका नाम 'यजु:' है। यजुर्वेद के प्रथमाध्याय में दर्शपूर्णमासेष्टि, चतुर्थाध्याय में अग्निष्टोम, नवमाध्याय में वाजपेय तथा राजसूय यज्ञ, दशमाध्याय में सौत्रामणि, सोलहवें अध्याय में शतरुद्रियाग, बाईस तेईस के अध्याय में अश्वमेध, अध्याय तीस में पुरुषमेध, अध्याय बत्तीस में सर्वमेध, यज्ञों का वर्णन है किन्तु स्वा० दयानन्द जी वेद के असली अर्थ को सुनकर घबरा जाया करते थे, प्रसन्न उससे होते थे जो वेद मंत्रों में से ऐसा बनावटी अर्थ निकाले कि जिस अर्थ से ईसाई धर्म की पुष्टि हो ? ईसाई धर्म के प्रेम ने स्वा० दयानन्द जी को बाध्य कर दिया इसी कारण उन्होंने कुत्ते का अर्थ हाथी, चूहे का अर्थ बिल्ली, चन्द्रमा का अर्थ दो जोड़े जूते और सूर्य का अर्थ ऊंट इस भांति वेद के पदों के असंभव अर्थ करके यजुर्वेद से समस्त यज्ञ उड़ा दीं किन्तु हिये के अन्धे गांठ के पूरे ये आर्यसमाजी दयानन्द जी की इस मोटी चालाकी को भी न समझ सके, समझें तो वे जो शतपथ पढ़कर दयानन्द का भाष्य देखें। क्या आर्यसमाजियो भारतवर्ष में कभी यज्ञ नहीं हुईं ? यदि हुई हैं तो फिर क्या वे यज्ञ कुरान या बाइबिल से हुईं क्योंकि स्वा० दयानन्द के भाष्य देखने से तो यह मालूम होता है कि वेदों में यज्ञों का वर्णन ही नहीं है। अब सत्यार्थप्रकाश में जो स्वा० दयानन्द जी ने अग्नि होत्र से लेके अश्वमेध पर्यंत यज्ञ लिखी हैं, आर्यसमाज उन यज्ञों को किन ग्रन्थों से जानेगी ? इतने पर भी आर्यसमाजियों की आंखें नहीं खुलती ? इतनी चालाकी करने वाले को आर्यसमाज कब तक महर्षि लिखेगी अब तो चार लाख आर्यसमाजी सात जन्म धारण करें तब भी दयानन्द के भाष्य से यज्ञ नहीं निकाल सकते ? फिर स्वा० दयानन्द जी ने वेद विरुद्ध इन समस्त यज्ञों का सत्यार्थप्रकाश में जिक्र कैसे किया ? क्या कोई आर्यसमाजी ऐसा पैदा हो चुका है जो स्वा० दयानन्द के इस गपोड़े को दयानन्द के मत से वैदिक सिद्ध करदे, इस प्रश्न को आगे रखते ही आर्यसमाजियों को प्लेग घेर लेता है, क्या आर्य-प्रतिनिधि सभाओं का यह कर्तव्य नहीं है कि वे सत्यासत्य का विवेचन कर चार लाख आर्यसमाजियों को दयानन्द के बनावटी जाल से निकाल कर धार्मिक

बनावें ? वे आर्यप्रतिनिधि सभायें विवेचन का क्या साहस कर सकती हैं कि जिनके यहां समस्त चार लाख मेम्बर वैदिक ज्ञान शून्य कोरे मूसलचन्द निकलें।

नं० (६४) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ७१ पं० २४ में लिखा है कि जहां कहीं निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है।

यह लेख स्वा० दयानन्द जी ने खास आर्यसमाजियों के लिये लिखा है। आर्यसमाजियों को विद्वान् बनाने के लिये महाविद्यालय ज्वालापुर तथा कांगड़ी गुरुकुल प्रभृति अनेक संस्थायें खुलीं। इनमें आर्यसमाजी पढ़ने के लिये भी गये किन्तु इतने पर भी आर्यसमाजियों को वेद के अक्षर न आये अतएव संसार में जितने भी आर्यसमाजी हैं वे सब स्वामी जी की दृष्टि में शूद्र हैं,शाबास है आर्यसमाजियो तुमको,स्वा०दयानन्दजी ने एक बनावटी गपोड़ा तैयार करके तुमको शूद्र बनाया किन्तु तुम्हारी इतनी मोटी बुद्धि है कि तुम उसको भी न समझ सके और हम सच कहते हैं कि पढ़े तो बहुत किन्तु किसी भी आर्यसमाजी को वेद के अक्षर न आये। आर्यसमाजियो ! क्या स्वा० दयानन्द जी के इस लेख को तुम लोग सत्य समझते हो ? यदि यह लेख सच्चा है तब तो आर्यसमाजियों को अन्य पेशे छोड़ देने चाहिये और शूद्र पेशे को हाथ में लेकर अपनी आजीविका चलानी चाहिये। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि भारतवर्ष के आर्यसमाजी कल से शूद्रों के पेशे स्वीकार कर अपने को शूद्र और आर्यसमाज को शूद्र समाज लिखेंगे ? यदि आर्यसमाजी ऐसा न करेंगे तो दयानन्द पोप के लिखे हुये इस गपोड़े की पालना क्या ईसाई मुसलमान करेंगे ? हम आर्यसमाजियों की इस चालाकी को खूब जानते हैं कि आर्यसमाजी स्वामी जी को महर्षि कहते हैं और उनके लेख को वेद की आज्ञा मानते हैं किन्तु जब स्वा० दयानन्द के लेख पर आचरण करने का अवसर आता है तब ये बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजी महर्षि दयानन्द को वज्र मूर्ख सिद्ध कर आप वेदज्ञ, स्वा० दयानन्द जी के गुरु, संसार में सबसे बड़े बन बैठते हैं। कहो शूद्र समाजियो ! स्वा० दयानन्द जी ने तुमको शूद्र बनाया या नहीं ? फिर तुम दयानन्द के सिद्धान्त के विरुद्ध अपने को शर्मा-वर्मा-गुप्त कैसे लिखते हो, क्या दयानन्द का यह लेख तुम्हारी दृष्टि में चण्डूखाने की गप्प नहीं है ? मजा रहा, मुसलमानों का

मोहम्मद के लेख पर विश्वास, इसी प्रकार ईसाइयों का मशीह के लेख पर वेतकाद सनातनधर्मियों का भगवान् वेद व्यास के लेख पर विश्वास, यदि नहीं विश्वास है तो दयानन्द के लेख पर आर्यसमाजियों का विश्वास नहीं है। जरा सी हानि होने पर आर्यसमाजी दयानन्द के लेख को बूट से ठुकराते देते हैं फिर नहीं मालूम परिव्राजक-वेदज्ञाता-वेदोद्धारक-महर्षि आदि पदवियां ये स्वार्थी आर्यसमाजी स्वामी जी को क्यों देते हैं? आर्यसमाजियो! यदि सच ही स्वामी जी महर्षि हैं तब तो तुम कल से उन के लेख में बंध कर अपने आप को शूद्र लिखो और साथ ही साथ यह भी पता दो कि जिस को पढ़ने से विद्या न आवे वह शूद्र होता है यह किस वेद के किस मंत्र का सिद्धांत है। हमें विश्वास है कि हमारा प्रश्न आर्यसमाजियों को लिखा हुआ ही नहीं दीखेगा यह है दयानन्द के जाल में फंसने का फल?

नं० (१५) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ८४ पं० २६ में लिखा है कि सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जो जावे आवे प्रवेश करे वह वैश्य।

यह मजा रहा, पैर से चलने वाले समस्त आर्यसमाजी वैश्य और आर्यसमाजी ही क्या वरन् भेड़ बकरी-घोड़ा-गधा-ऊंट - हाथी-भैंस-गाय-हिरण-रोज जितने भी प्राणी पैर के बल से चलते हैं वे सब दयानन्द जी और आर्यसमाजियों की दृष्टि में वैश्य हैं। आर्यसमाजी भी वैश्य और चौपाये भी वैश्य, इन दोनों वैश्यों के यदि आपस में विवाहादिक सम्बन्ध होने लगें तो मेरी समझ में आर्यसमाज की दृष्टि में कुछ भी दोष न होगा। फिर ये चौपायों के साथ विवाहादिक सम्बन्ध क्यों नहीं करते? मालूम होता है कि स्वा० दयानन्द जी के इस लेख को आर्यसमाजी भी चण्डूखानेकी गप्प समझते हैं मजा तो यही है कि आर्यसमाज के महर्षि भी वे गपोड़े हांकते हैं कि जिनको सुनकर मूर्ख मनुष्य भी हंस पड़े, क्या ये गपोड़ों के ही महर्षि हैं, इन में इतनी भी अक्ल नहीं कि हमारे इस प्रत्यक्ष विरुद्ध असम्भव लेख को कोई कैसे मान लेगा? कोई माने या न माने आर्यसमाजी तो अपनी बुद्धि की अन्त्येष्टि कर स्वा० दयानन्द के पीछे लग ही लिये हैं इस कारण आर्यसमाजियों को तो मानना ही पड़ेगा। आर्यसमाजियो! तुम हुज्जतबाज हो, इस असंभव लेख पर क्या तुम्हारी हुज्जतों को इन्फ्लूएंजा चाट गया या लकवा मार गया। सच सो कहो तुमने इस प्रत्यक्ष विरुद्ध गपोड़े को कैसे सत्य समझा और वेद में इसका मूल कहां है? वेद का वह कौन मन्त्र है जो पैर से चलने

वाले को वैश्य बतलाता हो ? आर्यसमाजियो ! दौड़ो, दयान्द के इस असम्भव गपोड़े को वैदिक सिद्ध कर दो नहीं तो संसार की दृष्टि में तुम्हारी बुरी बेइज़्ज़ती होगी । कुछ भी कहो अब तो आर्यसमाजियों की वही दशा हो गई जैसी गरयार बैल की होती है । गरयार बैल को चाहे कोई कितने भी आरे मारे किंतु वह हजरत आगे को कदम नहीं उठाता । आर्यसमाजियों को कोई कुछ भी कहे, चाहे संसार में इनकी बेइज़्ज़ती हो जाय किन्तु अब इनके हाथ से कलम उठेगी नहीं ।

नं० (६६) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६० पं० २५ में लिखा है कि पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें । पुरुष वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें ।

यहां पर तो स्वामी जी मजा कर गये, चटरोटी पट दाल, इधर विवाह की विधि समाप्त हुई कि फौरन·····और फिर तुरंत ही स्थापन और आकर्षण, यह खैंचा तानी । यहां पर प्रत्येक गृहस्थ को स्वामी दयानन्द जी ने कंजर बना दिया । बरात का लिहाज नहीं लड़की वाले के आये हुये रिश्तेदार जो उसी घर में ठहरे हैं उनकी शर्म नहीं,तत्काल जुट जाने से मतलब है । वाह स्वामीजी वाह हो रंगीले, लेख तुम्हारे बड़े मजे के हैं किंतु शोक इतना है कि आर्यसमाज तुम्हारे इन लेखों को मोटे प्रेप के गपोड़े समझते हैं । आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने तुम्हारे इस वैदिक धर्म का पालन नहीं किया, ये आपके महर्षि, परिव्राट्-वेदोद्धारक कहते ज़रूर हैं किन्तु तुम्हारे बतलाये इस वैदिक धर्म से नौ कौस दूर भाग जाते हैं । हम यहां पर आर्यसमाजियों से केवल इतना पूछते हैं कि स्वा० दयानन्द जी के कहे इस वैदिक धर्म का पालन आर्यसमाजी तो करेंगे नहीं,तो क्या ईसाई-मुसलमान करेंगे ? आर्यसमाजियो ! तुम्हें लज्जा आनी चाहिये, तुम अपने मन में स्वा० दयानन्द जी के लेख को गपोड़ा समझते हो और संसार को वैदिक धर्म बतलाते हो क्या किसी आर्यसमाजी में ईश्वर ने यह शक्ति दी है कि स्वामी दयानन्द के ऊपर लिखे गपोड़े का वैदिक सिद्ध करदे ? हमें तो भूतल पर ऐसा आर्यसमाजी नहीं दीखता जो लेखनी उठाकर उत्तर लिखने का साहस करे, इतने पर भी आर्यसमाजी दयानन्द के मत को सत्य बतलाते हैं यह आश्चर्य है ।

नं० (६७) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६७ में लिखा है कि "जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा"।

मिल गया न वेद का असली अभिप्राय ? भला बुरा जो दयानन्द के मन में समाजाय वह आर्यसमाजियों का वेद ? सच बतलाओ आर्यमाजियो ! क्या किसी वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन, वेदाङ्ग, पुराण, इतिहास, काव्य, कोष, चम्पू, ज्योतिष वैद्यक प्रभृति किसी ग्रन्थ में यह लिखा है कि 'जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के जानने वाले हों ,उनका नाम ब्रह्मा'? किसी ग्रंथ में नहीं लिखा। हमको अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि वैदिक साहित्य का पढ़ना छोड़ कर मूर्ख बने आर्यसमाजी दयानन्द के जाल में ऐसे फंस जाते हैं जैसे कि दानों के लोभ से बन्दर फंस जाय।

नं० (६८) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६१६ स्वमन्तव्यामन्तव्य संख्या २ में ब्रह्मा को ऋषि लिखा है।

यह लेख आर्यसमाजियों की बुद्धि पर जहालत का पर्दा डालने के लिये लिखा गया है। क्या सच ही ब्रह्मा ऋषि था ? यदि ऋषि था तो फिर ब्रह्मा के बाप का नाम क्या था ? और ब्रह्मा के कितने भाई थे ? एवं उस ब्रह्मा के कितने लड़के हुये ? सच तो यह है कि आर्यसमाजी दयानन्द की कान पकड़ी बकरी हैं जो दयानन्द लिखेंगे उसी को ये वेद मानेंगे ? किन्तु आर्यसमाज में आजतक कोई पवित्र माता ऐसी पैदा नहीं हुई कि जिसकी कोख से निकला हुआ लड़का दयानन्द के स्वार्थ से लिखे गये लेखों को वेदानुकूल सिद्ध कर देता ?

गुरुभक्ति

नं० (६९) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३३५ में लिखा है कि जो गुरु लोभी-क्रोधी-मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य-पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं।

आर्यसमाजियों को जो स्वामी जी ने गुरुभक्ति सिखलाई है वह सभी मजहबों से विलक्षण है। यहां अर्घ्य पाद्य के अर्थ लात जूता हैं। हमें आशा है कि महर्षि की इस आज्ञा का पालन समस्त ही आर्यसमाजी करेंगे।

ऐसामनुष्य कोई लाखों में एक निकलेगा कि जिसमें काम-क्रोध लोभ मोह

से से एक भी न हो । स्वामी जी में भी ये बातें पाई जाती हैं, स्वामी जी की कामना बड़ी प्रबल थी मरने के बाद भी उनका कई सहस्र रुपया बंक से जमा निकला, क्रोध इनमें इतना था कि इनके पास एसोरवा नहीं ठहर सकता था, मुंशी इन्द्रमणि आदि जितनों से मित्रता हुई क्रोध के कारण अन्त में सब से बिगड़ी । सत्यार्थप्रकाश ही देख लीजिये 'तुम होते ही क्यों न मर गये गर्भ क्यों नहीं गिर गया' ये शब्द स्वामी जी के क्रोध को लिख कर रहे हैं । लोभ इतना था कि सीधे में मिला हुआ आटा दाल तक बेच कर दाम गांठ में बांध लेते थे जिसको देखना हो इस विषय में वेद व्याख्याता पं० भीमसेन का लिखा हुआ 'हमारा स्वामी दयानन्द जी के साथ सहवास' नामक लेख ब्राह्मणसर्वस्व' में देखले । मोह ऐसा था कि आप ही लिख कर भूल जाते थे, कहीं कुछ और कहीं कुछ । सत्यार्थप्रकाश के 'प्रामाण्याप्रामाण्य विषय' में तो लिखा कि हम वेदानुकूल मनुस्मृति को मानते हैं और नियोग में "प्रोषितो धर्मकार्यार्थं" इस श्लोक को जो वेदानुकूल नहीं है प्रमाण मान लिया । जब आप ही इन दुर्गुणों से नहीं बचे तो शेष आर्यसमाजी कैसे बचेंगे ? आई कम्बख्ती उन आर्यसमाजियों की जो आर्यसमाजियों के गुरु बने बैठे हैं ॥ ये कैसी बातें हैं, ऐसी २ बातें लिखने वाले ही महर्षि होते हैं ? क्या आर्यसमाजी लोग यहां कुछ विचार करेंगे ? करें या न करें ? न हम कभी आर्यसमाजी रहे, न हमने आर्यसमाजियों को चेला बनाया और न हमको कोई इस आपत्ति का डर ? इस लेख से भय भीत हों तो वे हों जो आर्यसमाजियों को पढ़ाते हैं । आर्यसमाजी यह भी पता लगावें कि यह गुरुभक्ति कौन वेद मन्त्र का अनुवाद है क्योंकि आर्यसमाजियों की दृष्टि में स्वामी जी ने जो कुछ भी लिखा है वह सब वेदानुकूल लिखा है तो यह गुरुभक्ति किस वेद मन्त्र के अनुकूल है यह लिख कर संसार को समझाना यह कर्तव्य आर्यसमाजियों का है ।

* भोजन *

नं० (७०)　सत्यार्थप्रकाश पृ० २७२ में लिखा है कि यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त करदें (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंकदें ? (उत्तर) चाहें फेंकदें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है ।

मनुष्य का मांस मनुष्य खाले तो संसार की कोई हानि नहीं । ठीक है, यह भोजन आर्यसमाजियों को मुबारक हो । पूछना यह है कि जो आर्यसमाजी यह कहते हैं कि स्वा० दयानन्द जी का जितना लेख है वह सब वेदानुकूल है तो यह लेख किस वेद के किस मन्त्र के आधार पर लिखा गया है इसका पता आर्यसमाजियों को छापना चाहिये ।

नं० (७१) सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में स्वामी दयानन्द जी ने जल पृथ्वी,राहु,केतु,शनिश्चर,चन्द्रमा प्रभृति ईश्वर के फर्जी नाम लिखे हैं । निघंटु, निरुक्त,समस्त कोष एवं समस्त संस्कृत के साहित्य में ऐसे बेबुनियाद ईश्वर के नाम कहीं नहीं आते स्वामी जी ने फर्जी नाम लिख कर आर्यसमाजियों को धोखा दिया है-यह स्वामी जी ने पाप कमाया है ।

कई एक आर्यसमाजी यह कह दिया करते हैं कि व्युत्पत्तियां तो लिखी हैं ? ऐसी फ़र्जी मनमानी ऊंट को मछली और मछली को हेडमास्टर बना देने वाली व्युत्पत्तियों में भी कुछ सार होता है ? जैसी व्युत्पत्तियां स्वामीजी ने लिखी हैं वैसी दो चार व्युत्पत्तियां यहां पर हम लिखते हैं । 'गृह्णाति धान्यादिकं गृहम्' ईश्वर सब धान्यादि को अपने बस में किये है इस से उस ईश्वर का नाम 'घर' है । 'कायासु तिष्ठतीति कायस्थः, ईश्वर जड़ चैतन्य सभी के शरीर में व्याप्त है इस से ईश्वर का नाम 'कायस्थ' है 'दयया आनन्दयतीति दयानन्दः ईश्वर अपनी दया से सब को आनन्द देता है इस से उस परमात्मा का नाम 'दयानन्द, है । 'सत्यस्य अर्थस्य प्रकाशो भवति यस्मात्सः सत्यार्थप्रकाशः, ईश्वर वेद के द्वारा सत्य अर्थ को प्रकाशित करता है इस से उसका नाम 'सत्यार्थप्रकाश' है । 'आर्याणांसमाजः समूहो यत्र स आर्यसमाज.'सर्वत्र व्यापक होने से श्रेष्ठ पुरुषों का समुदाय ईश्वर में ही रहता है इस से उसका नाम 'आर्यसमाज' है ।

हमारी व्युत्पत्ति को व्युत्पत्ति के कायदे से कोई अशुद्ध नहीं कह सकता बस सिद्ध हुआ कि दयानन्द ,सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज ये तीनों नाम ईश्वर के हैं अतएव संसार में न कोई दयानन्द हुआ और न कोई सत्यार्थप्रकाश नाम की किताब है एवं न ही आर्यसमाज नामक कोई सोसाइटी बनी, तीनों ही ढोंग और मिथ्या हैं ।

कहो आर्यसमाजियो ! व्युत्पत्ति के मज़े देख लिये ? किन्तु तुम को क्या ? तुमको दयानन्द के धोखे पहिचानने की क्या ज़रूरत ? तुम्हारा तो इतना ही शौक

है कि स्वामी जी को महर्षि कहें और उनके मत को वेद कहते रहें,बाकी कर्तव्यों में दियासलाई लग जाय एवं वेद पर वज्रपात हो जाय , जाने तुम्हारी बलाय ।

यदि इस प्रकार के स्वा० दयानन्द के धोखा देने वाले उन के ग्रंथों से लेख छांटे जावें तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन जाय। किंतु इस से कुछ काम नहीं चलेगा ,विचारशील इन्हीं लेखों से सत्यासत्य का निर्णय कर लेंगे और आर्यसमाजियों के लिये एक पुस्तक तो क्या नौ लाख पुस्तक भी लिख दी जावें तब भी ये विचार नहीं करेंगे क्योंकि हठ बांध बैठे हैं कि हम को वेद मानना ही नहीं , हम तो स्वामी जी के लेख को ही वेद मानेंगे ? ऐसे मनुष्यों के लिये लिखना पढ़ना निष्प्रयोजन नहीं तो और क्या है ?

आर्यसमाज के प्रेसिपल, प्रोफेसर, लीडर, प्लीडर, मिस्टर, मास्टर, उपदेशक, उपदेशिकायें, समस्त आर्यसमाजें तथाप्रतिनिधिसभायें इकट्ठी होकर विचार करें तब भी तो ऊपर के लेख जो स्वामी जी ने लिखे हैं,और हम ने यहां दिखलाये हैं वे वेदाज्ञायें सिद्ध नहीं होतें। यही मानना पड़ेगा कि दयानन्द आर्यसमाजियों को धोखे में फांस वैदिक धर्म से गिरा रहे हैं ।

वेदानुकूलता

स्वा० दयानन्द जी इतना गहरा धोखा देते हैं कि अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़े हुये लोगों की तो कौन कहे प्रायः संस्कृत पढ़े हुये मनुष्य भी इन के धोखे में फंस कर अपने विचार से हाथ धो बैठते हैं। यद्यपि स्वामी जी ने संसार को धोखा देने के अनेक मार्ग निकाले हैं तोभी वेदानुकूलता इन सब में प्रबल है।

आज तक आर्यसमाजियों को यह पता न चला कि वेदानुकूलता किसी चिड़िया का नाम है या कोई खूंख्वार जानवर है। यह कोई , चीज ही नहीं, आर्यसमाजियों की विचार बुद्धि को नष्ट कर देने के लिये यह एक जहरीला परदा है ।

समझिये,जो विधि या निषेध वेद में आया हो ,वही अन्य ग्रन्थ में आजावे क्या इस का नाम वेदानुकूलता है ? यदि ऐसा है तब तो वेदानुकूलता की आवश्यकता ही नहीं। कल्पना करो कि वेद में ईश्वर को निराकार लिखा है और मनु ने भी ईश्वर को निराकार ही लिखा तो फिर मनु के मानने की

आवश्यकता ही क्या रही ? ईश्वर निराकार है इस बात को तो वेद ही सिद्ध कर गया, ऐसी दशा में मनु का मानना अनावश्यक और वेदानुकूलता का डिम डिम पीटना निष्फल है । यदि हम यह मानलें कि जिस कार्य का वेद ने निषेध नहीं किया और अन्य ग्रन्थ ने उस कार्य के करने की आज्ञा दी है इस का नाम वेदानुकूलता है ? ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष आजावेगा । वेद में जिन का निषेध नहीं और दूसरे ग्रन्थों में विधान है वे सब कार्य वेदानुकूल कहलावेंगे । इस लक्षण से आर्यसमाजियों को रोजे रख कर निवाज पढ़नी होगी , मसीह को ईश्वर का पुत्र मान गिर्जा में जाना होगा, जैनियों के तिर्थंकरों की मूर्तियां पूजनी होगी और पुराणों को सत्य मानना तथा जिन्दावस्था से अग्नि का पूजन करना होगा क्यों कि इन सब कार्यों का निषेध वेद में नहीं है फिर वेदानुकूलता कहते किस को हैं ?

इस वेदानुकूलता पर आर्यसमाजियों में भी विवाद उठता रहा है । (१) सम्वत् १९२८ में जब प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश लिखा जाता था उस समय स्वामी तथा पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त तीन ही महानुभाव थे, यहां यही झगड़ा उठा जो हमने ऊपर लिखा है । पं० भीमसेन जी और पं० ज्वालादत्त जी दोनों मिलकर वेदानुकूलता को निष्प्रयोजन सिद्ध करते थे और स्वामी जी कहते थे कि यह काम की चीज है । खूब विवाद हुआ,अन्त में स्वामीजी हार गये और इन दोनों पंडितों के पक्ष का विजय हुआ । फिर स्वामीजी ने कहा कि अब लिखा रहने दो, ऐसी शास्त्रीय वारीक व्यवस्थाओं को कौन समझता है । (२) सम्वत् १९३६ के कुंभ पर इसी विवाद को मुन्शी इन्द्रमणि जी ने उठाया, स्वा० जी ने कहा कि तुम फार्सी के विद्वान् हो इन संस्कृत की बातों को क्या समझो ? इसके ऊपर मुन्शी जी ने दोनों दोष स्वामी जी के आगे रख दिये,स्वामी जी को कोई जवाब नहीं आया, कुछ देर चुप रहे फिर हंसकर बोले कि यदि ग़लत है तो ग़लत ही सही, अब तो वह छप गया । (३) इसी विवाद को संयुक्त-प्रान्त आर्य प्रतिनिधिसभा के सभापति पुवायां नरेश ने पं० भीमसेन जी के आगे सम्वत् १९५१ में रक्खा । पण्डित जी ने जवाब दिया कि हमने तो यह बात तब ही कही थी जब सत्यार्थप्रकाश लिखा जाता था किन्तु स्वामी जी ने माना ही नहीं । (४) सम्वत् १९५३ में अलीगढ़ में यही विवाद स्वामी ईश्वरानन्द जी ने स्वामी पं० तुलसीराम जी के आगे रक्खा और दोनों दोष समझाये

तुलसीराम जी ने यह कहा कि बड़ों की बात बड़े ही जानें, नहीं मालूम इस निष्प्रयोजन लेख को स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिखा ? उस समय हम भी मौजूद थे, हमने पण्डित जी से कहा कि यदि यह निष्प्रयोजन है तो सत्यार्थप्रकाश से निकलवा दीजिये ? पण्डित जी बोले हां-यह ठीक है निकलवा दिया जावेगा । (५) हमने भी इस प्रश्न को बेहटरकलां में पं० नन्दकिशोर देव जी के आगे रक्खा, पण्डित जी ने उत्तर दिया कि लिखें स्वामी दयानन्द और बतलाऊं मैं ? मुझे क्या मालूम किस प्रयोजन से लिखा गया ? (६) जब रामाश्रय हमें मिलने के लिये अमरोधा आये तब हमने पूछा कि आप आर्यसमाज के अच्छे उपदेशकों में गिने जाते हैं, आप यह बतलावें कि वेदानुकूलता सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिखी गई ? पंडित जी ने उत्तर दिया कि संसार को अन्धा बनाने के लिये ? (७) यही बात कौच से लौटते हुये स्वा० दर्शनानन्द जी से हमने चौंदह के स्टेशन पर पूछी ? स्वामी जी ने जवाब दिया कि सत्यार्थप्रकाश में ऐसी ऐसी पन्द्रह सौ अशुद्धियां हैं उन अशुद्धियों की मैंने फेहरिस्त बनाई, परोपकारिणी सभा को भेजी, संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब की प्रतिनिधियों में पेश की इतने पर भी सत्यार्थप्रकाश शुद्ध नहीं किया जाता ? ला०मुन्शीराम के मारे किसी विद्वान् की बात नहीं सुनी जाती वे कहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है तो बना रहने दो, बार बार काट छांट करने से आर्यसमाज की निन्दा होती है ।

परीक्षा के लिये आज तुम किसी आर्योपदेशक के आगे रक्खो कि वेदानुकूलता तो व्यर्थ है । उपदेशक झूठ बोलेगा, चालबाज़ियां चलेगा, धोखा देगा, क्रोधित हो जावेगा किन्तु जवाब नहीं दे सकेगा ? यदि तुम उत्तर मांगने पर ही आग्रह कर बैठोगे तो या तो यह कह देगा कि इस विषय में हम कुछ नहीं जानते या बिस्तर बांध कर चल देगा ?

स्वामी जी ने रात को दिन और दिन को रात, झूठ को सच और सच को झूठ, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बनाने के लिये एवं संसार को धोखा देकर अपने जाल में फांसने के हेतु सत्यार्थप्रकाश में वेदानुकूलता का जाल बिछाया है ।

नं० (७२) यह वेदानुकूलता दो प्रकार की है (१) वेद मंत्र के अर्थ को हुज्जतबाजी से उड़ा और उसकी पुष्टि करने वाले प्रमाण को वेद विरुद्ध कह वेद के नाम से एक झूठा सिद्धान्त आर्यसमाज के आगे रखना कि जिसका वेद

में पता न हो और उस फ़र्ज़ी सिद्धान्त को वेद बतलाना यह तो स्वामी दयानन्द जी की वैदिकता है और किसी प्रमाण को उठाकर उसमें से आधा छोड़ देना एवं आधे का मिथ्या अर्थ वैसा ही बना देना जैसा कि उन्होंने फ़र्ज़ी वेद सिद्धान्त बनाया है यह स्वामी दयानन्द जी की सर्वोपरि वेदानुकूलता है।

इसका उदाहरण इस प्रकार है कि वेद ने 'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद्' इस मंत्र से यह बतलाया कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र क्रम से विराट् के मुख बाहु-ऊरु-पद से उत्पन्न हुये। इस वेद मंत्र का तो स्वामी जी ने मज़ाक कर डाला कि यह बात गलत है, ब्राह्मण मुख से पैदा होते तो गोल २ होते और जमीन पर लुढ़कते फिरते और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुये होते तो लम्बे २ चौड़ कैसे लट्ठ बनते इसी प्रकार यदि वैश्यों की उत्पत्ति ऊरु से होती तो ऊपर से मोटे, नीचे से पतले चिकने चुपड़े, साफ साफ शरीर वाले बनते, शूद्र पैरों से पैदा हुये होते तो आगे से चौड़े और फटे हुये एवं पीछे से सिकुड़े हुये गांठो वाले बन जाते ऐसा दुनियां में दिखलाई नहीं देता इस कारण मुखादि अंगो से ब्राह्मणादि वर्णों का पैदा होना यह वेदार्थ गलत है। इस मंत्र के पूरे अभिप्राय को स्पष्ट करने वाला 'लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं' जो मनु का श्लोक था उसको स्वामी जी ने वेद विरुद्ध बतलाया- इस चालाकी से वेद के असली भाव का मटियामेट कर स्वामी जी ने कहा कि वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं-गुण, कर्म, स्वभाव से होती है। गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था किसी भी वेद-धर्म शास्त्र-दर्शन में नहीं लिखी किन्तु ईसाइयों में ऐसा होता है इस कारण ईसाई सिद्धान्त को स्वा०दयानन्द जी ने वैदिक बतलाया आर्यसमाजी भी यह बात जानते हैं कि गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था मानना वेदों को संसार से विदा करने तथा संसार को धोखा देने लिये के निरी बेईमानी है तो भी दयानन्द झूठे सिद्ध हो जावेंगे और हमारी नाक कट जावेगी इस भय से बेईमानी से कहते हैं कि वेद में गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था है। गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था होती है इसमें एक भी प्रमाण वेद-धर्मशास्त्र-दर्शन-वेदाङ्ग का स्वामी जी नहीं देसके किन्तु आर्यसमाजियों के लिये यह सिद्ध कर दिया कि ईश्वर और महर्षि ये सब बेवकूफ थे मैं ईश्वर से बहुत बड़ा विद्वान हूँ इस कारण वेदादि सच्छास्त्र में गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं तो न सही मेरे हुक्म से मानो। जब शास्त्रार्थ में आर्यसमाजियों से यह कहा जाता है कि गुण-कर्म-स्वभाव की वर्णव्यवस्था में प्रमाण दो तब आर्यसमाज का दिवाला निकल जाता है और समाजी पंडित बेहोश होकर अनाप सनाप बकता है, इसकी

पुष्टि में आज तक संस्कृत साहित्य में न कोई प्रमाण मिला है न आगे को मिलेगा किन्तु भारतवर्ष को ईसाई बनाने वाले आर्यसमाजी इसको अब भी वैदिक मानते हैं।

कुरारा में जब शास्त्रार्थ का समय आया तो एक दिन पहिले पं० प्रयागदत्त अवस्थी, पं० रामचन्द्र जी आर्यसमाजी, पं० बसन्तलाल प्रभृति समस्त पण्डित हमसे मिलने आये। हमने सबको बिठलाया बात चीत होने लगी। अवस्थीजी ने कहा शास्त्री जी! आपने शास्त्रार्थ का चेलेंज बहुत बुरा दिया, आपके चेलेंज में यह विषय है कि "दयानन्द मत वेद विरोधी है" इस विषय पर हम कैसे शास्त्रार्थ कर सकेंगे ? आप अवतार-मूर्तिपूजा-श्राद्ध-वर्णव्यवस्था इन चार विषयों में से किसी पर शास्त्रार्थ करलें, हमने कहा अच्छा वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ हो जावेगा किन्तु शास्त्रार्थ के आरम्भ में हाथ में वेद लेकर आपको यह कहना होगा कि यदि हम गुण-कर्म-स्वभाव की वर्णव्यवस्था में वेद-धर्मशास्त्र-छः दर्शन और वेदों के छः अंगों में से एक का भी प्रमाण न दे सकेंगे तो शास्त्रार्थ के अन्त में अपने हाथ से अपना नाक काट डालेंगे एवं हम भी शास्त्रार्थ के आरम्भ में यह प्रण करेंगे कि ऊपर लिखे ग्रन्थों का कोई एक भी प्रमाण आर्यसमाज गुण-कर्म-स्वभाव की व्यवस्था का पेश करदे तो हम सभा में अपना नाक काट डालेंगे।

इसको सुन कर अवस्थी जी ने कहा शास्त्री जी! इसमें तो नाक ही अधिक कटा, शास्त्रार्थ तो उसी विषय का रहा। गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था में कोई प्रमाण ही नहीं फिर हम देंगे कहां से ? बस स्वामी जी की वर्णव्यवस्था ही वेद विरुद्ध सिद्ध हो जावेगी ?

आर्यसमाज के जितने भी पण्डित हैं वे सब जानते हैं कि गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था का विधान न श्रुति में है न स्मृति में, न दर्शनों में न वेदों के अंगों में, न पुराण में और न इतिहास में, ईसाई ऐसा मानते हैं, ईसाइयों का सिद्धान्त भारतवर्ष में चलाने के लिये स्वामी जी ने यह झूठ लिखा है कि गुण-कर्म-स्वभाव से वेद में वर्णव्यवस्था का विधान है तो भी पापी पेट के भरने के लिये उपदेशक यही कहते हैं कि गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था वेद ने मानी है।

आपने देख लिया कि किस प्रकार 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्' के अभिप्राय

को हुज्जत से उड़ाया और इस मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट करने वाले "लोकानांतु विवृद्ध्यर्थं" मनु के श्लोक को वेद विरुद्ध बतलाया एवं जिसका किसी भी संस्कृत के ग्रन्थ में पता नहीं ऐसे सिद्धान्त गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था को लट्ठ के जोर से वैदिक बना दिया। इसकी पुष्टि में—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

मनु० १० । ६५

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान, गुण-कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य हो जाय। वैसे ही जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हो तो वह शूद्र हो जाय। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण-ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे।

जब हम पूछते हैं कि 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' यह श्लोक दयानन्द जी ने माना कैसे ? दयानन्द के मत में तो चारों वेद ही प्रमाण हैं ? तब आर्यसमाजी कहते हैं कि 'शूद्रोब्राह्मणतामेति' यह श्लोक वेदानुकूल है। वेदानुकूल मनु को स्वामी जी प्रमाण मानते हैं। बस इस कथन पर आर्यसमाजी उछलने लगते हैं कि ठीक तो उत्तर होगया। हमारी समझ में आता है कि स्वा० दयानन्द जी ने जो जाल बना कर इस श्लोक को वेदानुकूल बतलाया है उसका भी भण्डाफोड़ करदें जिससे दयानन्द के बनाये हुये जाल के टुकड़े २ हो जावें और फिर आर्यसमाजी घर में घुस कर गला फाड़ २ कर रोवें ?

मनु जी ने यहां पर "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह अकेला श्लोक नहीं लिखा वरन् दो श्लोक लिखे हैं। इन दोनों का अन्वय (अर्थ) इकट्ठा होता है। जहां दो श्लोकों का अर्थ इकट्ठा किया जाता है वहां पर श्लोक युग्म बोलते हैं। इस युग्म श्लोक में से स्वा० दयानन्द जी ने एक श्लोक तो चुरा लिया और एक पबलिक के आगे रख दिया। आगे रक्खे जानेवाले 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' इस श्लोक के अर्थ में गुण-कर्म-स्वभाव दयानन्द ने अपनी तरफ से मिलाया, पाठक इसको देखें।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।

अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६५॥

मनु० अ० १०

शूद्रा में ब्राह्मण से जो सन्तान पैदा हो वह पारशवाख्य वर्ण होता है । यदि वह कन्या हो और उसको ब्राह्मण विवाहे फिर उसके भी कन्या हो इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाय तथा उसका ब्राह्मण से सम्बन्ध होता जाय तो पारशव वर्ण में जो शूद्रत्व है उसका नाश होकर सप्तम कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जायगी, इसी प्रकार 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' शूद्रवर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है । यदि शूद्रा में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उसका सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में ब्राह्मणत्व का नाश हो जायगा और वह ब्राह्मण-वीर्य शूद्रता को प्राप्त हो जायगा, ऐसे 'ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्' ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा । इसी प्रकार शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्तम पीढ़ी तक यदि उसका सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी । यदि शूद्रा स्त्री में क्षत्रिय से लड़का हुआ हो और उसका सम्बन्ध बराबर शूद्रों से होता जाय तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा, ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र होता है । इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उसका संबंध बराबर सातपीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में वह वणिक् कन्या होगी । वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जावेगा इस प्रकार वैश्य शूद्र और शूद्र वैश्य बनेगा ।

कोई कोई धर्मशास्त्र का यह कथन है कि ब्राह्मण सात पीढ़ी में होता है और क्षत्रिय छः तथा वैश्य पांच में । इस प्रकार की व्यवस्था तब ही होगी जब स्त्री हीन वर्ण की और पुरुष उत्तम वर्ण का होगा ।

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥९६॥

याज्ञ० वर्णजाति, प्र०

मूर्द्धावसिक्तादि पुरुषों का जात्युत्कर्ष अर्थात् ठीक ठीक अपने पिता के वर्ण में आजाना पांचवीं छठी वा सातवीं पीढ़ी में ऐसे हो सकता है कि जब आगे

आगे मूर्द्धावसिक्त के वंश में उत्पन्न होने वाली कन्याओं का विवाह शुद्ध ब्राह्मणों के साथ पांच छः वा सात पीढ़ी तक होता जावे तो आगे आगे शुद्ध ब्राह्मण उत्पन्न होने लगेंगे। विपरीत करने से ब्राह्मणत्व का नाश होकर जिस वर्ण से सम्बन्ध करेंगे उसी वर्ण को प्राप्त होंगे।

कुल्लूकभट्ट प्रभृति जितने भी मनुस्मृति के संस्कृत टीकाकार हैं उन सबने यही अर्थ किया है। इन श्लोकों पर वृद्ध व्याख्यान भी है उसका भी यही अर्थ होता है। भाषा के टीकाकार भी यही अर्थ करते हैं; किन्तु स्वा० दयानन्द जी प्रथम तो एक श्लोक को ही छिपा जाते हैं फिर श्लोक में जिस गुण-कर्म-स्वभाव का पता भी नहीं, श्लोक के टीका में अपने मन में धंसे हुये गुण-कर्म-स्वभाव को ठूंस कर श्लोक की वेदानुकूलता सिद्ध करते हैं।

कहो आर्यसमाजियो! तुम सच बतलाओ 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्' इस मंत्र से ब्राह्मणादिक वर्णों की विराट् के अंगों से उत्पत्ति नहीं है? तुम यह भी बतलाओ कि 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्', इस वेद मंत्र के अर्थ को स्पष्ट करने वाला 'लोकानान्तु विवृद्धयर्थं' यह मनु का श्लोक वेद विरुद्ध है? तुम्हें यह धर्म से बतलाना होगा कि गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था का होना किसी शास्त्र से सिद्ध है या दयानन्द का निर्माण किया ताजा गपोड़ा है? तुम यह भी बतलाओ कि 'शूद्रायां' इत्यादि मनु के दो श्लोकों में से क्या एक श्लोक की चोरी स्वा० दयानन्द जी ने नहीं की? तुम को यह भी बतलाना होगा कि 'शूद्रोब्राह्मणतामेति' यह श्लोक क्या वेदानुकूल है? यदि है तो वेद का वह कौन मंत्र है जिस के यह अनुकूल हो गया?

क्या तुम को यह नहीं सूझता कि स्वा० दयानन्द जी संसार को धोखा देने एवं आर्यसमाजियों की आंखों में लाल मिर्च भर देने के अर्थ क्या २ अनुचित कार्य कर रहे हैं और ऐसे अनुचित कार्य करने वाले को जो तुम वेदज्ञाता, योगी, महर्षि कहते हो क्या तुम्हारे जैसा निर्लज्ज मनुष्य संसार में कोई दूसरा होसकता है? क्या तुम को इस बुरे कर्म का फल ईश्वर न देगा? क्या तुम ईश्वर को भी धोखा दे लोगे? याद रक्खो दिन की रात और रात का दिन बनाने के लिये तुम को धोखे के जाल में फांसने के वास्ते स्वा० दयानन्द ने यह वेदानुकूलता का अड़ंगा लगाया है? क्या तुम मूर्खता के कारण दयानन्द के इस जाल में नहीं फंसे? यदि कोई लिखा पढ़ा जीवित आर्यसमाजी संसार में हो तो इसका उत्तर दे। हमें विश्वास है कि इस मूर्ख समुदाय का

एक भी मनुष्य लेखनी नहीं उठावेगा।

(२) जो श्लोक स्वामी जी देना चाहते हैं उस को वेदानुकूल कह देते हैं और जब कोई दूसरा मनुष्य किसी प्रमाण को पेश करता है तो उसको वेद-विरुद्ध कह देते हैं यह अन्याय स्वामी जी ने वेदानुकूलता से मचाया है। आप लिखते हैं कि

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५

मनु० अ० ५

जब गुरू का प्राणांत हो तब मृतक शरीर जिस का नाम प्रेत है उस का दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक शरीर को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है।

वेद में पितृमेध का तो विधान है किन्तु मरे हुये को दाग देने वाला और उस के साथ जाने वाले दश दिन में शुद्ध होते हैं यह कहीं भी नहीं लिखा क्यों कि शुद्धि का विषय ही वेद में नहीं है। स्वा० दयानन्द जी ने अपने मन की जबर्दस्ती से इस श्लोक को वेदानुकूल माना, अब आप बतलावें कि यह वेदानुकूलता है या संसार की आंखों में धूल झोंकना!? मनुस्मृति के इसी अध्याय में लिखा है कि

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥८३

मनु० अ० ५

ब्राह्मण दश दिन और क्षत्रिय बारह दिन एवं वैश्य पन्द्रह दिन तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।

मनु ने 'गुरोः प्रेतस्य' इस श्लोक में बतलाया था कि जिस कुटुम्ब में मृतक का अग्नि संस्कार हुआ है वह दश दिन में शुद्ध होता है। मनु का यह कथन केवल ब्राह्मण जाति के लिये था। फिर मनु को यह सन्देह हुआ कि संसार चारों वर्णों की शुद्धि दश दिन में न मान बैठे इस कारण फिर 'शुद्ध्येद्विप्रो' इस श्लोक में विवरण किया कि ब्राह्मण दश, क्षत्रिय बारह, वैश्य पन्द्रह दिन और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है। स्वामी जी ने यहां पर 'गुरोःप्रेतस्य' इस को अपनी जबरदस्ती से वेदानुकूल और 'शुद्ध्येद्विप्रो' इस श्लोक को

वेद विरुद्ध माना । वेद विरुद्ध मानने का कारण केवल इतना है कि इस श्लोक से जाति भेद बना रहता है और स्वामी जी जाति भेद रखना नहीं चाहते इस कारण वेद विरुद्ध ठहराते हैं । अब पाठक बतलावें कि स्वा० दयानन्द जी का यह धर्म निर्णय है या स्वार्थ सिद्धि?

आर्यसमाज में ऐसा कोई मनुष्य न पैदा हुआ है, न आगे को हो सकता है जो 'गुरोःप्रेतस्य' इस श्लोक की वेदानुकूलता और 'शुद्धयेद्विप्रो' इस का वेद विरोध सिद्ध करदे ? तो भी आर्यसमाज धर्मशास्त्र की आज्ञा छोड़ दोनों आंखें बन्द कर दयानन्द के जाल में फंस रही है । यदि ये आर्यसमाजी मनुस्मृति को पढ़ते तो इस प्रकार दयानन्द के धर्म कर्म मिटा देने वाले बनावटी जाल में न फंसते ? मेरे प्यारे आर्यसमाजी भाइयो ! तुम चार लाख मिलकर भी पहिले श्लोक की वेदानुकूलता और दूसरे श्लोक का वेद विरोधत्व सिद्ध नहीं कर सकते, फिर भी तुम जान बूझ कर दयानन्द जी के जाल में फंसते हो क्या, इस में अविद्या को छोड़ कर कोई दूसरा कारण है ? हो तो बतलाओ, नहीं तो याद रक्खो तुम को स्वामी जी की इस चालाकी पर पण्डितों के सामने सर्वदा नीचा देखना पड़ेगा ।

सत्यार्थप्रकाश में वेद से न मिलने वाले एक दो प्रमाणों को ही वेदानुकूल नहीं सिद्ध किया वरन् इतने प्रमाण वेदानुकूल समझ कर सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं कि यदि हम उन सबको यहां उद्धृत करें तो सत्यार्थप्रकाश से बड़ा एक पोथा बन जावेगा, इस भय से हम सभी प्रमाणों को तो यहां नहीं लिखेंगे किन्तु स्वा० दयानन्द जी के दिये हुये धोखे का भण्डाफोड़ करने के लिये कुछ प्रमाण अवश्य लिखेंगे जिनको देखकर धार्मिक मनुष्य के नेत्रों से रुधिर के आंसू बह उठेंगे । पाठक उन प्रमाणों को ध्यान से पढ़ें ।

नं० (७३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३० में लिखा है कि—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥

मनु० ६ । ४६

नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान के जल पीवे, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे ।

वेदानुकूलता का दावा करके यह श्लोक स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा । अब इसकी वेदानुकूलता सिद्ध करिये । वेद में न तो कहीं

यह लिखा कि तुम देखकर चलो और न यही लिखा कि जल को कपड़े से छान कर पियो ? जिस मंत्र भाग को स्वा० दयानन्द जी वेद मानते हैं उसमें यह भी विधि नहीं आई कि सच बोलो वेद में कहीं यह भी नहीं लिखा कि मन से पवित्र करके वाणी बोलो फिर यह श्लोक दयानन्द की जबरदस्ती से वेदानुकूल कैसे हो जावेगा ? क्या दुनियां में जीता जागता कोई आर्यसमाजी ऐसा है जो इस श्लोक की वेदानुकूलता सिद्ध करे ? और यदि आर्यसमाज में सभी मूर्ख हैं तो इसकी वेदानुकूलता किस आधार पर मानी गई ? यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है किन्तु दयानन्द जी संसार को धोखे में डालने के लिये जबर्दस्ती से इस श्लोक को वेदानुकूल लिख गये ? यह है कलियुगी ऋषि का धर्म निर्णय ?

राजा के विषय में मनु जी नें कुछ श्लोक लिखे हैं वे वेदानुकूल समझ स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं। श्लोक ये हैं।

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥१॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥२॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥३॥

मनु० ७ ॥ ४ । ६ । ७ ।

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्ता वायु के समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने हारा यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्तने वाला, सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने हारा, वरुण अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥१॥ जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपाने हारा जिसको पृथिवी में, करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो ॥२॥ और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्म, प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे

वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे ॥३॥

ये तीन श्लोक जो स्वामी ने सभेश के वर्णन में लिखे हैं, जिनका असली अभिप्राय राजा का महत्व दिखलाना था, श्लोकों के असली अभिप्राय को तोड़ मरोड़ मन माना फर्जी अर्थ बना जिनको सभेश परक लगाया है क्या ये श्लोक वेदानुकूल हैं ? कोई आर्यसमाजी इनकी वेदानुकूलता सिद्ध करने वाला भूतल पर विद्यमान है ? जब इनकी वेदानुकूलता कोई पुरुष तीन जन्म में भी सिद्ध नहीं कर सकता तब इनको जबर्दस्ती से वेदानुकूल मान लेना क्या संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं है ? धर्म के विषय में संसार को ऐसे धोखे में फांसना यह न्याय है या धार्मिकता ? हमारी समझ में तो घोर पाप है। क्यों न हो, स्वामी जी यदि ऐसे २ घोर पाप न करते तो आर्यसमाज उनको महर्षि की पदवी कैसे दे देती ? ऐसे घोर पाप को धर्म और धोखा देने वालेको महर्षि की पदवी देना संसार में लज्जावान् पुरुष कभी भी नहीं कर सकते।

इन तीन श्लोक की ही क्या कथा है सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में तीन तथा द्वितीय में दो एवं तृतीय में साढ़े २६, इसी प्रकार चतुर्थ में पौने ७६, षष्ठ में एक सौ साढ़े सत्तासी, सप्तम में १, अष्टम में पौने ४, नवम में २६, दशम में सवा २८ एकादश में पौने ६ कुल मनुस्मृति के ३६० श्लोक स्वा०दयानन्द जी ने उद्धृत किये हैं। इन ३६० श्लोकों में से एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिस की वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिये कोई माई का लाल आर्यसमाजी मैदान में आवे ? जब वेदानुकूलत्व न होने पर भी ३६० श्लोक स्वामीजी ने मनु के प्रमाण मान लिये फिर वेदानुकूलता का झगड़ा लगाना संसार को जाल में फांसना नहीं है ? स्वामी जी तो बिना ही वेदानुकूलता के ३६० श्लोक मान लें और हम यदि एक भी श्लोक मनु का पेश करदें तो आर्यसमाजी यह कह उठें कि यह श्लोक वेद विरुद्ध है अतएव क्षेपक है, हम इसको बिलकुल ही नहीं मानते, आर्यसमाज का यह जाल ही एक दिन आर्यसमाज को संसार से नेस्त नाबूद कर डालेगा इस प्रकार के जाल बिछाकर संसार की आंख में धूल झोंकने वाला मजहब दुनियां में कितने दिन ठहरेगा ?

नं (७४) सत्यार्थप्रकाश पृ० १२३ में शतपथ का देकर लिखा है कि "ब्रह्मचर्याश्रमंसमाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। शत० कां० १४

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर

वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है"।

यह शतपथ क्या वेदानुकूल है? आर्यसमाज के माने हुये मन्त्रभाग वेद में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं जिसके अनुकूल यह शतपथ हो सकता हो तो भी अपनी हठ से बलात्कार वेदानुकूल बना कर इस शतपथ को सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया—यह दयानन्द की स्वार्थसिद्धि है। क्या कोई आर्यसमाजी उस मन्त्र को पेश कर सकता है जिसके अनुकूल यह शतपथ हो? इसको सुन कर आर्यसमाजियों की दांती बन्ध जाती है फिर केवल स्वा० दयानन्द के लिखने पर इसको कोई विचारशील मनुष्य कैसे वेदानुकूल मान लेगा? शतपथ के जितने भी प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं कोई भी मनुष्य उनकी वेदानुकूलता सिद्ध नहीं कर सकता। वेदानुकूल न रहने पर भी अपना मतलब बनाने के लिये आर्यसमाजियों को बनावटी जाल में फांसने के निमित्त जो दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत प्रमाणों को वेदानुकूल माना है-यह दयानन्द की अनधिकारचेष्टा है।

शतपथ में लिखा है कि—

"प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवंवोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताᳫं सम्बभूव ॥१॥ तद्वै देवानामाग आस। यऽइत्थᳫं स्वां दुहितरमस्माकᳫं स्वसारंकरोतीति ॥२॥ तेह देवा ऊचुः। योऽयं देवः पशूनामीष्टेऽतिसन्धं वाऽअयं चरति यऽइत्थᳫं स्वाँ दुहितरमस्माकᳫं स्वसारं करोति विध्येममिति तᳫं रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास ॥३॥

प्रजापति ने अपनी दुहिता की इच्छा की। दिव रूप प्रजापति ने उषा रूप दुहिता से संगम किया। १। यह देवताओं की दृष्टि में पाप हुआ, देवता कहने लगे कि यहब्रह्मा दिव रूप प्रजापति बनकर हमारी बहिन और अपनी पुत्री उषा से जो समागम करता है यह भारी पाप करता है। देवताओं ने इस समाचार को महादेव से कहा महादेव ने यह सुन कर ब्रह्मा को बाण से बींधा, इसी बीच में ब्रह्मा के वीर्य का पतन होगया।

जब आर्यसमाजी ब्रह्मा-सरस्वती की कथा को हमारे आगे रखते हैं तब हम कह देते हैं कि जैसा श्रीमद्भागवत् में लिखा है वैसा ही शतपथ में भी है इतना कह कर शतपथ की इन तीन श्रुतियों को आर्यसमाजियों के आगे रख देते हैं, उस समय आर्यसमाजी कहते हैं कि यह शतपथ वेद विरुद्ध है हम इस को नहीं मानते । तब हम बोल उठते हैं कि तुम मूर्ख हो,वेद जानते नहीं इस कारण शतपथ की श्रुतियों को वेद विरुद्ध बतलाते हो ? इसी को ऋग्वेद कहता है कि

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् ।

ऋग्वेद अष्ट० ८ अ० १ वर्ग २७ सू० ६१ मं० ७

पिता अपनी लड़की के पीछे भागा ।

इसको सुन कर आर्यसमाजियों के बिस्तर बंधने लगते हैं, कहो शतपथ के जो प्रमाण मन्त्र भाग से नहीं मिलते उनको तो दयानन्द वेदानुकूल मानते हैं और शतपथ की जो श्रुतियां वेद से मिलती हैं उनको वेद विरुद्ध कह देना क्या घोर पाप नहीं है ? यह वेद की हत्या है, दयानन्द जी ने वेदानुकूलता क्या मानी घुसने निकलने की कुंजी तैयार की है । इसके जरिये से जब चाहो जिस प्रमाण को वेदानुकूल कह दो, जो प्रमाण आर्यसमाज की दीवारों को खोद कर बहाता हो उसको वेद विरुद्ध कह दो, इस प्रकार की चालबाजी, धोखे का जाल बना कर आर्यसमाज अपने मजहब की सचाई सिद्ध करने चली,मानो संसार में कोई लिखा पढ़ा ही मनुष्य नहीं ? याद रक्खो दयानन्द का यह पाप आर्यसमाज को ही खा जायगा ।

नं० (७५) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६ में लिखा है कि—

"पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳ शति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं, चतुर्विंꣳ शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति । छान्दोग्य प्र० ३ ख० १६"।

इस श्रुति को वेदानुकूल समझ सत्यार्थप्रकाश में लिखा गया है किन्तु आर्यसमाजियों से जब इसकी वेदानुकूलता पूछी जाती है तब वे घुड़दौड़ मचा देते हैं, सिवाय भाग जाने के और उनको कुछ नहीं सूझता । कहो दया-

नन्द कैसे महर्षि हैं जो जबरदस्ती से वेदानुकूल मान बैठते हैं ? और जब हम छान्दोग्य की--

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते ॥१॥

छा० ख० १४

यह श्रुति पेश करके सिद्ध करते हैं कि ज्ञानी पुरुष को कर्मबन्धन नहीं होता तब आर्यसमाजी कह उठते हैं कि यह श्रुति वेद विरुद्ध है इस कारण इसको हम नहीं मानते । अच्छा जाल बनाया, जिसमें वेद का कोई प्रमाण नहीं वह सत्यार्थप्रकाश में लिखी श्रुति तो वेदानुकूल और जिसमें वेदमन्त्र प्रमाण मिलता है वह हमारी बतलाई श्रुति वेद विरुद्ध ? कौन कहता है कि 'यथा पुष्करपलाश:' यह श्रुति वेद विरुद्ध है ? इस श्रुति के भाव को कहने वाले वेदमन्त्र को भी देखलें ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

यजु० ४०

इसलोक में कर्मों को करते हुये सौ वर्ष जियो इस प्रकार वेद प्रतिपादक कर्म करने से मनुष्य को कर्म नहीं चिपटते ।

स्वार्थ बड़ी चीज है, दयानन्द ने जितना कुछ लिखा वह सब लेख झूठ और ठगों की भांति जाल का सिद्ध करने वाला जाली लेख संसार को अन्धा करने के लिये लिखा, दयानन्द की इस चालाकी का भण्डाफोड़ न हो इस कारण आजकल के आर्यसमाजी धर्म-कर्म को तिलांजलि देकर वेदानुकूल को वेद विरुद्ध और वेदविरुद्ध को वेदानुकूल कह कर अपनी नीचता का परिचय देते हैं ।

इसी प्रकार माण्डूक्य, कठ, कैवल्य, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, मुण्डकादि उपनिषदों के अनेक प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं क्योंकि वे दयानन्द की दृष्टि में वेदानुकूल हैं ? किन्तु हम इस बात की घोषणा करते हैं कि कोई भी आर्यवीररमणी ने ऐसा वीरपुत्र पैदा नहीं किया कि जो स्वार्थवश लिखे हुये दयानन्द के इस सुफेद झूठ को सत्य सिद्ध करे । आर्यसमाजियो ! तुम संसार को धोखा देना ही सीखे हो ? संसार में तुम्हारे लिये और सब धर्म मर गये एक झूठ बोलना ही तुम्हारा धर्म रह गया ? घबराओ मत, महर्षि की बनावटी चाल-

बाज़ियां बहुत दिन चलीं अब उनकी चालाकियों का भारतवर्ष के प्रत्येक घर में भांडाफोड़ होगा और तुम जो पापी पेट के लिये दयानन्द के जाल को वेदधर्म बतलाते हो, तुम कुत्तों की तरह दुदकार दिये जाओगे ? अब भी संभलो नहीं तो पछताओगे ।

इसी प्रकार वेदान्त, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, सांख्य, श्रौत, गृह्यादि ग्रन्थों के सत्यार्थप्रकाश में प्रमाण उद्धृत किये हैं और उनको जबरदस्ती से संसार को अंधा बनाने के लिये वेदानुकूल माना है । ऐसी २ चालाकियों से संसार में सर्वथा मिथ्या, अवैदिक, कपोल कल्पित, वेदशास्त्र विरुद्ध आर्यसमाज मजहब का चलाना कढ़ी-भात का खाना नहीं है ? गर्ज पड़ने पर दयानन्द ने उन ग्रन्थों को भी वेदानुकूल माना जिनको धर्म निर्णय में हम भी नहीं लेते । उन ग्रन्थों के सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुये कुछ प्रमाणों को हम यहां उद्धृत करते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें ।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥

चाणक्यनीति अध्या० २ श्लो० ११

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

चाणक्य नीति

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ।

वृद्ध चाणक्य अ० १० । १३

स्वामी दयानन्द को इन की भी वेदानुकूलता वेद में मिली होगी ? अपने अपने विषय में सभी ग्रन्थ प्रमाण होते हैं, शब्द सिद्धि में व्याकरण, रोग निर्णय में वैद्यक, संस्कारादि अनुष्ठान में धर्म शास्त्र, कालज्ञान और गणित ज्ञान में ज्योतिष, ब्रह्मज्ञान में उपनिषद् स्वतः प्रमाण हैं । स्वामी दयानन्द जी ने जो इन में वेदानुकूलता का झगड़ा लगाया है यह घुसने निकलने की कुंजी है । हम जिस प्रमाण को लेना चाहें उसको वेदानुकूल कहदें और जिस का उत्तर न दे सकें उस को वेद विरुद्ध कहदें, संसार को इस धोखे में फांसने के सिवाय वेदानुकूलता में और कुछ भी सार नहीं ? यह तो केवल धोखा देने का हथियार है । संसार को धोखा देकर अंधा बना ईसाई धर्म को वैदिक धर्म बतलाना यह

आर्यसमाज का धर्म है इस प्रकार की चालबाजी करने वाले आर्यसमाज की दृष्टि में देशोद्धारक,वेदज्ञाता,योगी और महर्षि बन जाते हैं। इसके ऊपर विचार शील मनुष्यों को विचार करना चाहिये।

नं०(७६) वेदानुकूलता से एक लाभ अवश्य हुआ कि अब आर्यसमाज में सोलह संस्कार न होंगे। गर्भाधानादि सोलह संस्कार मन्वादि स्मृतियों और पारस्करादि गृह्य सूत्रों में लिखे हैं,वेदों में इन की विधि नहीं अतएव अब ये वेदानुकूल न रहे, आर्यसमाजियों को छोड़ देने होंगे। संस्कारहीन पुरुषों में शूद्र भाव आजाते हैं, आर्यसमाजियों को यह भी मंजूर, संस्कारों की खट पट तो पटा गई ?

नं० (७७) एक और सुख होगया, चोटी रखने और जनेऊ पहिनने का भी झंझट उड़ गया। वेदों में शिखा रखना, यज्ञोपवीत धारण करना कहीं लिखा नहीं केवल गृह्यसूत्र और धर्म शास्त्रों में लिखा है ,वे वेदानुकूल हैं नहीं ,छुट्टी पाई , स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को मुसलमान बना कर छोड़ा।

मिट्टीपलीत

वेद में यज्ञोपवीत पहिनना और शिखा रखना नहीं लिखा सनातनधर्मियों की देखा देखी आर्यसमाजी भी गृह्यसूत्रों तथा धर्मशास्त्रों से चुटिया रखते और जनेऊ पहिनते हैं एवं इसमें इनका कोई कसूर भी नहीं। न तो ये इतना समझते हैं कि स्वा० दयानन्द जी केवल वेद को ही मानते हैं और न इनको इतना ज्ञान है कि वेद में चुटिया जनेऊधारण करना नहीं लिखा,ये तो तेतालीस वर्ष में इतना ही पढ़े हैं कि स्वा० दयानन्द जी सत्य वक्ता, वेदज्ञाता, योगी महर्षि थे। इनको तो स्वा० दयानन्द जी की बड़ाई करने से काम है-धर्म जानने से क्या काम ? धर्म चाहे भाड़ में चला जाय किन्तु स्वा०दयानन्द जी की बड़ाई होती रहे। जब इन के वेद में चुटिया जनेऊ नहीं तब ये क्यों धारण करते हैं ? आज ये लोग सनातनधर्म के ग्रन्थों को लेकर शिखा सूत्र का ग्रहण करते हैं, कल को कुरान से रोजे रख कर निमाज पढ़ेंगे--यह हालत आर्यसमाजियों की है। दिल्ली के आर्यसमाजियों ने यह दावा किया कि वेद में जनेऊ पहिनना लिखा है,अब क्या था,अब तो शास्त्रार्थ ठन गया। सनातनधर्म की तरफ से वैद्यवर पं० गोविन्दराम जी शास्त्री और आर्यसमाज की तरफ से आर्यमुनि शास्त्रार्थ कर्ता नियत हुये। शास्त्रार्थ चलने पर हुज्जतबाजियां बहुत होती रहीं,आर्य-

समाज की तरफ से वेद प्रमाण पेश नहीं हुआ। पं० गोविन्दराम जी शास्त्री ने कहा कि यह शास्त्रार्थ हुज्जतबाजियों के लिये नहीं ठहरा किन्तु आर्यसमाज ने जनेऊ और चुटिया में वेद मंत्र देने की प्रतिज्ञा की थी, आज उस को क्यों टाला जाता है? वेद मंत्र क्यों नहीं दिया जाता? इस कथन पर आर्यमुनि ने 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्' यह श्रुति पेश की। यद्यपि इस में केवल यज्ञोपवीत के महत्व का वर्णन है पहिनने की आज्ञा नहीं तो भी सनातनधर्मी पंडित ने इस को माना और यह कहा कि यह श्रुति शतपथ की है, शतपथ को स्वामी जी पुराण मानते हैं और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि 'वेदानुकूल होने पर हम शतपथ को प्रमाण मानेंगे', स्वामी जी के इस लेख पर ध्यान देकर आर्यमुनि को 'यज्ञोपवीतं' इस की वेदानुकूलता सिद्ध करनी चाहिये। इस पर दो घंटे हुज्जत रही किन्तु श्रुति की वेदानुकूलता सिद्ध नहीं हुई अन्त में आर्यमुनि ने यह कहा कि कल इस की वेदानुकूलता हम सिद्ध करेंगे। उस दिन शास्त्रार्थ बन्द होगया, दूसरे दिन के लिये पांच बजे शाम का समय नियत हुआ किन्तु आर्यमुनि रात को ही दिल्ली छोड़ कर भाग गये। इस शास्त्रार्थ में आर्यमुनि से पहिले भी कई एक आर्यसमाजी पंडित भाग चुके थे। वेदानुकूलता सिद्ध करना अंगूर का खाना नहीं है, इस को आर्यसमाजियो तुम नहीं समझते, स्वा० दयानन्द जी ने तुम को खूब बनाया, तुम्हारे धर्म में शिखा रखना और सूत्र पहिनना ही नहीं रहा, अब तुम सच बतलाओ कि स्वा० दयानन्द जी ने तुम को नकली मुसलमान नहीं बनाया। यह है वेदानुकूलता का झगड़ा?

जालीवेदमंत्र

ब्राह्मण और अनेक संहिताओं को तो स्वामी जी ने वेद ही नहीं रक्खा, लिख दिया कि 'ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं पुराण हैं'। संहिता और शाखाओं को लिख दिया कि 'इन को हम प्रमाण नहीं मानते, ऐसा लिखने पर केवल चार किताब रह गईं इन में पूरे मंत्र नहीं इस कारण स्वा० दयानन्द जी अपने आप बनावटी जाली मंत्र बनाकर आर्यसमाजियों को यह समझा देते हैं कि देखो बेटाओ ये मंत्र हैं'यदि कोई कहने लगे कि ये मंत्र नहीं हैं तो उस की बात न मानियो, नहीं तो मेरे कपट जाल का भंडा फूट जायगा।

नं० (७८) संध्या के आरम्भ में स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है कि 'अथ संध्या मन्त्राः' फिर इस के पश्चात् यह मंत्र लिखा कि

ओं वाक्-वाक्, ओं प्राणः-प्राणः, ओं चक्षुः-चक्षुः, ओं-श्रोत्रं-श्रोत्रं, ओं नाभिः, ओं हृदयं, ओं कण्ठः, ओं शिरः,-ओं बाहुभ्यां यशोबलम्, ओं करतलकरपृष्ठे ॥

कृपा कर आर्यसमाजी बतलावें कि यह मंत्र कौन वेद का है? कई एक आर्यसमाजी कह देते हैं कि गृह्यसूत्र का होगा। होगा तो रहे, तुम से गृह्यसूत्र से क्या मतलब? यह भी कोई सिद्धांत है कि आज सनातनधर्मियों के गृह्यसूत्र को मानलें और कल को उसी गृह्यसूत्र को वेद विरुद्ध कह कर अमान्य ठहरादें। तुम्हें अपने धर्म ग्रन्थों से मतलब है या संसार भर के धर्मग्रन्थ टटोलते हो? ऐसे आदमियों का क्या विश्वास। आज सनातनधर्म के ग्रंथों को प्रमाण मानते हो, कल को ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल को प्रमाण मान बैठोगे, यह आर्यसमाज है या चूं चूं का मुरब्बा। यह मंत्र तो गृह्यसूत्रों में भी कहीं नहीं? आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है? टटोलो यह जाली मंत्र किस वेद का है?

नं (७६) फिर आगे चल कर स्वामी दयानन्द जी एक मंत्र और लिखते हैं कि—

ओं भूः पुनातु शिरसि, ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः, ओं स्वः-पुनातु कण्ठे, ओं महः पुनातु हृदये, ओं जनः पुनातु नाभ्याम्, ओं तपः पुनातु पादयोः, ओं सत्यं पुनातु पुनः-शिरसि, ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

मेरे प्यारे आर्यसमाजी भाइयो! तुम बतलाओ कि यह मंत्र कौन वेद का है? स्वामी जी ने तो लिखा था कि हमारा धर्म पुस्तक वेद है उसी को हम मानते हैं अब स्वामी जी ने यह लवेद का मंत्र तुम्हारे लिये क्यों लिखा?

नं० (८०) स्वा० दयानन्द जी ने जो देवतर्पण में।

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्।

ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।

ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्।

ब्रह्मादि देवगणास्तृप्यन्ताम् ॥

सत्यार्थप्रकाश पृ० १७

ये चार मंत्र लिखे हैं ये किस वेद के हैं ? क्या कोई आर्यसमाजी इनके बतलाने की कृपा करेगा ? कृपा तो तब करे जब ये वेद में हों, ये तो बिल्कुल ताजे बने हैं । ताजे बनों को कोई वेद में कैसे दिखला देगा ? ईश्वर ने वेद बनाया किन्तु ये चार मंत्र बनाने भूल गया अतएव ये दयानन्द जी ने बना दिये, अब बतलाओ ईश्वर बड़ा था दयानन्द ?

नं० (८१) सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १७ में ऋषितर्पण लिखते हुये जो चार मंत्र ।

ओं मरीच्याद्य ऋषयस्तृप्यन्ताम् ।

मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् ।

मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् ।

मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम् ॥

लिखे हैं, ये किस वेद के हैं ? सच तो यह है कि "मुखं किमस्यासीत्" इस मंत्र के भाष्य में जो स्वा० दयानन्द जी ने ईश्वर को मूर्ख लिखा था अब स्वामी जी नये नये मंत्र बनाकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि ईश्वर मूर्ख है और मैं विद्वान हूँ ।

नं० (८२) सत्यार्थप्रकाश पृ० १८ में पितृ तर्पण लिखते हुये स्वामी जी कुछ मंत्र लिखते हैं वे मंत्र ये हैं ।

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि ।

पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि ।

पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि ।
प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि ।
मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि ।
पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि ।
प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि ।
स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि ।
सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि ।
सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥

आर्यसमाजियों को पता लगाना चाहिये कि ये किस वेद के मंत्र हैं। जब कोई पता लगावे तो हमें भी लिख दे कि ये अमुक वेद में लिखे हैं। पता क्या लगावे खाक जब वेद में हैं ही नहीं ?

एक दिन आर्यसमाज काशी में प्रश्नोत्तर के तौर पर यह प्रसंग छिड़ा। आर्यसमाज की तरफ से स्वा० दर्शनानन्द और सनातनधर्म की तरफ से हम थे। हमने कहा कि वेद में पिण्डपितृयज्ञ का विधान है उसी पिण्डपितृयज्ञ को स्मृति और गृह्य सूत्रों ने श्राद्ध के नाम से याद किया है। यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्व वेद काण्ड १८ के कई सौ मंत्र श्राद्ध को कह रहे हैं फिर आर्यसमाज श्राद्ध का खण्डन कैसे करता है ?

इसको सुनकर स्वर्गवासी स्वा० दर्शनानन्द जी ने कहा कि पंडित जी ने सत्यार्थप्रकाश नहीं पढ़ा, यदि सत्यार्थप्रकाश पढ़ा होता तो ऐसा न समझते। सत्यार्थप्रकाश में स्पष्टरूप से लिखा है कि श्राद्ध-तर्पण जीवित पितरों का होता है और आर्यसमाज बराबर मानती है। हां मृतपितरों का श्राद्ध तर्पण जो सनातनधर्म मानता है अवैदिक होने के कारण आर्यसमाज उसका खण्डन करती है हमने कहा कि क्या आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश में जीवित पितरों के तर्पण के वेद मंत्र दिखला सकती है।? स्वामी जी ने कहा जी हां, लीजिये सत्यार्थप्रकाश स्वामी जी ने पन्ना खोलकर सत्यार्थप्रकाश हमारे पास भेज दिया। हमने इन मंत्रों को पढ़ा, पढ़कर स्वामी जी से कहा कि ये मंत्र वेद के नहीं हैं बनावटी हैं, यदि वेद के हों तो स्वामी जी पता बतलावें। इस पर स्वामी जी बहुत हंसे और हंसकर बोले कि तुम हमसे भी बढ़ गये, हम पुराणों में बनावट बतलाते हैं और तुम वेद में बनावट बतलाते हो, ये मन्त्र अथर्व वेद काण्ड १८ के हैं।

इसको सुन कर हमने कहा कि स्वामी जी ! ज्ञात होता है आपने कभी अथर्ववेद काण्ड १८ का पाठ नहीं किया। हमारा दृढ़ विश्वास है कि अथर्ववेद काण्ड १८ में ये मन्त्र नहीं हैं। हमने बीसियों वार १८ वें काण्ड का पाठ किया, वहां पर ये मन्त्र होते तो क्या हमको न मिलते ? इन मन्त्रों को १८ वें काण्ड में आप दिखला ही नहीं सकते।

यह सुन कर स्वामी जी ने मूल अथर्ववेद उठाया और आठ सात मिनट तक १८ वें काण्ड के पन्ने उथले किन्तु ये मन्त्र वहां नहीं मिले, मिलें तो तब जब १८ वें काण्ड में हों।

स्वामी जी कुछ सुस्त पड़ गये और बोले कि अथर्ववेद के १८ वें काण्डमें तो नहीं हैं। फिर सोचें और सोच कर बोले कि ऋग्वेद के छठे अष्टक में हैं। हमने कहा कि आपने ऋग्वेद का षष्ठ अष्टक भी नहीं पढ़ा, उसमें इस प्रकार के मन्त्र ही नहीं आते ? स्वामी जी ने ऋग्वेद का षष्ठ अष्टक देखा, जब उसमें ये मंत्र न निकले तब बोले कि मैं भूल गया, सामवेद में हैं। हमने कहा सामवेद में भी नहीं, यदि हैं तो दिखलाइये ? २२ मिण्ट तक स्वामी जी ने सामवेद टटोला किंतु ये मन्त्र न मिले तब बोले किसी वेद में हैं जरूर, मैंने आंख से देखे हैं किंतु पता याद नहीं रहा।

हमने कहा स्वामी जी ! ये मन्त्र चारों वेदों में कहीं भी नहीं हैं, ये तो जाली मन्त्र हैं, और आज तो क्या आप जन्म भर में भी हमको वेदों में ये मन्त्र नहीं दिखला सकते ? स्वामी जी चुप हो गये, जनता ने ताली बजा दी, समस्त मनुष्य यह समझ गये कि वेद में जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं है आर्य-समाज बनावटी मन्त्र बनाकर जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध करती है। अवसर पड़ने पर भी जब आर्यसमाज इन नकली मन्त्रों को वेद में न दिखला सकी तो अब क्या दिखलावेगी। जब वेद में हैं ही नहीं तब कहां से दिखला देगी।

नं० (८३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६६ में लिखा है कि—

ओं अग्नये स्वाहा। सोमायस्वाहा।

अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।

धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा।

प्रजापतये स्वाहा। सहद्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा।

स्विष्टकृते स्वाहा।

ये मन्त्र वेद के नहीं हैं, नहीं मालूम आर्यसमाज संसार को धोखा देने के लिये वेद वेद क्यों चिल्लाता है। कहता तो यही है कि हम वेद से भिन्न एक अक्षर नहीं मानते किन्तु यहां पर यह गृह्य क्यों माना? कई एक सज्जन जान बचाने के लिये यह कह देंगे कि इतना गृह्य वेदानुकूल हैं। झूठी बात है, न वेद में वैश्वदेव का विधान और न उसके मन्त्र, फिर जबर्दस्ती से कोई वेदानुकूल कैसे बना देगा?

नं० (८५) सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में लिखा है कि--

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः।

सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः।

मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः वनस्पतिभ्यो नमः।

श्रियै नमः भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः।

वास्तुपतये नमः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।

दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।

सर्वात्मभूतये नमः।

क्या कोई आर्यसमाजी इन मन्त्रों को वेद में दिखला सकता है. गृह्यसूत्र और धर्मशास्त्र के कुछ मन्त्रों को लेकर उनकी काट छांट कर स्वामी जी ने ये ताजे गर्मागर्म मन्त्र आर्यसमाजियों के आगे रक्खे हैं। स्वामी जी की जब कोई युक्ति काम नहीं करती तब वे तुरंत ताजे मन्त्र बना कर वेद के नाम से आर्यसमाजियों के आगे रख देते हैं। ये लोग पढ़ते लिखते हैं नहीं समझ लेते हैं कि स्वामी जी झूठ थोड़े ही लिखेंगे, जाल थोड़े ही बनावेंगे। मन्त्र वेद के हैं तब तो लिखे हैं। बस इतने पर ही ये लोग वैदिक बनने का झूठा दावा कर बैठते हैं।

हठ

स्वा० दयानन्द जी जब किसी तरह से भी पार नहीं पाते, जब उनका पक्ष सर्वथा ही गिर जाता है तब कह बैठते हैं कि तुम्हारा कहना ठीक नहीं यह असम्भव है, इसको हम कभी नहीं मानेंगे।

नं० (८५) स्वा० दयानन्द जी के साथ मुन्शी इन्द्रमणि जी का "नमस्ते" पर शास्त्रार्थ हुआ, इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ वेदव्याख्याता पं० भीमसैन जी हुये। पंडित जी ने दोनों के कथन को सुन कर फैसला दिया कि परस्पर में नमस्ते करना स्वामी जी ने वेद और धर्मशास्त्र तथा इतिहास पुराण से सिद्ध नहीं कर पाया इस कारण इस शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द जी की हार हुई। स्वामी जी ने ही पण्डित भीमसैन जी को मध्यस्थ बनाया था इतने पर भी उनका फैसला नहीं माना, कह दिया कि तुम्हारे इस असम्भव फैसले को हम नहीं मानते।

नं० (८६) स्वा० दयानन्द जी और राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द में "ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं" इस विषय पर शास्त्रार्थ चला। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कहते थे कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं और स्वामी जी कहते थे कि नहीं नहीं ब्राह्मणग्रन्थ पुराण हैं। इस शास्त्रार्थ के सभापति थी बो साहब बहादुर प्रेंसिपल क्वींस कालेज काशी हुये, इन्होंने अपने फैसले में लिखा कि ब्राह्मणग्रंथ वेद हैं, स्वामी जी ने कह दिया कि हम इस फैसले को ही नहीं मानते।

नं० (८७) डुमरावं जिला आरा में राजा के सामने राजपंडित परमहंस जी और दयानन्द जी में मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। राजा के सामने यह कह दिया कि राजपंडित बहुत विद्वान् है, वेद ज्ञाता है, इसके बराबर भारतवर्ष में कोई पंडित नहीं। मूर्तिपूजा में इसके वैदिक प्रमाण इतने प्रबल हैं कि जिनसे आज मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मूर्तिपूजा वेद में लिखी है, यह कह कर स्वामी जी डुमरावं से चले आये। एक महीना बाद पं० ताराचन्द जी बनारस वालों से कह दिया कि हमने डुमरावं में अपनी हार स्वीकार ही नहीं की।

नं० (८८) हाथरस में हरजसराय भय्याने वालों के साथ में स्वामी जी का शास्त्रार्थ दश मिनट हुआ, विषय यह था कि स्वामी जी संसार का उपादान कारण प्रकृति को मानते थे और हरजसराय जी ईश्वर को। दश मिनट के अन्दर ही स्वामी जी ने कह दिया कि पंडित जी आप का पक्ष बड़ा प्रबल है, इस पर मैं अपनी हार स्वीकार करता हूं। यह कह कर स्वामी जी अलीगढ़ चले गये, अलीगढ़ से पंडित जी को एक चिट्ठी लिखी कि मैंने हार स्वीकार नहीं की है, कभी अवसर मिलेगा तो फिर शास्त्रार्थ करूंगा।

नं० (८९) स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में मृतकों का श्राद्ध

अपने आप लिखा। सम्वत् १९३४ में कलकत्ते में आशुतोष चटर्जी से कह दिया कि यह लेख मेरा नहीं,मेरे पास रहने वाले किसी पंडित ने लिख दिया।

नं० (९०) महाराज जयपुर को शैव बनाया और यह बतलाया कि शैव वैदिक है और वैष्णव मत ढोंग। राजा कहने में आगये,वैष्णव से शैव होगये स्वामी जी जयपूर से चले आये। कुछ दिन बाद फिर जयपुर गये राजा से कहा कि शैव मत भी वैदिक नहीं। महाराज श्री १०५ रामसिंह जी जयपुराधीश ने कहा आप ही हम से कह गये थे कि शैव मत वैदिक है? स्वामी जी ने उत्तर में कहा मैंने यह तो नहीं कहा हां यह कहा था कि वैष्णव मत की अपेक्षा शैव मत अच्छा है। भाव यह है कि जब स्वामी जी का पक्ष गिरता था, तब वे किसी की भी बात न मान हठ बांध बैठते थे। गुस्सा होना,झूठबोलना, चालाकी करना, धोखा देना,हठबांधना इन प्रमाणों से स्वा० दयानन्द जी अपने चलाये ईसाई मत की नकल आर्यसमाज को वैदिक सिद्ध किया करते थे और इन्हीं अवलम्बनों से आज आर्यसमाजी आर्यसमाज को सत्य सिद्ध करने को तैयार हो गये हैं।

चेला—चीनी

स्वामी जी ने जो चालबाजियां रक्खी हैं उचित था कि उन सबको उड़ा आर्यसमाज को पवित्र वैदिकधर्मी बना दिया जाता किन्तु ऐसा नहीं किया गया वरन् नई २ चालबाजियां और तैयार की गईं जिन का आश्रय लेने पर फिर आर्यसमाज का और भी गौरव नष्ट हो जावे,उन चालबाजियों में से पाठकों के अवलोकनार्थ कुछ चालबाजियां हम नीचे देते हैं।

नं० (९१) स्वामी जी ने गुण,कर्म,स्वभाव से वर्ण व्यवस्था लिखी है। है आर्यसमाजियों ने उसको तो उठा कर ताक में रख दिया, आर्यसमाज के मेम्बर बढ़ाने के लिये विना पढ़े धोबी, तेली, कुम्हार, नट-बेड़िया, चमार, भंगियों को जनेऊ पहिना ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बना दिया। अब आर्यसमाज की कृपा से भंगी भी वाल्मीक वंशीय ब्राह्मण बन गये। संसार को तो गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाई जाती है और आप न गुण देखें, न कर्म और न स्वभाव चाहे जिस को ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बनादें-यह चेलों की पहिली चाल—बाजी है।

नं० (९२) आज कल किसी २ आर्यसमाजी को स्त्रियों का यज्ञोपवीत

पहिनाने का भूत चढ़ बैठा है। वेद और मनु तथा स्वा० दयानन्द जी के लेख से स्त्रियों का यज्ञोपवीत पहिनना सिद्ध नहीं होता, इस के लिये आर्यसमाजियों ने हारीत, यमस्मृति और निर्णयसिन्धु को स्वतःप्रमाण मान लिया, इन तो ही ग्रंथों के लिये स्वामी जी ने जाल ग्रन्थ और त्याज्य ग्रन्थ लिखा था, अब आर्य-समाजी इन्हीं से स्त्रियों को जनेऊ पहिनाते हैं एवं जब हम इन ग्रंथों को प्रमाण में दें तब कह देते हैं कि हम इन को कब प्रमाण मानते हैं ? स्वामी जी ने तो इन को पहिले ही त्याज्य और जाल लिख दिया है यह आर्यसमाजियों की दूसरी चालाकी है।

नं० (६३) शास्त्रार्थ और बात चीत में आजकल के आर्यसमाजी वेद को तो दूर फेंक देते हैं और पुराणों को जिन का कि ये रात दिन खण्डन करते हैं उन को स्वतःप्रमाण मान उनसे अपने पक्ष की पुष्टि करने लगते हैं। जिन पुराणों को स्वा० दयानन्द जी ने विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्य बतलाया है उसी को आर्यसमाजी प्रमाण मानते हैं-यह इन की तीसरी चालाकी है।

नं० (६४) आर्यसमाजियों ने अब एक और चालाकी चलनी आरंभ की है। वेद, धर्मशास्त्र आदि जितने भी ग्रन्थ हैं उन सब को तो दूर फैंक देते हैं और इतिहास से धर्म निर्णय करने लगते हैं कि अमुक स्त्री का विधवा विवाह हुआ था, इस कारण विधवा विवाह करना धर्म है। यह निर्णय सर्वथा धर्माधर्म में घपला मचा देने वाला है। द्वापर में मुल्लू धोबी की अम्मा ने अढ़ाई सौ पति किये तो अब प्रत्येक स्त्री का अढ़ाई सौ पति करना धर्म होगया। यादवों ने शराब पी, नशे में कट कर मर गये तो प्रत्येक मनुष्य का धर्म हो गया कि शराब पीकर कट कर मर जाय। रावण ने श्रीमती जनकनन्दनी को हर लिया, अब मनुष्यों का धर्म हुआ कि दूसरे की औरतों को चुराया करो, इस नियम से तो धर्म अधर्म सब धर्म होजायंगे, फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे ? एक दूसरी खराबी यह आवेगी कि वेन व्यभिचारी था और उस का लड़का पृथु एक स्त्री व्रत रखने वाला, उग्रसेन गौ, ब्राह्मण, वेदों का भक्त था और उसका लड़का कंस तीनों से ही घोर शत्रुता रखता था, फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे होगा ? इतिहास सब लोगों के चरित्र देता हुआ लिखता है कि रामवत्प्रवर्त्तितव्यं नतु रावणवत्, राम की तरह आचरण करो, रावण कैसा आचरण करने वाले मत बनो, फिर किसी एक मनुष्य के चरित्र को लेकर धर्म की डिगरी देना यह

आर्यसमाजियों का संसार की आंख में धूल झोंकना है।

नं० (६५) शास्त्रार्थ में कहने लगते हैं कि देखो अमुक अंग्रेज फलां पुस्तक में लिखता है कि आर्य लोग उत्तर हिमालय में रहते थे वे वहां से भारतवर्ष में आये, कुछ आर्य अमेरिका और कुछ योरुप को गये। उत्तरीय हिमालय में आर्यों में वर्णव्यवस्था और जाति भेद नहीं था; आर्यों ने भारतवर्ष में आकर वेद बनाये-इस कारण हम कह सकते हैं कि लुटेरे ब्राह्मणों ने वेद बनाये और वर्णव्यवस्था चलाई। जब ये शुरू से नहीं हैं तो मानने के लायक नहीं? इन्होंने जाति भेद और वेद का कानून चलाया, हम इन दोनों से भारतवर्ष का अधःपतन देख रहे हैं इस कारण दोनों को छुड़वाते हैं।

नं० (६६) आर्यसमाजी यह भी कह देते हैं कि ब्राह्मण लोग आर्यसमाज से द्वेष रखते हैं क्योंकि आर्यसमाज ब्राह्मणों के जाल को तोड़ता है इससे ब्राह्मण चिढ़ जाते हैं, तुम भी चिढ़कर ही शास्त्रार्थ करने आये हो अतएव हम ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ ही नहीं करते? दूसरी कोई जाति आवे तो हम शास्त्रार्थ को तैयार हैं।

नं० (६७) आज कल आर्यसमाजियों ने एक और चालाकी चलनी आरम्भ की है। सनातनधर्म का ये लोग खूब खण्डन करते हैं, यदि कोई मनुष्य आर्यसमाज का खण्डन करे तो कह देते हैं कि इससे क्या मतलब? इस खण्डन मण्डन ने ही हिन्दू जाति को गारत कर दिया। हम क्या आर्यसमाजी हैं जो तुम आर्यसमाज का खण्डन करते हो? हम तो कट्टर सनातनधर्मी हैं तो क्या आंख मींच कर हम सनातनधर्म मानते रहें?

नं० (६८) एक और नई चाल निकाली है, शास्त्रार्थ के प्लेटफार्म पर यह कहने लगते हैं कि तुम्हें धर्म की पड़ी है, यहां हिन्दु जाति ही खतम हो रही है देखो इसी वर्ष में हिन्दुस्तान में एक लाख ईसाई बढ़ गये और २० हजार हिन्दू मुसलमान हो गये, हिन्दुओं की दश हजार औरतों को मुसलमान भगा ले गये, ऐसा ही रहा तो दश बीस वर्ष में हिन्दू जाति खतम हो जावेगी फिर तुम धर्म को शहत लगाकर चाटना।

नं० (६९) एक और नई चालाकी सुनिये, जब सनातनधर्मी दयानन्द के किसी लेख को प्रमाण में रख दें तो आर्यसमाजी चिढ़ जांय और कहने लगें कि हम दयानन्द के लेख को मानने वाले नहीं, हम तो वैदिक हैं। यदि इसके

ऊपर कोई सनातनधर्मी कह दे कि तुम लिख कर दो ? तो हजार हुज्जतें करेंगे-लिख कर न देंगे । फिर जब वेद का प्रमाण देंगे तो अर्थ वही बेढंगा, ऊट पटांग सर्वथा मिथ्या पेश करेंगे जो स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है । कहीं उस समय सनातनधर्मी यह कह दे कि यह तो दयानन्द का अर्थ है ? तो कह उठेंगे कि स्वामी जी कैसा वेदज्ञाता दूसरा कोई दुनियां में हुआ है ? कच्चे पक्के को इसी चालबाजी से शास्त्रार्थ में गिरा देंगे ।

नं० (१००) जब कोई सनातनधर्मी पण्डित ऊंचे दर्जे पर पहुँच इनसे शास्त्रार्थ करने लगता है और जब ये बार बार शास्त्रार्थ हारते हैं, जब इनकी चारों तरफ से थू थू होने लगती है तब इनकी विद्या तो काम देती नहीं गिरोह बांध कर गुण्डापन पर उतारू हो जाते हैं । अपने व्याख्यानों में ऐसे पंडित को देश और जाति का शत्रु सिद्ध करने पर उतर आते हैं । जाल रचकर जाली चिट्ठियां बनाते हैं और फिर संसार में उसको बदनाम करते हैं जैसा कि प० गोपीनाथ और कविरत्न पं० अखिलानन्द एवं हमारे साथ किया । जबर्दस्ती से कविरत्न जी और हमको हसन निजामी का नौकर बनाया किन्तु जाल रचने वाले गुण्डों के मुंह पर वह स्याही लगी कि घर में धंस धंस कर रोये ।

आजकल के आर्यसमाजी ऐसी २ अनेक चालबाजियां चलते हैं किंतु आर्यसमाजी दल वज्र मूर्ख है इस कारण इनकी उठाई हुई चालबाजियों से इन्हीं का पतन हो रहा है किन्तु इतने पर भी चालबाजियों को छोड़ते नहीं ? कारण इसका यह है कि जब श्रुति-स्मृति इनका साथ नहीं देती तो फिर ये चालबाजियों को छोड़ दें तो किसके होकर रहें ? जब वेद और धर्मशास्त्र दयानन्द के मत का घोर शत्रु है तब तो इनको चालबाजियों का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा ।

मेल

आज हम परस्पर में समस्त धर्मों का मेल करेंगे । संसार में बौद्ध, जैन, सिक्ख सनातन धर्मी, ब्रह्मसमाजी, देवसमाजी, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी प्रभृति अनेक मजहब मौजूद हैं आज हम यह निर्णय नहीं करेंगे कि उनके धर्म अकाट्य और मान्य हैं या नहीं ? जिसका धर्म जैसा हो वह उसके लिये मुबारक है । आज निर्णय यह करना है कि जितनी चालबाजियां और बनावटी जाल तथा घुसने निकलने की कुंजियां आर्यसमाज में पाई जाती हैं क्या इतनी किसी अन्य

मजहब में विद्यमान हैं ? संसार के एक एक मनुष्य से पूछिये तो यही कह देगा कि और मजहब मजहब हैं किन्तु आर्यसमाज चालबाजियों का भण्डार है। जितनी चालबाजियां हमने दिखलाई हैं इनको आज तक मनुष्य समुदाय समझ नहीं पाया इस कारण मनुष्यों का कुछ भाग आर्यसमाजी बन गया है। जिस दिन इन चालबाजियों को संसार समझ लेगा भूल कर भी आर्यसमाज में कदम नहीं रक्खेगा।

हम प्रेम भाव आगे रख नम्रतापूर्वक समस्त आर्यसमाजियों से यह प्रार्थना करते हैं कि आप लोग एक पंडितों की सभा बनावें और उसमें समस्त चालबाजियां एवं आक्षेप पेश किये जावें। पण्डितों की सम्मति से आर्यसमाज को सच्ची वैदिक धर्म की मानने वाली धर्म-प्राण सोसाइटी बना दिया जावे जिससे आर्यसमाजियों की यश पताका कीर्ति फहराकर समस्त आर्यसमाजी अपवर्ग के भागी बनें और संस्कृत के ज्ञाताओं को आर्यसमाज में प्रीति हो।
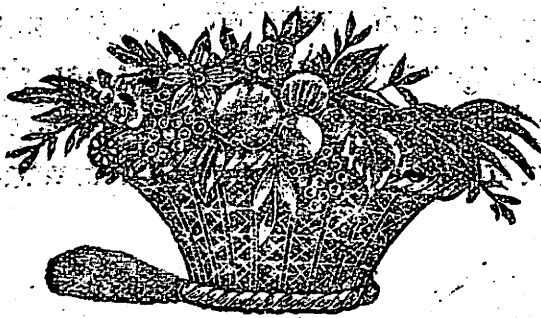
वेद और आर्यसमाज

जो लोग वेद-शास्त्र से अनभिज्ञ हैं वे लोग यह समझ बैठे हैं कि आर्य-समाज का मत 'वैदिक धर्म' है। इन्होंने कभी वेद-पुराण को पढ़ा नहीं, आर्य-समाज संसार को धोखा देने और अपना मत फैलाने के लिये जो वेद वेद चिल्लाती है एवं अपने मत को वैदिक कहती है बस इतने से ही साधारण मनुष्यों ने आर्यसमाज के मत को वैदिक मान लिया है किन्तु 'वेद और आर्य-समाज' में इतना ही अन्तर है कि जितना ज़मीन और आसमान में, अन्धकार और प्रकाश में, रात और दिन में तथा पाप और पुण्य में। कोई भी मनुष्य ऐसा वीर भारत जननी ने उत्पन्न नहीं किया और न आगे को कर सकती है कि जो आर्य-समाज के मत को वैदिक सिद्ध करदे ? आर्यसमाजी संसार के दिखलाने के लिये या लज्जा के भय से वेदधर्म के किसी सिद्धान्त को भले ही मानलें किन्तु इनके ग्रन्थों में वेद को आगे रख, वेद का गला घोट बलात्कार वेद से ईसाई धर्म की पुष्टि की गई है और उस ईसाई धर्म को चालबाजी से वैदिक सांचे में ढाल दिया है, हमारा कर्तव्य हमको विवश करता है कि संसार की भलाई के लिये इस समस्त जाल का भंडा फोड़ कर आर्यसमाज और वेद इन दोनों के सच्चे भावों को संसार के आगे रखदें, फिर जिसको वेद अच्छा लगे वह वैदिक धर्म को स्वीकार करले और जिसको चालबाजियां अच्छी लगें वह आर्यसमाज के रजि-स्टर में नाम लिखवाले। हम यहां पर वेद के समस्त सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे और साथ में आर्यसमाज के सिद्धान्त भी दिखलावेंगे। जिन कृत्यों का वेद में वर्णन नहीं है, जो केवल धर्मशास्त्रीय विषय हैं उनको लिखकर उनके ऊपर भी आर्यसमाज की विवेचना लिखदेंगे पाठक क्रम से समझ कर पढ़ें, वैदिक विषय होने के कारण किसी २ स्थल में क्लिष्टता भी अवश्य होगी ऐसे स्थलों को विद्वानों से समझ लें। जिन लोगों को धर्म प्राणप्रिय है वे धार्मिकतत्त्व की विवेचना के लिये इस प्रकरण को अवश्य पढ़ें किन्तु जो लोग धर्म और वेद दोनों को निष्प्रयोजन समझ आर्यसमाजी बन गये हैं वे संसार में अपना मस्तिष्क बढ़ाने के लिये पढ़ें। पढ़ने की प्रार्थना दोनों से ही है और यदि कोई न पढ़े तो

न सही, न पढ़ने से हमारी कोई हानि नहीं। प्रवीण डाक्टर की कल्याण कारक औषधि को यदि कोई रोगी नहीं खाता तो इसमें डाक्टर की क्या हानि ? इस प्रकरण के आरम्भ में प्रथम हम ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करेंगे कि वेद इस विषय में क्या कहता है और आर्यसमाज का क्या सिद्धान्त है ?

ईश्वर स्वरूप

वेद

आज कल मनुष्यों को ईश्वर के निराकार मानने का भूत सवार होगया है। अज्ञ लोग विद्या और अनुभव से ईश्वर के स्वरूप को तो जानते नहीं केवल अन्य मनुष्यों से सुन लेते हैं कि ईश्वर निराकार है। आज तो ईश्वर के निराकार होने का कलंक आर्यसमाज ने वेदों के मत्थे मढ़ दिया, मार पीट करे बुद्धू और सजा में जावे मुल्लू, ईश्वर को निराकार मानें आर्यसमाजी और निराकार मानने की बेवकूफी मत्थे मढ़ी जाय वेदों के। वेद ईश्वर को कैसा मानते हैं इस विषय में शतपथ लिखता है कि

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ।

श० का० १४ अ० १ ब्रा०२ श्रु० १८

प्रजापति (ईश्वर) दो प्रकार का है रूपवान और अरूप। वह निरुक्त है रूपवान ईश्वर के गुणों का वर्णन कर सकते हैं, अरूप ईश्वर अनिरुक्त अनिर्वचनीय है। रूपवान परिमित परिच्छिन्न प्रमाण वाला महदूद है 'अरूप अपरिमित अपरिच्छिन्न अनन्त प्रमाण रहित लामहदूद है जिसकी यज्ञों द्वारा यजन उपासना की जाती है वह ईश्वर का गुण वर्णन करने योग्य परिमित परिच्छिन्न

महदूद रूपवाला शरीर है और जहां जाकर मौन होजाना पड़ता है, जहां पर मन वाणी काम नहीं देते वह अपरिमित अनिर्वचनीय रूप है।

आप कहेंगे कि ईश्वर तो एक और उसके रूप दो हमारी समझ में नहीं आता, हमारी तो क्या किसी के भी समझ में नहीं आसकता, यह तो सर्वथा असंभव है कि एक के दो शरीर हों।

यह बात वेद भी जानता है कि साधारण मनुष्य "उभयंवा" इस श्रुति के गहन अभिप्राय को नहीं समझ सकता इस कारण इस गूढ़ भाव का स्पष्टीकरण भी वेद कर देगा, उस स्पष्टीकरण को समझने के लिये प्रथम कुछ श्रुतिस्मृति-वर्णित सहायक प्रकरण के समझने की आवश्यकता है और वह प्रकरण यह है।

यह ब्रह्माण्ड जिसमें आप की जमीन, चांद, सूर्य और अनेक तारे हैं यह कितना बड़ा है? शास्त्रों के लेख से इसका प्रमाण पंचाशतकोटि योजन विस्तार है। दक्षिण दिशा से उत्तर तक और पूर्व से पश्चिम तक, नीचे से ऊपर तक सब तरफ पचास कोटि योजन प्रमाण रखने वाला मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस ब्रह्माण्ड में ईश्वर कहां रहता है? इस प्रश्न पर सभी मनुष्य यह कहेंगे कि ईश्वर तो समस्त ब्रह्माण्ड भर में व्यापक होरहा है, ब्रह्माण्ड भर में ऐसा स्थान कहीं नहीं मिलेगा जहां ईश्वर की व्यापकता न हो। अच्छा हमने मान लिया कि ब्रह्माण्ड में तो ईश्वर व्यापक है, इस ब्रह्माण्ड के बाहर ईश्वर है या नहीं? एक प्रश्न यह उठा। आप को मानना पड़ेगा कि ईश्वर बाहर भी है क्योंकि ब्रह्माण्ड परिच्छिन्न (महदूद) है और "उभयं वा" इस श्रुति ने ईश्वर को अपरिच्छिन्न (लामहदूद) बतलाया है इस-कारण ब्रह्माण्ड के बाहर भी ईश्वर का होना सिद्ध होजाता है' तो ईश्वर दुनियां (ब्रह्माण्ड) से बहुत बड़ा है। अब निर्णय यह करना है कि ईश्वर के कितने भाग में यह दुनियां रची गई? इस का विवेचन करता हुआ वेद लिखता है कि—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

यजु० अ० ३१ मं० ३

इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है और इसी ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टि रहित) हैं।

वेद ने हम को यह समझा दिया कि ईश्वर के एक हिस्से में तो दुनियां बनी है और ईश्वर के तीन हिस्से ऐसे हैं जहां पर दुनियां नहीं बनी। ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में संसार नहीं बना या यों कहिये कि तत्वों की रचना नहीं हुई वहां पर ईश्वर निराकार है। वेद में जितने मंत्र ईश्वर को निराकार बतलाते हैं वे सब उसी रूप का वर्णन करते हैं जो ईश्वर तीन भागों में आकार शून्य है। ईश्वर के इस रूप को श्रुतियां अविज्ञेय,अनिर्वचनीय,अपरिच्छिन्न कहती हैं किंतु ईश्वर के जितने अंश में अनेक ब्रह्माण्ड बन गये उतने अंश में वेद ईश्वर को साकार बतलाते हैं। वेद ईश्वर की साकारता को सूक्ष्म रूप से नहीं बतलाते वरन् साकारता को तीन भागों में विभक्त करके विस्तृत रूप से ईश्वर की साकारता का वर्णन वेदों में आता है इसी को हम नीचे दिखलाते हैं।

व्याप्य व्यापक

ईश्वर व्याप्य व्यापकत्व, सर्वस्वरूपत्व, अवतारत्व इन तीन प्रकारों से साकार है उस की साकारता को आप क्रम से अवलोकन करें।

एक पं० मोहनलाल नामक सज्जन हैं, ये सज्जन साढ़े तीन हाथ के हैं, ये तो साढ़े तीन हाथ के क्या हैं साढ़े तीन हाथ का तो इनका शरीर है। इन महात्मा का तो पता ही नहीं कि कितने लम्बे चौड़े हैं। इनके नाम का भी पता नहीं, और पं० मोहनलाल जो इनका नाम कहा जाता है यह नाम तो इनके माता पिता ने कल्पित कर लिया है,अपने मन से ही गढ़कर जबर्दस्ती का सांड नियत किया है, वास्तव में तो ये फर्जी पं० मोहनलाल नाम शून्य, रूप शून्य, निराकार जीव हैं, निराकार होने पर भी अब ये साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक हो गये हैं। ये व्यापक हैं शरीर व्याप्य है इसी कारण इनका यह शरीर है क्योंकि यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि व्यापक का व्याप्य शरीर होता है। यह शरीर इनका है घसीटू धोबी का नहीं है क्योंकि जिसका कल्पित नाम घसीटू धोबी है वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं है दूसरे शरीर में व्यापक है, जिस शरीर में घसीटू धोबी नामक आत्मा व्यापक है वह शरीर घसीटू धोबी का है, इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, कृष्णदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तमरीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्य व्यापक का शरीर होता है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और पृथ्वी व्याप्य है इस कारण पृथ्वी उसका शरीर है,तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और जल व्याप्य है इस कारण जल उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक

है अग्नि व्याप्य है इस कारण अग्नि उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है वायु व्याप्य है इस कारण वायु उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और आकाश व्याप्य है इस कारण आकाश उसका शरीर है।

जब समस्त संसार ईश्वर का शरीर हो गया तो फिर ईश्वर निराकार कैसे रहा? निराकार सिद्ध करने वाला कोई वीर भारत जननी ने पैदा किया है कि वैसे ही जबर्दस्ती से निराकार निराकार चिल्लाओगे? कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यह जो साकार बतलाने वाली युक्ति है यह पंडित जी के मस्तिष्क से निकली है यह वेद सिद्ध नहीं है। ऐसा कहने वालों को हम यही कह सकते हैं कि तुमने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखा। जो हमने युक्ति दी है उसी युक्ति को वेद ज्यों का त्यों लिखता है पढ़िये—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं। यः पृथिवीमन्तरो यमयति स तऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥७॥

योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं। योऽपोऽन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥८॥

योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं। योग्निमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥९॥

य आकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं। य आकाशमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥१०॥

यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुःशरीरं। यो वायुमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥११॥

श० का० १४

जो पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी के मध्य में जिसको पृथिवी नहीं जानती पृथिवी जिसका शरीर है जो पृथिवी को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।७। जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको जल नहीं जानता जल जिसका शरीर है जो जल को अपनी अनन्तशक्ति से थामे

हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।८। जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानता अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।९। जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।१०। जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिसका शरीर है जो वायु को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।११।

श्रुतियों के प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि में ईश्वर व्यापक है अतएव वह साकार है।

सर्वस्वरूप ।

व्यापकत्वेन ईश्वर को साकार कह दिया अब यह दिखलावेंगे कि सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं। समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे। ब्रह्म को छोड़कर अन्य कोई रूप ही संसार में नहीं है। जितने रूप दृष्टि गोचर होते हैं ये समस्त रूप ईश्वर के निज रूप हैं इसके विवेचन को आप पढ़ने की कृपा करें।

हमको सब से पहिले यह जानना चाहिये कि पृथ्वी किस चीज से बनी है। जब हम पृथ्वी के बनने की खोज को उठाते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी जल से बनी। इसमें प्राचीन और नवीन किसी को भी विरोध नहीं। अब हमको इतना ज्ञान हुआ कि वास्तव में पृथ्वी कोई चीज नहीं है किन्तु जब जल में संचलन शक्ति उत्पन्न होती है, संचलन शक्ति के प्रभाव से जल कठोर होजाता है और वही पृथ्वीरूप धारण कर जाता है। पृथ्वी की सत्ता कोई भिन्नसत्ता नहीं है किन्तु जलसत्ता का कठिन रूप पृथ्वी कहलाती है।

अब जल का विवेचन करिये, जल क्या चीज है? अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बन जाता है, अग्नि का रूपान्तर ही जल है। पाश्चात्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि पृथ्वी प्रथम आग का गोला थी, उस अग्नि से जल बना, जल कठोर होकर पृथ्वी बनी, जल कोई वस्तु नहीं है किन्तु अग्नि का रूपान्तर ही जल है, जल का कारण अग्नि हुआ। अब अग्नि के निर्णय करने में हम इस फल पर पहुँचते हैं कि दो विरुद्ध धर्मवाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न हो

जाता है, अग्नि कोई पृथक् चीज नहीं है वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है। अब यह विचार करना है कि वायु क्या चीज है? इस निर्णय में हम यह जानते हैं कि आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें जब संचलनशक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं और वे धक्का देने लगते हैं इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये, पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचलनशक्ति उत्पन्न हो जावेगी, वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है किन्तु आकाश का रूपान्तर है। बस फल निकला कि पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से बना, अग्नि वायु का कार्य है, वायु आकाश से बन जाता है। अब निर्णय यह करना है कि आकाश किस चीज से बनता है? इसके ऊपर फलासफरों की और साइंस वेत्ताओं की बुद्धि विचार छोड़ देती है। यहां पर वेद से काम लेना होगा कारण इसका यह है कि जहां पर संसार की फलासफियां चीं बोल समाप्त हो जाती हैं वहां से वैदिक विज्ञान का आरम्भ होता है। सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है, जहां पर सृष्टि नहीं है, जिसको अमृत कहा है उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है इससे आकाश उत्पन्न होता है। अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुये हैं।

इस विषय में वेद का यह कथन है कि—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।

आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

उस अदृश्य ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

समस्त संसार ही ब्रह्मस्वरूप है, इस विषय को वर्णन करते हुये पुष्पदन्त लिखते हैं कि—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-

स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

भगवन् ! आप सूर्य हैं, आप ही चन्द्रमा हैं, पवन आप हैं, अग्नि भी आप ही हैं, जल समूह आप हैं, आकाश भी आप ही हैं, पृथ्वी आप हैं, आत्मा आप हैं, हम एक भी तत्व ब्रह्माण्ड में ऐसा नहीं पाते जो आप न हो । जो बात पुष्पदन्त ने कही है उसी को वेद कहता है कि

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

यजु० अ० ३२ मं० १

वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है ।

जब वेद संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप कह रहा है फिर निराकार कहना मूर्खता नहीं तो और क्या है । विचारशील मनुष्य समझ गये होंगे कि यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और इस संसार का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' ईश्वर है अतएव संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं ।

तत्वात्मक जगत् ब्रह्म का रूप है इसके विषय में श्रुति कहती है कि—

द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च ।
तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात् ।
अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षम् ।

बृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३

ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त (साकर) दूसरा अमूर्त (रूपरहित) वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न पृथ्वी, जल, तेजात्मक ब्रह्म का मूर्त रूप है, आकाश वायु ये अमूर्त हैं ।

जिस प्रकार बृहदारण्यक की श्रुतियां पंचतत्वात्मक जगत् को ब्रह्म का रूप बतलाती हैं इसी प्रकार यजुर्वेद कहता है कि—

पुरुष एवेद ७ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

यजु० अ० ३१ मं० २

यह जो दृश्यमान सब जगत् है तथा पूर्व कल्प में जो जगत् रचा गया था और आगे के कल्प में जो रचा जावेगा वह सब पुरुष (ईश्वर) ही है ।

वेद की दृष्टि में जितने रूप संसार में हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं, ईश्वर से भिन्न कोई रूप ही नहीं। इस वेद सिद्धांत के विरुद्ध जो ईश्वर को निराकार मानते हैं वे वेद विज्ञान से कोसों दूर हैं या यों कहिये कि जान बूझ कर वेद ज्ञान को संसार से उड़ा देना चाहते हैं।

अवतारत्व

हमने पहिले व्यापकत्व के कारण ईश्वर को शरीरधारी सिद्ध किया, फिर यह भी दिखलाया कि संसार में जितने रूप हैं वें सब ब्रह्म के रूप हैं इस कारण वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया। अब आगे यह दिखलावेंगे कि ईश्वर का अवतार धारण करना वेद ने बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। देखिये—

एषोह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वोह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥

यजु० अ० ३२ मंत्र ४

यह दृश्यमान् जो देव ईश्वर है यह समस्त दिशाओं में व्यापक है, यह पूर्व प्रकट हुआ था और गर्भ में आया था वही प्रकट हुआ और आगे को प्रकट होगा यह सर्वतोमुख होकर प्रत्येक जन के सन्मुख स्थित है।

इसमें ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म लेना उत्तमरीति से कहा है जिसको इस पर सन्तोष न हो वह नीचे लिखे मंत्र को पढ़े।

प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

प्रजापति ईश्वर गर्भ में आता है, है तो अजन्मा किन्तु अजन्मा होकर भी वह बहुत प्रकार से जन्म धारण करता है, उसके स्वरूप को धीर पुरुष देखते हैं, वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं।

इन दोनों मंत्रों से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म धारण करना सिद्ध है किन्तु इन दो प्रमाणों की पुष्टि के लिये हम एक तीसरा मंत्र देते हैं।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० म० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

ईश्वर अपने रूप को अपने प्रेमी भक्त के दिखाने के लिये अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है। यों तो उसके सैकड़ों रूप हैं किन्तु उन सब में दश मुख्य हैं।

इसी मंत्र को लेकर जगद्गुरु शंकराचार्य ने निराकारवादियों का पराजय कर दिया। शास्त्रार्थ में निराकारवादियों ने यह दावा किया था कि ईश्वर सर्वथा ही निराकार है अतएव उसके मानने से कोई भी लाभ नहीं, जब कोई भी लाभ नहीं तो विना प्रयोजन का ईश्वर क्यों माना जावे? इस पूर्वपक्ष को सुनकर जगद्गुरु शंकराचार्य बोले कि—

मायाभिरिन्द्रः पुरुरूप ईयत
इत्येव तस्य बहुरूपता श्रुता।
तस्माच्चिदात्मा प्रकृतेः परः प्रभु-
र्ज्ञेयोस्ति मोक्षाय मुमुक्षुभिर्मुदा ॥

शंकर दिग्विजय

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" वेद के केवल इस एक मन्त्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध होजाते हैं। ईश्वर चैतन्य है वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है, प्रकृति से परे है अतएव मोक्ष पाने वालों को मोक्ष पाने के लिये उस परमात्मा का ज्ञान करना परमावश्यकीय है।

इस उत्तर पर निराकारवादियों का पक्ष गिर गया और शंकर का विजय हो गया। अब कोई कैसे कह सकता है कि वेद में ईश्वर के अवतार का लेख नहीं है।

इन तीन मन्त्रों में सामान्यता से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म लेना बतलाया गया । अब विशेष अवतारों का वर्णन वेद बतलाता है पाठक देखें ।

यक्षावतार

तलवकारोपनिषद् लिखता है कि—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये
देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं
विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४
तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव
तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥१५
तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥१६
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वं
दहेयम् । यदिदं पृथिव्यामिति ॥१८॥
तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१९
अथ वायुमब्रुवन्वायवे तद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥२०॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥२१
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ
सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥२२

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥२३
अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति
तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४

एक समय ब्रह्म ने देवताओं पर विजय पाया। गाथा यों है कि एक दिन समस्त देवता इकट्ठे हुये और प्रत्येक देवता कहने लगा कि इस युद्ध में हमारा विजय हुआ, देखो हमारे महत्व को। जब प्रत्येक देवता यह कहने लगा कि यह हमारा ही विजय है, हमारा ही महत्व है, उस समय ईश्वर एक यक्ष के रूप में प्रकट हुये। इस को देख कर देवता बोले यह कौन है? अग्नि से देवताओं ने कहा अग्ने! तू जात वेदा है इस के पास जाकर पता लगा यह कौन है। अग्नि यक्ष के पास पहुंचा, यक्ष ने पूछा तू कौन है? अग्नि ने कहा कि मैं जातवेदा अग्नि हूं। यक्ष बोला तुझ में क्या पराक्रम है? अग्नि ने कहा मेरे बल की कुछ न पूछिये यदि मैं चाहूं तो समस्त ब्रह्माण्ड को फूंक कर खाक बनादूं। यह सुन कर यक्ष ने एक "तृण" रक्खा कि इसको जलाओ। अग्नि बड़े वेग से उस तृण पर टूटा किंतु तृण को न जला सका, लौट कर देवताओं के पास आया, देवताओं से कहा कि यह यक्ष कौन है इतना जानना मेरी शक्ति से बाहर है। फिर देवताओं ने वायु से कहा कि तुम जाओ और पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है। इतना सुन कर वायु यक्ष के पास गया। यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो? इस ने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूं, यक्ष बोला तुम में क्या बल है? वायु ने कहा यदि मैं चाहूं तो अपने वेग से इस ब्रह्माण्ड को उड़ा इस के टुकड़े बना दूं। यक्ष ने एक 'तृण' रक्खा और वायु से कहा इस को उड़ाओ। वायु ने बड़े वेग से उस तृण पर धावा मारा किंतु वायु से वह तृण न उड़ सका, हार कर वायु देवताओं के पास आया और बोला कि मैं नहीं जान सकता यह यक्ष कौन है। फिर देवताओं ने इन्द्र से कहा आप जावें आप पता लगा सकेंगे कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र पता लगाने के लिये उस यक्ष के पास गया इतने ही में यक्ष का तिरोभाव होगया।

मत्स्यावतार

इसी प्रकार आर्यसमाज के वैदिक प्रेस अजमेर के छपे हुये शतपथ पृष्ठ५८

में मत्स्यावतार का उल्लेख है । उस समस्त प्रकरण को हम नीचे लिखते हैं ।

मनवे ह वै प्रातः । अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवने जनायाहरन्त्येवं तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणीऽआपेदे ॥१॥ सहास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजानिर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति ॥२॥ सहोवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽअतिनाष्ट्रो भवितास्मीति॥३॥ शश्वद्ध झष आस । सहि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघऽउत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥४॥ तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीᳬं समां नावमुपकल्प्योपासां चक्रे स औघऽउत्थिते नावमापेदे तᳬं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥५॥ स होवाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकᳬं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे।६।

शत० १ । ८ । १४ । ६

स्वायम्भुव राजा मनु के लिये प्रातःकाल हाथ मुखादि के शोधनार्थ सेवक लोग जल लाये जैसे कि सर्वत्र राजा रईसों के सेवक लोग दोनों हाथों से अपने २ स्वामियों के समीप हाथ मुखादि धोने के लिये जल लाया करते हैं. यहां 'पाणिभ्याम्' इस लिये कहा है कि मान्य पुरुषों के लिये एक हाथ से जल लाना असः

भ्यता है। उन हाथ मुख की शुद्धि करते हुये मनु जी के हाथों में लिये जल में मछली प्राप्त हुई ॥१॥ वह मत्स्य इस राजा मनु जी से यह बोला कि हे राजन्! तुम मेरा पोषण करो मैं तुम्हारा पालन करूंगा। राजा मनु जी बोले तुम किससे मेरी रक्षा वा पालन करोगे ? तब मत्स्य बोला कि बड़ा जल का समूह (बूड़ा) आवेगा वह इस द्वीप के सब मनुष्यादि प्रजाओं को बहा ले जावेगा वा डुबा देगा, उस जल में बह जाने से तेरी रक्षा करूंगा तब राजा बोला कि हे मत्स्य ! तुम्हारा पोषण कैसे हो सो बतलाओ ॥ २ ॥ वह मत्स्य बोला कि जब तक हम छोटे हैं तब तक हमारा नाश करने वाली जल जंतुओं की बहुत जातियां हैं अथवा बड़ी २ मछलियां ही छोटी मछली को खा लेती हैं, इससे पहिले मुझको घड़े में रखकर पोषण कीजिये, मैं जब घड़े में इतना अधिक बढ़ूं कि घड़े में न समा सकूं तब पृथ्वी में कोई बनावटी जलाशय खोदकर उसमें मेरा पोषण कीजिये। मैं उस जलाशय में भी जब इतना अधिक बढ़ूं कि उसमें न समा सकूं तब मुझको समुद्र में पहुंचा दीजिये मैं निश्चय करके अपने नाशक शत्रुओं का अतिक्रमण करके सब को दबा ले जाने वाला हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ तदनंतर वह शीघ्र ही बड़ा मच्छ होगया जिस कारण वह मत्स्य बहुत अधिक बढ़ता था इस से शीघ्र ही झष होगया। इस के अनन्तर फिर वह मत्स्य बोला कि इतने दिन में वह डूबा अर्थात् सब को डुबा देने वाला जलसमुदाय आवेगा। अभिप्राय यह है कि मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा कि इसी वर्ष में इतने दिन बाद डूबा आवेगा। मत्स्य भगवान् राजा मनुजी से कहते हैं कि डूबा आने केसमय पहिले से नौका बनवा कर हमारी उपासना करना अर्थात् हमारा सहारा लेना और डूबा आने पर उस नौका में चढ़ जाना मैं तुम को पार करूंगा ॥४॥ राजा मनु ने मत्स्य भगवान् का ,तालाब आदि से भली भांति रक्षण भरण पोषण करके पीछे समुद्र में पहुँचा दिया। उन मत्स्य भगवान् ने जितने काल में डूबा आने का विचार कहा था उतने ही काल में नाव बनाकर वा नौका मिलने पर मत्स्य भगवान् की उपासना राजा ने की। वह राजा मनु ओघ उठने पर नौका में चढ़ गया। उस राजा मनु को मैं अपने समीप खींच लूंगा ऐसे विचार से मत्स्य भगवान् नौका के समीप आये। उस मत्स्य के सींग में राजा ने नाव को बांध दिया। उस नाव की रस्सी को लेकर वह मत्स्य उत्तर हिमालय पहाड़ की ओर नौका को लेगया ॥५॥ मत्स्य रूप भगवान् बोले कि मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी तुम डूबने से बच गये, अब वृक्ष में नौका को बांध दो, पहाड़ में विद्यमान रहते

हुये तुम को जल पहाड़ से पृथक् न कर देवे इस लिये जितना २ जल बढ़ता जावे उतना २ तुम भी ऊंचे पहाड़ की ओर बढ़ते जाना, वे मनु उतने ही आगे बढ़ गये जिसमार्ग से उत्तरीय पर्वत में मनु जी ने बूड़ा के समय नौका द्वारा गमन किया था वही वही स्थान आगे आगे मनु का अवसर्पण कहाने लगा। वह जल का बूड़ा सब प्रजा को बहा लेगया अर्थात् सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट होगई तदनन्तर इस जगत् में एक मनु ही शेष रह गये, अन्य सब का प्रलय होगया।

धर्मवीरो! यह मत्स्यावतार जो आप को सुनाया गया है यह वेद में मौजूद है। इसी आख्यायिका को ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल में "नूह की नाव" के नाम से लिखा गया है।

ब्रह्मावतार

जिस प्रकार ब्राह्मण-उपनिषद् ग्रन्थों में अवतारों का उल्लेख है उसी प्रकार मन्त्र भाग में भी अवतारों का वर्णन आता है। उन्हीं में से हम ब्रह्मावतार को नीचे लिखते हैं।

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत यज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अथर्व० १६। २३। ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरंभ में बड़े द्युलोक का विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मारूप से प्रकट हुआ, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है।

यह श्रुति मन्त्रभाग की है और इसमें स्पष्ट ब्रह्मा का अवतार बतलाया गया है। इसकी पुष्टि में मनु जी लिखते हैं कि—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

मनु० अ० १। ६

यह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अण्ड

में सर्वलोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ।

मनु ने ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मरूप विराट् से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिख कर वेद मंत्र की पुष्टि कर दी। जो कुछ वेद मन्त्र ने लिखा था उसकी पुष्टि करता हुआ मुण्डकोपनिषद् लिखता है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥

ब्रह्मा जी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये जो संसार के रक्षक और विश्व के बनाने वाले हैं।

मुण्डकोपनिषद् के मंत्र में यह स्पष्ट कह दिया गया कि संसार के बनाने वाले और संसार की रक्षा करने वाले ब्रह्मा समस्त देवताओं से पहिले प्रकट हुये।

संसार का बनाना और संसार की रक्षा करना ईश्वर के सिवाय अन्य में घट नहीं सकता अतएव मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा ईश्वरावतार है।

वराहावतार

ब्रह्मावतार को हम दिखला आये, अब वेद से वराहावतार दिखलाते हैं पढ़िये—

वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय विजिहीते मृगाय ॥४८॥

अथर्व० कां० १२ अनु० १

वराह सूकर रूपधारी प्रजापति ने यह पृथ्वी उद्धार की है।

इसकी पुष्टि में तैत्तिरीयारण्यक लिखता है कि—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

हे भूमि! तुमको असंख्य भुजावाले कृष्ण वराह ने उद्धार किया है।

जिस वराह का अथर्व वेद ने वर्णन किया और तैत्तिरीयारण्यक ने जिसकी पुष्टि की उसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

इयतीह वाऽइयमग्रे पृथिव्या स प्रादेशमत्री तामेमूष

इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति ॥

शत० १४। १। २। ११

पहिले भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई, उसका वराह ने उद्धार किया सो इसका पति वही प्रजापति है।

वराहावतार को आगे रख कर नास्तिक लोग बड़ी उछल कूद मचाया करते हैं, ये कहते हैं कि जिन पुराणों में ईश्वर को ही वराह मान लिया हो वे पुराण वेद निन्दक नहीं हैं तो क्या हैं। वराहावतार की मसखरी करने के लिये संपादकाचार्य रुद्रदत्त बरुआ ने "स्वर्ग में सबजेक्टकुमेटी" नामक पुस्तक लिखी। इस कुमेटी में समस्त अवतार और देवता बिठलाये, सब के आगे भोजन परोसा गया। वराह का भोजन भिष्टा बना कर वराहावतार और पुराणों की खूब मिट्टी कूटी, किंतु अब यह वराहावतार वेद में से निकला। क्या वराहावतार की मसखरी करके आर्यसमाज ने वेदों को पैरों के नीचे नहीं कुचला ?

वामनावतार

वराहावतार के पश्चात् अब पाठकों के आगे हम भगवान् वामन का अवतार रखते हैं।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाᳪसुरे स्वाहा ॥

यजु० अ० ५ मं० १५

विष्णु ने इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पद रक्खा, इसके पद में समस्त संसार स्थित है।

इसकी पुष्टि में कठोपनिषद् लिखता है कि—

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ।

कठ० बल्ली ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेव उपासना करते हैं।

इसकी पुष्टि में शतपथ लिखता है कि—

वामनो ह विष्णुरास ।

शत० १। २। २। ५

विष्णु ही वामन थे।

इसी प्रकार वेद में समस्त अवतारों का वर्णन है, हमने यहां पर कुछ भगवदवतार दिखला दिये, अधिक दिखलाने से पुस्तक बहुत बड़ी हो जावेगी।

निराकार

मंत्र और ब्राह्मण तथा उपनिषद् तीनों भागों में ईश्वर को निराकार भी बतलाया गया है किन्तु जो ग्रन्थ ईश्वर को निराकार बतलाता है वह साथ में साकार रूप का भी वर्णन कर देता है। कोई भी ग्रन्थ ईश्वर को केवल निराकार नहीं कहता। वेद में एक मन्त्र ऐसा है जो ईश्वर को निराकार बतलाता है किन्तु वह भी निराकार बतला कर साकार बतला देता है। मन्त्र यह है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण—
मस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू—
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० ४०। ८

वह ईश्वर सर्वव्यापक, पराक्रमी, अकाय फोड़ाफुंसीवर्जित, नशनाड़ी के बन्धन से शून्य, शुद्ध, पापरहित, कवि, बुद्धिमान, चारोंतरफ से प्रकट होने वाला, अपने आप शरीर धारण करने वाला वह हमको सैकड़ों वर्ष तक इच्छित अर्थों को दे।

इस मन्त्र के "अकायम्" पद को आगे रख कुछ लोग उछल कूद मचा कह चलते हैं कि देखो वेद ईश्वर को सर्वथा निराकार बतला रहा है किन्तु यह कल्पना सर्वथा मिथ्या है। जब ईश्वर के शरीर ही नहीं तो फिर यह क्यों कहा कि ईश्वर व्रणशून्य, नश नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध पापशून्य है। जब शरीर का निषेध कर दिया तब तो व्रण, नश नाड़ी और पाप तीनों का ही निषेध हो गया। शरीर धारियों के ही फोड़ा फुन्सी नश नाड़ी और पापानुष्ठान होता है, जब शरीर ही नहीं तो फिर व्रणादि का निषेध कैसा?

किसी पुरुष ने अपने मित्र से पूछा कि आपके कोई लड़का है उसने उत्तर दिया कि मेरे कोई लड़का नहीं और उस लड़के के एक आंख तथा एक हाथ

नहीं इसका क्या मतलब ? मतलब यही निकलेगा कि इस पुरुष के निज का लड़का नहीं है, गोद लिया है और वह काना डोटा है। यही दशा इस अर्थ में है (चिञ्-चयने) धातु से 'कायम्' पद बनता है, अर्थ यह है कि 'चिनोति सुखदुःखादिकं पापपुण्यात्मकं यस्मिंस्तत्कायम्' इकट्ठे किये जाते हैं सुखदुःख और पापपुण्य जिसमें उसका नाम काय है और ईश्वर कैसा है ? वह 'अकाय' है, उसके शरीर में सुख-दुःख, पाप-पुण्यात्मक कर्मबन्धन नहीं होता, वह स्वेच्छातनु है, अपनी इच्छा से शरीर धारण करता है। यह अर्थ 'अकायम्' पद का होता है। इसी के ऊपर वेदान्तदर्शन लिखता है कि 'नटवल्लीला कैवल्यम्' ईश्वर का शरीर नट की भांति लीला के लिये है, लीला को छोड़ कर ईश्वर के शरीर धारण करने में दूसरा कोई हेतु नहीं, मन्त्र का भाव तो यह है किन्तु इससे अवतार सिद्ध हो जाता है, अवतार सिद्ध न हो इस भय से कई एक मनुष्य 'सपर्यगात्' इस मंत्र के अर्थ की मिट्टी पलीत कर देते हैं।

इस मंत्र के उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द है, 'परिभूः' शब्द का अर्थ चारों तरफ से प्रकट होने वाला है। जब ईश्वर परिभू है और वह चारों तरफ से प्रकट होता है, शरीर धारण कर लेता है फिर वह केवल निराकार कैसा ? परिभू के पश्चात् ईश्वर को 'स्वयम्भू' लिखा है, इसका अर्थ है 'स्वयं भवतीति स्वयम्भूः' जो अपने आप शरीर धारण करे। जब वह अपने आप शरीर धारण करता है तो फिर उस को निराकार कौन कहेगा।

स्वयम्भूः शब्द के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि

> ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोव्यंजयन्निदम्।
> महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
>
> मनु० अ० १

प्रलय काल के अनन्तर स्वयंभू भगवान् इस अव्यक्त संसार को प्रकट करने के निमित्त इस पंच महाभूत और महत्तत्व अहंकार को रचते हुये प्रकट हुये।

तब स्वयम्भू शब्द का अर्थ अपने आप शरीर धारण करना होता है, जब ईश्वर स्वयम्भू है फिर उस को निराकार बतलाना संसार पर अपनी बेवकूफी सिद्ध कर देने को छोड़ कर अन्य कुछ भी मतलब नहीं निकलता। इस एक मंत्र को छोड़ कर चारों वेदों में कोई दूसरा ऐसा मंत्र नहीं है जो ईश्वर को

निराकार कहता हो, इस से तुम को मानना पड़ेगा कि मूर्ख मनुष्य ही ईश्वर को केवल निराकार कहते हैं। दुर्जन तोष न्याय से हम यह भी मानलें कि इस मंत्र में ईश्वर को निराकार कहा है, इतने से भी तो ईश्वर केवल निराकार सिद्ध नहीं होता क्योंकि 'तदेवाग्निः' 'पुरुष एवेदम्' 'ब्रह्म ह देवेभ्यः' 'मनवे ह वै' 'एषो-ह देवः' 'प्रजापतिश्चरति' 'ब्रह्मज्येष्ठा' 'ब्रह्मादेवानाम्' "वराहेण पृथ्वी" 'उद्धृतासि वराहेण' 'इयतीह वा' 'इदं विष्णुः' 'मध्ये वामनम्' 'वामनोह विष्णुः' प्रभृति प्रमाणों से जो वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया है क्या इन वेद के प्रमाणों को कोई मनुष्य दबा लेगा ? चोर हमेशा चोरी करता है किंतु किसी न किसी दिन पकड़ा ही जाता है। वेद के प्रमाण चुरा कर जो चोरट्टे साकार प्रतिपादक वेद के प्रमाणों को चुरा लिया करते थे आज वे पकड़े गये, अब नहीं मालूम यमराज के यहां उन को कितने दिन का वेटिंग रूम मिलेगा।

उपनिषदों में ईश्वर को निराकार प्रतिपादन किया है। साथ ही साथ परमात्मा को साकार भी बतला दिया है। चालबाज लोग निराकार की श्रुति मनुष्यों के आगे रख देते हैं और समझा देते हैं कि देखो ईश्वर निराकार है या नहीं ? ये साधारण लोग इन बढ़िया चोरों की चोरी को क्या परखें, वे मान जाते हैं कि वास्तव में ईश्वर निराकार है। धोखा देने की श्रुतियों का नमूना देखिये।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं-सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ।१७॥

श्वेताश्वतर० अ० ३

सब इन्द्रियों के विषयों को प्रकाश देने वाला, समस्त इन्द्रिय रहित, सब का प्रभु स्वामी, सब का रक्षक, सब से बड़ा ईश्वर है।

इस श्रुति को निराकार की सिद्धि में देते हैं और देनी भी चाहिये क्योंकि इसमें ईश्वर को निराकार बतलाया गया है। दूसरी श्रुति जो देते हैं वह यह है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥१९॥

श्वेताश्वतर० अ० ३

ईश्वर के हाथ और पैर नहीं किंतु विना पैर के चलता है और विना हाथ के पकड़ता है, ईश्वर के नेत्र नहीं किंतु वह देखता है, कान नहीं सुनता है, वह समस्त जानने योग्य पदार्थ को जानता है किंतु उस ईश्वर का जानने वाला कोई नहीं, उस को अग्र सब से प्रथम वर्तमान पुराण पुरुष कहते हैं ।

इन श्रुतियों से निराकार सिद्ध करना कुछ बहुत बड़ी बुराई नहीं है । बुराई तो यह है कि इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् में "एषो हदेवः २ । १६" ली श्रुति जो ईश्वर का अवतार होना सिद्ध करती थी उसको छिपा लिया गया, यह श्रुति यजुर्वेद में भी आई है श्रुति और इसका अर्थ हम पहिले लिख आये हैं इस कारण हम इसको यहां नहीं लिखते । इस श्रुति और इसके अर्थ को पाठक पीछे देखलें । यह अच्छा न्याय है कि जो श्रुति ईश्वर को निराकार बतलावे वह तो पबलिक् के आगे रखदी जावे और जो साकार बतलावे वह छिपाली जावे ? जो लोग यह कहते हैं कि हम वेद को स्वतः प्रमाण और उपनिषदों को वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानते हैं वें ही वेद में आई हुई "एषो ह देवः" श्रुति को छिपाते हैं और जो "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा 'अपाणिपाद.' श्रुतियां वेद में नहीं आईं उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं, इस चालबाजी पर पाठकों को ध्यान देना चाहिये ।

निराकार की सिद्धि में जो मुण्डक की श्रुति दी जाती है वह यह है ।

> यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः
> श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं
> सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं
> तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

जो ईश्वर अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, वर्णरहित है, जिसके चक्षु नहीं, जिसके कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, नित्य है, विभु है, सर्वव्यापक है, जो सूक्ष्म है, जो अव्यय है, समस्त भूतों का योनि है उसको धीर पुरुष देखते हैं ।

ठीक, यह श्रुति निराकार ईश्वर का वर्णन करती है, निराकार विषय में इसका प्रमाण देना न्याय है किन्तु अन्याय यह है कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" यह मुण्डक की श्रुति जो ईश्वर को साकार बतलाती है इसको छिपा लिया जाता है । समस्त उपनिषदों में ईश्वर को निराकार और साकार बतलाया है ।

चालबाज लोग निराकार प्रतिपादक श्रुतियां पबलिक को सुनाते हैं और साकार प्रतिपादक छिपा देते हैं,ये नवीन चोरटे इस प्रकार की चोरी से ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं; हमें विश्वास है कि इस प्रकरण को पढ़ने वाले इनकी चोरी का भंडाफोड़ कर इनकी चालबाजियों को संसार के आगे रख देंगे।

भाव ।

ईश्वर के विषय में वेद का अभिप्राय यह है कि वह प्रलय काल में अरूप रहता है, वह अरूप ब्रह्म इच्छाशून्य, अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है किन्तु उस ब्रह्म का एक अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है, उसमें इच्छा होती है, वही संसार को अपने शरीर से उत्पन्न करता है,जिस प्रकार मिट्टी से घट और लोहे से कुल्हाड़ी, सुवर्ण से कटक, अंगूठी बनती हैं उसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बनता है। जैसे घट मिट्टी से और कुल्हाड़ी लोहे से तथा कड़े-अंगूठी सोने से भिन्न नहीं हैं ऐसे ही यह संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जितनी शक्लें छोटी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी संसार में दीख रही हैं ये सब ब्रह्म की शक्लें हैं इस अभिप्राय को लेकर वेद ने व्यापकत्व और सर्वस्वरूपत्व दो भेदों से प्रजापति को साकार बतलाया। संसार में ईश्वर अनेक रूप धारण करके आता है इसी को अवतार कहते हैं, वेद ने इस प्रकरण को "एषोहदेवः" 'प्रजापतिश्चरति' 'ब्रह्मह देवेभ्य' 'मनवे ह वै' "ब्रह्म ज्येष्ठ" 'ब्रह्मा देवानाम्' 'इदं विष्णुः' 'वामनो ह विष्णुः' 'वराहेण पृथिवी' 'उद्धृतासि वराहेण' प्रभृति अनेक प्रमाणों से ईश्वर के अवतार धारण करने की पुष्टि की है किन्तु ब्रह्माण्डों से बाहर जो ब्रह्म है वह अब भी अरूप है इस कारण से वेद ने प्रजापति को रूपरहित और रूपवान दो प्रकार का बतलाया-यह वेद का तत्व है। हमें आशा है कि पाठक इस प्रकरण को परिश्रम लगाकर समझने की कृपा करेंगे।

आर्यसमाज ।

वेद जो कुछ ईश्वर के स्वरूप में लिखता है वह हमने पाठकों के आगे रख दिया। अब यह बतलाना है कि इस विषय में आर्यसमाज का क्या सिद्धान्त है।

सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १६० में लिखा है कि—

(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं क्योंकि 'अज एक पात् ३४। ५३' 'सपर्यगाच्छुक्रमकायम् ४०। ८' ये यजुर्वेद के वचन हैं,

इत्यादि बचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता। (प्रश्न)

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

भ० गी० अ० ४ श्लो० ७

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब २ धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। (उत्तर) यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते। (प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं? (उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान होने से भ्रम जाल में फंस के ऐसी २ अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं। (प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके? (उत्तर) प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है, जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनंत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश्य कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया,

ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां होसकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला ? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मनना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इस लिये परमेश्वर का जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता'।

अवतार के विषय में जो आर्यसमाज का सिद्धांत है वह हमने ऊपर लिख दिया। अब 'ईश्वर का स्वरूप कैसा है" इस विषय का विवेचन दिखलाते हुये स्वामी दयानन्द जो सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १८१ में लिखते हैं कि—

"(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? (उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं होसकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनाने हारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इस लिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

विवेचन

अवतार विषय में स्वा० दयानन्द जी ने संसार को धोखे में फांसा है वेद के दो मंत्रों से अवतार का निषेध दिखलाया ,एक तो 'सपर्यगात्, मंत्र देकर ईश्वर को शरीर रहित बतला दिया, इस मंत्र का अर्थ जो स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है वह सोलह आने बनावटी और जाली है इस का भंडा फोड़ हम ऊपर कर चुके। आपने दूसरा मंत्र 'अज एकपाद्' लिख दिया ,इस से डरा दिया कि

ईश्वर अजन्मा है जब अजन्मा है तो जन्म कैसे ले लेगा किन्तु यह न सोचा कि 'प्रजापतिश्चरतिगर्भे' यह मन्त्र अजन्मा ईश्वर का जन्म बतला रहा है और इस मंत्र के भाष्य में खास दयानन्द जी ने ही अजन्मा ईश्वर का जन्म लिख दिया, कहीं ऊंट और कहीं भेड़िया-यह महर्षि की बुद्धि का नमूना है। आप ही लिखें और आप ही भूल जायं, इस महर्षि की अक्ल का कौन ठिकाना? स्वामी जी ने यहां इतना ही धोखा नहीं दिया किन्तु अवतार प्रतिपादक समस्त मन्त्रों को चुरा लिया, उनमें से एक भी मन्त्र संसार के सामने न आने दिया। घबरा गये कि यदि एक भी मन्त्र संसार के सामने आगया तो मेरे बनावटी जाल का भण्डाफोड़ हो जायगा? यह कथा तो रही अवतार की। अब ईश्वर स्वरूप की कथा सुनिये, स्वा० दयानन्द जी ईश्वर को सर्वथा निराकार बतलाते हैं और उसके निराकार होने में एक भी वेद का मन्त्र नहीं देते केवल हुज्जतबाजी से निराकार लिखते हैं। स्वामी जी अपने दिमाग से निकली हुई हुज्जतों को ईश्वरीय ज्ञान वेद से प्रवल मानते हैं। हमारी समझ में तो स्वा० दयानन्द जी की दृष्टि में हुज्जतबाजियों का नाम ही वेद है तभी तो स्वामी जी ने यहां वेद को नहीं छुआ? यदि हम "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" इस एकली श्रुति को ही यहां लिखदें तो यह श्रुति स्वा० दयानन्द जी की हुज्जतों को ऐसे फूंकडालती है जैसे एक दियासलाई हजारों मन रूई को फूंक देती है। कहो आर्यसमाजियो दयानंद का मत वैदिक है या अवैदिक?

शास्त्रार्थ में बड़ा मजा आता है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध पण्डित गणपति जी शर्मा, पं० भीमसेन जी आगरा, स्वामी नित्यानन्द जी प्रभृति जितने भी विद्वान् थे वे शास्त्रार्थ से नो कोश भागते थे। वर्तमान समय में वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, पं० नन्दकिशोर जी देव और कुछ दिन से पं० राजाराम जी शास्त्री ये सब शास्त्रार्थ से दूर रहते हैं, शास्त्रार्थ के समय वेदशास्त्र-शून्य बुद्धू, कबाड़ू कचरू शास्त्रार्थ करते आते हैं, वे पहिले 'सपर्यगात्' मन्त्र से ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं, जब इसका ठीक अर्थ कर दिया जाता है तब उनकी बुद्धि काम नहीं देती। उपनिषदों में निराकार और साकार बतलाने वाली श्रुतियां लिखी हैं, साकार विधायक श्रुतियों को तो छोड़ देते हैं निराकार विधायक कह चलते हैं कि देखो इस श्रुति में निराकार है। जब सनातनधर्मी पंडित यह कह बैठता है कि इस श्रुति की वेदानुकूलता सिद्ध करो और इसी उपनिषद् में यह दूसरी

श्रुति ईश्वर को साकार बतलाती है इसकारण ईश्वर के साकार निराकार दो रूप हैं, इसको सुन कर आर्यसमाजी पंडित उस उपनिषद् को छोड़ देता है दूसरी को उठाता है। दूसरी में जब यही अड़ंगा लगता है तब तीसरी उपनिषद् में दौड़ लगाता है, जब समस्त उपनिषद् समाप्त हो जाती हैं तब आर्यसमाजी पुराणों से निराकार सिद्ध करते हैं। जब सनातनधर्मी पंडित यह कह देता है कि पुराणों में तो चौबीस अवतार लिखे हैं तब आर्यसमाजी पंडित तुलसीकृत रामायण पर दौड़ लगाकर 'बिनु पद चले सुने बिनु काना' इस चौपाई को पकड़ लेता है, उस समय सनातनधर्मी पंडित 'जेहि इमि गावहिं वेद बुध' इस दोहे को पढ़ देता है। गर्ज़ यह है कि आर्यसमाजी इस शास्त्रार्थ में वेद को तो तिलांजलि दे देते हैं किन्तु दूसरे ग्रन्थों में खूब दौड़ लगाते हैं; ये इतनी फूटी तक़दीर के हैं कि किसी ग्रन्थ में भी ईश्वर केवल निराकार नहीं मिलता।

यदि सनातनधर्मी पंडित यह कह दे कि 'यथेमां वाचम्' और 'प्रजापतिश्चरति' तथा 'अश्वस्य त्वक्णा' इन तीन मन्त्रों में दयानन्द जी ने ईश्वर को साकार लिखा है, इतना सुनते ही आर्यसमाजी स्वामी जी पर टूट पड़ते हैं कह उठते हैं कि हम दयानन्द की बात नहीं मानते वह भी एक आदमी था भूल गया? जब हम यह कहते हैं कि स्वामी जी परिव्राजक, योगी, वेदज्ञाता, महर्षि थे और आर्यसमाज उनको आचार्य एवं प्रवर्तक मानता है तब तुम स्वामी जी को किस हिसाब से मामूली मनुष्य कह कर उनके लेख से इन्कार करते हो? जब यह गले में घंट अटकता है तब बेहोश होकर स्वामी दयानन्द जी पर बिगड़ बैठते हैं, उस समय जैसे जैसे अनुचित शब्द ये स्वामी दयानन्द जी को कह डालते हैं वैसे अनुचित शब्द स्वामी जी के लिये कोई ईसाई-मुसलमान भी नहीं कह सकता, और जो कहीं सनातनधर्मी पंडित 'उभयं वा' से लेकर 'वामनो ह विष्णुरास' यहां तक के मन्त्रों में से कोई मन्त्र पेश करदे तब ये सनातनधर्मी पंडित को गालियां देने लगते हैं और अंत में आर्यसमाजी पंडित शास्त्रार्थ हार जाते हैं एवं कोई दिन के लिये उस शहर में आर्यसमजियों का शिर नीचा हो जाता है। जहां २ ईश्वर स्वरूप पर शास्त्रार्थ हुआ वहां वहां पर आर्यसमाज ने कच्ची खाई और वेदमन्त्रों से ऐसे डर कर भागे जैसे जलती लकड़ी से कुत्ता भागा करता है। अब पाठक समझ लें कि आर्यसमाज वैदिक है या अवैदिक?

मूर्ति पूजा

वेद

वेद में ब्रह्म,सूर्य,शक्ति,गणेश,शंकर,विष्णु तथा देवताओं का पूजन स्पष्ट-रूप से लिखा है । सब से प्रथम वेद पूजन की आज्ञा देता हुआ लिखता है कि---

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

हे अध्वर्यादि ! तुम परमात्मा इन्द्र का पूजन करो,स्तुति विशेष से पूजन करो,प्रियमेधस सम्बन्धी व प्रिय मेधा के गोत्र वाले तुम पूजन करो और पुत्र भी विशेष कर इन्द्र (ईश्वर) को पूजें,जैसे धर्षण शील पुरुष को पूजते हैं वैसे तुम पूजो ।

पूजन की आज्ञा पाठक देख चुके,अब पूजन विधायक मंत्रों को हम उठाते हैं । वेद ने ब्रह्म और संसार का अभेद माना है इस कारण वेद ने संसारी पदार्थों को पूजना और उस पूजन से ब्रह्म की प्रसन्नता होना मान वेद के अनेक स्थलों में संसारी पदार्थों का पूजन लिखा है उन में से एक प्रमाण हम यहां उद्धृत करते हैं ।

नमस्तेऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्तेऽस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० कां० १ अ० ३ मं० १

बिजली को प्रणाम है,गर्जना को प्रणाम है । पाषाण को प्रणाम है जिस से चोट लगती है ।

सूर्य

सूर्य के पूजन के मंत्र ये हैं ।

यो देवेभ्यः आतपति यो देवानां पुरोहितः

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजु० अ० ३१ मं० २०

जो आदित्य देवताओं के लिये प्रकाशमान है,जो देवताओं के समस्त कार्यों में आगे रहता है,जो समस्त देवताओं से पहिले उत्पन्न हुआ है, उस दीप्यमान ब्रह्म के अवयव भूत सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥

यजु० ४० । १७

ज्योतिर्मय पात्र में सत्य ब्रह्म का शरीर छिपा हुआ है, जो आदित्य में पुरुष है वह मैं हूँ ।

इस मंत्र में आदित्य को ईश्वर रूप बतलाया है ।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि ।

धियो योनः प्रचोदयात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ३५

उस देव अन्तर्यामी रूप से प्रेरक हिरण्यगर्भरूप या आदित्य के अन्तर्गत जो पुरुष है उस का जो वरण करने के योग्य तेज है उस का हम ध्यान करते हैं वह हमारी बुद्धियों को शुभ कार्य में लगावे ।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३

अथर्व० कां० १७ । १ । १

उदय होते हुये,उदय होने वाले और उदित सूर्य को प्रणाम है,तीनों अवस्थाओं में विराट्,स्वराट् सम्राट इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है।२२। अस्त होते हुये ,अस्त होने वाले और अस्त सूर्य को प्रणाम है,तीनों अवस्थाओं में विराट्,स्वराट्,सम्राट इन तीन नाम वाले सूर्य को प्रणाम है । २३ ।

'यो देवेभ्य.' इस मंत्र में सूर्य की प्रशंसा कर उस को प्रणाम करना बतलाया,

'हिरएमयेन,इस मंत्र में सूर्य मण्डल में व्याप्य अधिष्ठातृ देव को ईश्वर कहा, गायत्री मंत्र में सूर्य से यह प्रार्थना की गई कि वह हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगावे और ,उद्यतेनमः ,इत्यादि दो मंत्रों से उदय होते और अस्त होते सूर्य को दोनों समय प्रणाम करना लिखा । अब पाठक समझलें कि वेदों में सूर्य को ईश्वर रूप मान उस का पूजन करना लिखा या नहीं ?

श्रुति

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभ-
र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं बिभ-
र्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति
श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाऊं ।

अहं जनाय समदं कृणो-

म्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥६॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूँ, मैं ही बारह आदित्यों और विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूँ। मैं मित्र वरुण, अग्निदेवता और अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ ॥ १ ॥ मैं सब तरफ से मारनेवाले सोम-देवता का पोषण करती हूँ, मैं ही त्वष्टा, पूषा और भग देवता को धारण करती हूँ। धन और हविष वाले सुन्दर प्राप्त करते हुये यजमान तथा सोम निकालते हुये का ॥२॥ मैं ईश्वरीय ज्ञान मिलने-अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली और सब ओर से प्रवेश कराती हूँ; तिस मुझको देव लोग अनेक जगह विधान करते हैं ॥ ३ ॥ मैं ही आप यह कहती हूँ कि सेवित है देवताओं और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ ॥४॥ मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है, जो देखता, जो स्वास लेता और सुनता है कथन किये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं, सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले वचन को तुझ से कहती हूँ ॥ ५ ॥ मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण के वैरी या हिंसक जन के लिये मदयुक्त करती हूँ, मैं आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूं ॥ ६ ॥

इन मन्त्रों में ईश्वरशक्ति दुर्गा का वर्णन है उसके महत्व को वेद ने जैसा बतलाया है उसको ऊपर देख लें। ईश्वर और शक्ति में वेद अभेद मानता है और यह बलवती पूज्या है अतएव इन मन्त्रों के अभिप्राय तथा अन्य बहुत से मन्त्रों के भाव को लेकर वैदिक लोग शक्ति की पूजा करते हैं।

जैसे वेद में शक्ति पूज्या है इसी प्रकार गणपति भी पूज्य हैं, इस विषय में वेद लिखता है कि—

गणानां त्वा गणपतिं ४ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं ४

हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहम-जानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥

यजु० अ० २३ मं० १९

गणों के अधिपति गणपति जो आप हैं हम आपका आह्वान करते हैं। प्रेमियों में प्रेमियों के पति आप हैं, हम आपका आह्वान करते हैं। निधियों में निधिपति आप हैं हम आपका आह्वान करते हैं। सो आप हमारे पति हो, आप गर्भधारण करवाने वाले हो, आप पराक्रम को गुप्तरूप से देते हो।

इस मन्त्र में गणपति का आह्वान है, आह्वान पूजा के समय ही होता है अतएव आह्वान से गणपति का पूजन सिद्ध है। कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि यह मन्त्र तो भाष्यकारों ने अश्वमेध के अश्वपरक लगाया है? इसका उत्तर यह है कि शतपथ और कात्यायन सूत्र ने अश्वमेध प्रकरण में अश्व में इसका विनियोग लगाया है। मरे हुये अश्व में ईश्वर का आह्वान होता है अतएव यहां पर भी ईश्वर का ही आह्वान है अश्व का आह्वान नहीं? इस मन्त्र का देवता 'गणपति' है, जो गणपति है वही ईश्वर है इस इसकारण अश्वमेध यज्ञ में किसी अन्य का आह्वान पूजन नहीं है किन्तु गणपति का है।

जिस प्रकार वेदों में गणपति का पूजन है उसी प्रकार विष्णु की भी पूजा वेद ने लिखी है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

यजु० अ० ३१ मं० ९

सृष्टि के आरम्भ में सब से प्रथम उत्पन्न हुये यज्ञ पुरुष (विष्णु) सृष्टि रचयिता प्रजापति और मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मानसिक यज्ञ में पूजन किया।

इसके आगे जगन्नाथ जी के विषय में वेद लिखता है कि —

अदो यद्दारु प्लवते सिंधोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३०॥

ऋ० ८। १३। १०। १२। १५५

विप्रकृष्ट देश में वर्तमान पुरुष निर्माण रहित जो दारुमय पुरुषोत्तम शरीर

समुद्र के तट में वर्तमान है उस शरीर का अवलम्बन वा उपासना करो जो किसी से भी हनन नहीं होता उस दारु मय देव की उपासना करने से अतिशय उत्कृष्ट वैष्णव लोक को प्राप्त हो।

उन मंत्रों में विष्णु की पूजा है। जिस प्रकार वेद ने विष्णु को पूज्य कहा है उसी प्रकार शंकर का भी पूजन वेद में पाया जाता है देखिये-

शंकर

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

यजु० अ०३ मं० ६०

निरुक्त—त्र्यम्ब को रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं। सुगन्धं सुष्ठुगन्धिं पुष्टि वर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषापरा भवति।

हम तीन नेत्र वाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्य गन्ध से युक्त और धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ानेवाला है जिस से कि उस की कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बन्धन से छूटें,अमृत से न छूटें।

पहिले हम रुद्र के पूजन में यही मंत्र पेश किया करते थे,सहारनपूर में प०ं लेखराम जी मुसाफिर ने आर्यसमाज की तरफ से शास्त्रार्थ करने वाले पं० मुरारीलाल से यह कहलाया कि यह मंत्र तो वेद का नहीं है,महादेव पूजने वालों ने वेद में मिला दिया? इस के उत्तर में हमने कहा कि अब तुम मूर्तिपूजा में घिर गये,तुम्हारे गले में फांसी लग गई,पिण्ड छुड़ाने के लिये मंत्र को बनावटी कहते हो? इस मंत्र पर स्वा० दयानन्द जी ने भाष्य किया है उन को यह मंत्र बनावटी न सूझा और तुम को सूझा? तुम दयानन्द की इज्जत को भी धूल में मिलाओगे? मंत्र के बनावटी होने का सबूत दीजिये और मूर्तिपूजा में नीचे लिखे मंत्र सुनिये?

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं
भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा विस्राष्टं
मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः॥१
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो

गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३

पुरस्तात्ते नमः कृण्मः उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४

मुखायते पशुपते यानि चक्षूंसि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वतः
आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय
दशकृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौ—
स्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणत्पृथिवीमनु ॥१०

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो
अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं
सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेति—
स्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनु प्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३
भवारुद्रौ सयुजा संविदाना—
वुभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६

अथर्व० कां० ११ अ० १ सू० २

हे भव! हे शर्व! मुझको सुखी करो, हे भूतों के पतियो! मेरे पास सब ओर से आओ अर्थात् रक्षार्थ हे पशुओं के पतियो! आप दोनों को नमस्कार है, तुम दोनों धनुषों में धरे विस्तृत बाण को मेरे ऊपर मत छोड़ो और आप हमारे द्विपद मनुष्यों एवं चतुष्पद पशुओं को मत मारो ॥१॥ हे पशुपते! हमारे शरीरों को कुत्तों और गीदड़ों के लिये मत करो अर्थात् आपकी कृपा से बावले कुत्ते और गीदड़ हमको न काटें तथा मरणान्तर हमारे शरीरों को गीदड़ और कुत्ते न खावें किन्तु हमारी सत्क्रिया हो जावे एवं आमिष की इच्छा करने वाले जो कृष्ण काक और मक्खी हैं वे अपने भोजन के लिये हमें न पावें ॥२॥ हे भव! तुम्हारे शब्द तथा प्राण को नमस्कार है और जो तुम्हारी मोहन करने वाली मूर्तियें हैं उन सबको हम नमस्कार करते हैं। हे अमर रुद्र! सहस्राक्ष जो आप हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३॥ हे रुद्र? तुमको पूर्व से और उत्तर दक्षिण से भी हम नमस्कार करते हैं था पूर्व-दक्षिण और उत्तर सब ओर तुम हो इस

लिये सब ओर रहने वाले आपको प्रणाम है। अधर शब्द नीचे का भी वाचक है नीचे से और सब ओर अवकाश देने वाला जो आकाश है उसके भी ऊपर जो स्थित आप हैं सूर्य रूप या व्यापक रूप से तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे पशुओं के पति शंकर ! तुम्हारे मुख को नमस्कार है,हे भव ! तुम्हारे चक्षु जो हैं उनको भी नमस्कार है। तुम्हारी त्वचा और रूप तथा सम्यग्दर्शी एवं प्रत्यग्दर्शी और सब ओर से व्यापक जो आप हैं ऐसे आपको नमस्कार है॥५॥ हे पशुपते ! आपके अंगो को नमस्कार है, आपके उदर, जिह्वा,मुख, दांत और नासिका को भी नमस्कार है ॥६॥ जो अस्त्र चलाने वाले नील शिखण्ड, सहस्राक्ष अश्व और आधाघात करने वाले रुद्र हैं उनके साथ हम विरोध न करें ॥७॥ वह भव हमको सब ओर से दुश्चरितों से रोकें, जैसे जल अग्नि को सब ओर से रोकते हैं ऐसे भव हमको सब ओर से रोकें किन्तु हमारा हनन न करें इस लिये हमारा उस भव को नमस्कार होवै ॥८॥ भव नामक शिव को चार और आठ बार नमस्कार हो, हे पशुपते ! आपको दश बार नमस्कार होवै, तुम्हारे ये पांच पशु विभक्त हैं गाय, घोड़े, पुरुष और बकरी तथा भेड़ ॥९॥ हे उग्र ! चारों दिशा आपकी हैं स्वर्ग आपका, पृथ्वी आपकी, बड़ा आकाश भी आपका है और क्या कहें इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राण तथा शरीर वाले हैं वे सब आपके ही हैं ॥१०॥ हे पशुओं के पति शंकर ! जिस ब्रह्माण्ड कटाह के अन्दर ये सब भुवन हैं और जिसमें पाप पुण्य का खजाना स्थित है वह समस्त ब्रह्माण्ड आपका है सो आप जो सबसे उत्कृष्ट हैं, आपको नमस्कार है, आप हमको सुखी करो और शृगाल तथा मांस खाने वाले कुत्ते, रोने और खुले केश वाली पिशाचिनी हमसे दूर जावें यह हमारी प्रार्थना है ॥११॥ हे शिखण्ड रखने वाले रुद्र ! तुम हजारों को जखमी करने और सैकड़ों को मारने वाले सुवर्णमय हरित धनुष को धारण करते हो तथा हमारा तो उस दिशा को भी नमस्कार है जिस दिशा में रुद्र का बाण और शक्ति घूमती होवे ॥१२॥ हे रुद्र ! जो पुरुष लड़ने की इच्छा से आपके पास आता और प्रहार करके भगाना चाहता है उसके प्रहार करने के बाद आप प्रहार करते हो, फिर उस शस्त्राहत को आपके पाद प्राप्त करते हैं अर्थात् वह शस्त्राहत होकर आपके चरणों में गिरता है ॥१३॥ भव और रुद्र दोनों ही उग्र और मिले हुये तथा सम्यग् ज्ञाता हैं, जिस दिशा में आप पराक्रम करते हुये विद्यमान हैं आप दोनों को नमस्कार है ॥१४॥ हे रुद्र ! आते, जाते, खड़े और बैठे हुये तुमको नमस्कार होवे ॥१५॥ हे रुद्र ! तुमको सायंकाल नमस्कार तथा

रात और दिन में भी नमस्कार है, मैं भवदेव और शर्व देव दोनों को नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

हमने जो ये मंत्र पेश किये तब माना कि हां वेद में मूर्तिपूजा है। जैसे शंकर के पूजन का वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन है उसी प्रकार सूर्य, शक्ति, गणेश, विष्णु के पूजन का भी विस्तृत वर्णन वेद में पाया जाता है जो विस्तार के भय से नहीं लिखा।

महावीर।

यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं उसको क्रम से पढ़ने का कष्ट उठावें।

देवी द्यावापृथिवी मखस्य त्वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ० ३७ मं० ३

हे मृद् जल रूप देवियो! मैं देवयजन स्थान में तुम दोनों को लेकर महावीर की मूर्ति बनाऊंगा अतएव मैं यज्ञ के लिये तुम दोनों को ग्रहण करता हूँ, महावीर के बनाने के हेतु यह तुम्हारा ग्रहण है।

यह मंत्र का अर्थ है, इस मंत्र पर कात्यायन श्रौत सूत्र लिखता है कि "मृत्पिण्डमादत्ते पिण्डचदेवी द्यावा पृथिवीति का० २६। १। ५" 'देवीद्यावा पृथिवी' इस मंत्र से जल मिश्रित मृत्पिण्ड को उठावे। इसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्र्या च दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावा पृथिवीऽइति यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्स इमे द्यावापृथिवीऽआगच्छद्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौ तन्मृदश्चापां च महावीराः कृता भवन्ति तेनैवैनमेतद्रसेन समर्धयति कृत्स्नं करोति तस्मादाह देवीद्यावापृथिवीऽ इति मखस्य वामद्य शिरो राध्यासमिति यज्ञो वै मखो यज्ञस्य वामद्य शिरो राध्यासमित्येवैतदाह देवयजने पृथिव्या इतिदेवयजनेहि पृथिव्यै सम्भ—

रति मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णऽइति यज्ञोवै मखो यज्ञाय त्वा यज्ञस्य त्वा शीर्ष्णऽइत्येवैतदाह ॥

शत० १४ । १ । २ । ६

अब मिट्टी के पिण्ड को ग्रहण करते हैं दक्षिण हस्त से 'देवीद्यावापृथिवी' इस मन्त्र से मृत्पिण्ड लेकर, कृष्ण मृगचर्म पर उत्तर दिशा में रख दे। यज्ञ विष्णु का वैष्णवी तेज माया में गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वी स्वर्ग में व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहते हैं और इन्हीं दोनों वस्तुओं से महावीर की मूर्ति बनाते हैं इसकारण मूर्ति बनाने के लिये मृत्पिण्ड को ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरस से ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है। इसकारण देवीद्यावा पृथिवी इस मन्त्र में कहा कि यज्ञ में आज मैं तुम्हारे शिर रूप महावीर प्रजापति का निर्माण करूंगा। यज्ञ मख को कहते हैं उस मख में शिर महावीर का निर्माण करूंगा, इसी को लेकर "देवयजने पृथिव्याः" यह कहा गया है।

"देवीद्यावा" इस मन्त्र के आगे 'देव्यो वम्र्यो' मन्त्र यह है।

देव्योवम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ० ३७ मन्त्र ४

हे प्राणियों से उत्पन्न उपजिह्वकाओ! तुमको लेकर देवयजन स्थान में अब महावीर की मूर्ति को सम्पादन करूं, मैं यज्ञ के लिये तुझे ग्रहण करता हूँ, महावीर के हेतु तुझे ग्रहण करता हूँ।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि' उत्तरतो देव्योवम्र्य इति वल्मीकवपाम् का०२६। १। ५-६' बांबी से मिट्टी लेकर मौन धारण कर मृत्पिण्ड से उत्तर की तरफ रख दें।

इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वल्मीकवपाम्। देव्यो वम्र्य इत्येतवाऽएतदकुर्वन् यथायथं तद्यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ताभिरेवैनमेतत्समर्धयन्त कृत्स्नं करोतीति।

शत० १४। १। २। १०

यज्ञ पुरुष का तेज पतित होने से बांबी की मिट्टी हुई इस कारण उसको

लेता है और उससे महावीर की मूर्ति को परिपूर्ण करता है।

आगे देखिये—

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ०३७ मं० ५

हे पृथिवि ! जिस समय वराह ने तेरा उद्धरण किया था तब तू प्रादेश-मात्र थी उस तुझको लेकर आज मैं देवयजन में तेरा यज्ञ शिर महावीर बनाता हूं।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि 'इयत्यग्र इति वराहविहितम् का० २६।२।७'इयत्यग्र'इस मन्त्र से जंगली वराह की खोदी हुई मिट्टी को लेकर मौन होकर वल्मीक की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रख दे।

इसीके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वराहविहितम् । इयतीह वाऽइयमग्रे पृथिव्या स प्रादेश-मात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याःपतिः प्रजापतिस्ते—नैवैनमेतन्मिथुनेनाप्रियेण धाम्ना समर्धयति कृत्स्नं करोतीति ॥

शत० १४ । १ । २। ११

सृष्टि के आरंभकाल में यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको वराह ने ऊंचा उठाया, वे वराह इस पृथ्वी के पति और प्रजा के स्वामी हैं इस कारण उस प्रियधाम मिथुन के द्वारा महावीर को समृद्ध और परिपूर्ण करता है अर्थात् मूर्ति बनाने को वराहविहित मृत्तिका लेता है।

इसके आगे के 'इन्द्रस्य' इस मन्त्र से महावीर बनाने के लिये रोहिष तृण (घास) का ग्रहण लिखा है। मन्त्र में घास को विष्णु तेज कह कर महावीर बनाने के लिये ग्रहण किया है। कात्यायन श्रौतसूत्र कहता है कि इस घास को लेकर मौन धारण कर वराह की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रखदे। शतपथ 'अथ यत्पूयन् १४। १। २। १२' कहता है कि यह घास विष्णुतेज से उत्पन्न हुआ है इस कारण यज्ञ के मुख्य महावीर निर्माण में इसको लिया जाता है।

ऋग्वेद के 'चत्वारि शृंगा' इस मन्त्र में यज्ञ को "त्रिधाबद्ध" लिखा है,

इसका भाषा यह है कि यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण और कल्पवत् है । यज्ञप्रकरण में जो अर्थ मन्त्र का होता है उसी अर्थ को ब्राह्मण कहता है और क्रिया बतलाता हुआ उसी अर्थ को कल्पसूत्र कहता है यज्ञ प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण में मंत्र ब्राह्मण, कल्प तीनों ही मिल कर चलते हैं ।

आगे "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" मंत्र है इसका अर्थ है कि वेद के रक्षक परमात्मा महावीर रूप में हमारे यज्ञ में आवें । इसके ऊपर कात्यायन सूत्र लिखता है कि "कृष्णाजिनं परिगृह्योत्तरतः परिवृतं गच्छन्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति का० २६ । १ । १२" 'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः' इस मंत्र को बोलकर उस समस्त सामग्री वाले कृष्ण मृग चर्म को यज्ञस्थल के अन्दर ले जावे और तीन महावीर बनावे ॥

फिर 'मखस्य शिरोऽसि' इस मंत्र से अपने बायें हाथ में रक्खे हुये महावीर को दहिने हाथ से छुवे और इसी मंत्र को पढ़कर इससे महावीर की स्तुति करे । फिर 'अश्वस्य त्वा वृष्णः' इस मंत्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे बाद में 'ऋजवे त्वा' इस मंत्र से पके हुये महावीरों को पकने के स्थान से निकाले । फिर 'यमाय त्वा' इस मंत्र से महावीर का तीन बार प्रोक्षण करे । फिर 'अनाधृष्टा' इस मंत्र से महावीर के ऊपर अंगुष्ठ और अंगुली रख कर महावीर की स्तुति करे । इस प्रकार इस प्रकरण में महावीर की परिक्रमा आदि पूजन की सब क्रियायें लिखी हैं, इसको देखकर संदेह हुआ कि महावीर ईश्वर नहीं है, हमारी बनाई एक मूर्ति है । इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ बोला कि-

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ॥

शत० १४ । १ । २ । १८

परमेश्वर दो प्रकार का है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त । इस कारण जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो तूष्णींभाव सम्पन्न है अर्थात् जहां मौन हो जाना पड़ता है उससे परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है ।

जैसे माता पिता का पूजन पंचतत्वात्मक शरीर के द्वारा होता है इसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उसके शरीर पंचतत्वों के द्वारा होता है अतएव यह शरीर परिच्छिन्न पूज्य है और सृष्टि के बाहर जो ब्रह्म अरूप है वह अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है।

शतपथ ने इस प्रकार समझा कर महावीर के पूजन में उठी हुई शंका को दूर कर दिया।

बनावट।

मूर्तिपूजा वेद से सिद्ध न हो जावे इसके लिये धर्म कर्म को तिलांजलि देकर मनुष्य बड़ी २ चालबाजियां करते हैं इनका कथन है कि वेद मूर्तिपूजन का स्वतः ही निषेध करता है, वेद में लिखा है कि—

न तस्य प्रतिमा अस्ति।

यजु० ३२। ३

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।

हमने देखा है कि ठग लोग पीतल के अंगूठी छल्ला आदि आभूषण लेकर उनको बहुत साफ करते हैं फिर कुंकुम आदि घिस कर उन पर सुर्खी की चमक ले आते हैं ऐसा करके उस जेवर के ऊपर कागज लपेटते हैं फिर उत्तम रेशमी कपड़े में बांध कर शहर से मील डेढ़मील के फासले पर जाकर सड़क पर डाल देते हैं और उसके आस पास घूमते रहते हैं, जब किसी अक्ल के बुद्धू को जांच लेते हैं तब उसके साथ २ बातें करते चल देते हैं, चलते २ जब जेवर के पास आते हैं तब ये उस दूसरे मनुष्य से कहते हैं कि यह क्या पड़ा है? इतना कह कर उठा लेते हैं, उसको समझाते हैं कि किसी से कहना नहीं वरना यहां हथकड़ी पड़ जायंगी और हम तुम आधा २ बांट लेंगे। इतना समझा कर ये बांटने के लिये उस सड़क से कुछ दूर पर ले जाते हैं वहां ले जाकर उसको अंदाजते हैं कि डेढ़ तोला का है तीस रुपये का हुआ, लाचारी यह है कि हमारे पास रुपया नहीं, नहीं तो हम आपको पन्द्रह रुपये दे देते। अब आप हमें रुपये दे दें और जेवर ले लें। अनेक बातें बना कर वह छल्ला उसको दे देते हैं और रुपये ठग कर छूमन्तर होते हैं। वह साधारण मनुष्य जब अपने गांव में जाता है और जेवर को अन्य मनुष्यों को दिखलाता है जब वे पीतल का बतला

देते हैं सुनार की जांच होने पर सिद्ध हुई पीतल को देख कर वह रोने लगता है। ऐसे ही अनेक मार्गों से चालाक लोग साधारण मनुष्यों को अपने धोखे में फंसा लेते हैं।

ये धोखेबाज माल लेने के लिये धोखा देते हैं किन्तु कई एक धूर्त चालाक वेद धर्म को संसार से उखाड़ फेंकने के लिये साधारण मनुष्यों को धोखे में फांस धर्म से गिरा रहे हैं। इन लोगों ने संसार को एक ही धोखा नहीं दिया किंतु धोखों के जंकशन रूप जाल में फांसा है पाठक ध्यान से पढ़ें।

प्रकरण विच्छेद

यहां पर वेद प्रकरण बांध कर ईश्वर का ज्ञान करा रहा है किन्तु इन लोगों के इस अनोखे अर्थ से प्रकरण का मतलब ही गायब हो जाता है आप प्रथम प्रकरण को पढ़ें।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

यजु० अ० ३२।

जिस ईश्वर का वर्णन पूर्वाध्याय में किया है,जिस ईश्वर की 'लक्ष्मी' और 'श्री' ये दो स्त्रियां बतलाई हैं वही ईश्वर अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म,वही जल और वही प्रजापति है।१। उसी पुरुष से समस्त त्रुट्यादि काल विभाग और विजली उत्पन्न हुई हैं अतः उस ईश्वर को ऊपर नीचे बराबरी में पकड़ने वाला कोई नहीं है।२।

पुरुषसूक्त के अंतिम मन्त्र 'श्रीश्चते' इसमें 'श्री' और 'लक्ष्मी' ईश्वर की स्त्रियां बतलाई हैं। अब 'तदेवाग्निः' इस मन्त्र से ईश्वर के व्यापकत्व और सर्वस्वरूपत्व से यह दिखलाया है कि अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियां हैं वे सब ब्रह्म की मूर्तियां हैं। 'सर्वेनिमेषा' इस मन्त्र में यह दिखलाया है कि काल विभाग और बिजलियां जो पैदा हुई हैं वे सब ब्रह्म से पैदा हुई हैं अर्थात् ब्रह्म सब जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' है। अब 'न तस्य' इस मन्त्र में यह कहना है कि ब्रह्म के तुल्य महत्व रखने वाली कोई वस्तु संसार में नहीं, काल-

आज धूर्त मनुष्यों के अर्थ से यह सब प्रकरण बिगड़ गया, ईश्वर की साकारता उड़ी और ईश्वर के जो 'श्री-लक्ष्मी' ये दो स्त्रियां थीं वे गायब हो गईं, वेद ने अग्नि आदित्यादि मूर्तियों को ब्रह्म बतलाया था अर्थात् इस मन्त्र में ब्रह्म का स्वरूप मूर्तिमान लिखा था उसका कचूमर निकल गया। इसके पश्चात् 'सर्वे निमेषाः' इस मन्त्र में काल विभाग और विजलियों का ईश्वर को 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' बतलाया था उसका मटियामेट होगया। इस प्रकार पूर्व के तीन मन्त्रों के अर्थ का जब स्वाहा हो गया तब यह अर्थ निकला कि 'ईश्वर के मूर्ति नहीं है'। यहां पर हम यह कह सकते हैं कि यह कार्य इन लोगों की गल्ती से नहीं हुआ किंतु जान बूझ कर किया गया। हमको तो इन धूर्तों का यह अभिप्राय जान पड़ा कि चाहे समस्त वेद का सत्यानाश हो जावे किंतु किसी प्रकार मूर्ति-पूजा का खण्डन हो, इस प्रकरण विच्छेद को कभी किसी मूर्तिपूजन का निषेध करने वाले ने जाना ? जाने तो वह जो वेद पढ़े, इनको तो विना पढ़े ही यह कहना है कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं है।

मिथ्यार्थ

इन धूर्तों का किया हुआ अर्थ सर्वथा मिथ्या है, इस मंत्र में 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ मूर्ति होता ही नहीं, यहां तो प्रतिमा का अर्थ तुल्य होता है। संसार के आरम्भ से आज तक जितने भी वेदज्ञाता हुये उन सब ने 'प्रतिमा' का अर्थ 'तुल्य' किया। इस पर उव्वट लिखते हैं कि 'न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किञ्चिद्विद्यते' उस ईश्वर की प्रतिमान भूत तुल्यता रखने वाला कोई नहीं है। महीधर 'प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किञ्चिद्वस्तु नास्ति' उस ईश्वर की प्रतिमा प्रतिमान तुल्यता वाली कोई वस्तु नहीं है। शंकर 'न तस्य प्रतिमा अस्तीति ब्रह्मणोऽनुपमानत्वं दर्शयति' 'न तस्य' इस मंत्र में ब्रह्म की तुल्यता का अभाव दिखलाया है। गिरिधर ने भाषा में 'प्रतिमा-समान' लिखा है। इसी प्रकार मिश्र भाष्य में 'प्रतिमा-तुल्यता न' लिखी है, ये प्रतिमा शब्द के तुल्य अर्थ की पुष्टियां हैं।

धोखेबाजों ने जो यहां पर 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ 'मूर्ति' किया है वह इतना असंभव है जैसे कि कोट का अर्थ ककड़ी और हैट का संतरा। इस असम्भव अर्थ में एक भी पुष्टि नहीं मिलती, शास्त्रार्थ में इसके विवाद पर इन लोगों के कण्ठ में प्राण आजाते हैं और अन्त में इनका पराजय हो जाता है। यजुर्वेद के 'सह-

स्त्रस्थ १५ । ६५' में जब 'प्रतिमासि' आया और इन को मालूम हुआ कि यहां पर मूर्ति अर्थ हो जाने से मूर्तिपूजा सिद्ध हो जावेगी तब घबराये कि यहां पर तो स्वामी दयानन्द जो ने भी 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' के मासि प्रमासि प्रतिमासि के भाष्य में लिख दिया कि "वेदेषु प्रतिमाशब्देन मूर्तयो न गृह्यन्ते" वेदों में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण नहीं होता, फिर 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण कैसे हो जावेगा ?

'न तस्य' जिस मन्त्र पर यह विवाद चल रहा है सत्यार्थप्रकाश में उसी मन्त्र के अर्थ में यह लिखा है कि 'जो सब जगत् में व्यापक है'। यह अर्थ वेद मन्त्र के किसी भी पद का हो नहीं सकता, लोगों ने वेद के बहाने से अपने मन का गढ़ा हुआ 'जो सब जगत् में व्यापक है' इतना लेख जबर्दस्ती से लिख दिया। मन्त्र के अर्थ में अपनी तरफ से इबारत मिला कर ठूंस देना वेद मन्त्र का गला घोटना है, ऐसे कार्य को वैदिक लोग सर्वदा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह वेद मन्त्र का अर्थ है या वेद के बहाने से मन मानी इबारत भोंकी गई है, इस अनधिकारचेष्टा पर विचार की दृष्टि से इनको एक दृष्टि डालनी चाहिये।

फिर इस में लिखा है कि 'उस निराकार परमात्मा की'। 'न तस्य' इस मन्त्र में "निराकार" इस इतने अर्थ को कहने वाला कोई पद नहीं-यह भी मनगढ़न्त है। यह वेदों का अर्थ किया जाता है या वेदमंत्र को आगे रखकर मन माना जाल बनाया जाता है, इस अन्याय का भी कुछ ठिकाना है ? धार्मिकनिर्णय में इतना स्वार्थ ?

फिर इस मन्त्र के अर्थ में 'प्रतिमा' शब्द के तीन अर्थ किये गये परिमाण, सादृश्य और मूर्ति। परिमाण ईश्वर का नहीं इसमें ईश्वर की उत्कर्षता है और सादृश्य में भी उत्कर्षता है, ये दोनों अर्थ ठीक हैं क्योंकि इनमें प्रमाण मिलते हैं किन्तु मूर्ति अर्थ में कोई प्रमाण नहीं, यह मूर्ति अर्थ सर्वथा ही चण्डूखानें की गप्प है, इस अर्थ को ये लोग कैसे सच मानते हैं। इसके लिये हम सन् १६१० से प्रमाण मांग रहे हैं किन्तु सर्वथा मिथ्या होने के कारण इनकी जबान और कलम दोनों रुक गई फिर ऐसे अनर्गल अर्थ को कोई विचारशील कैसे सत्य माने ?

हेतुवाद

"न तस्य" इस मन्त्र में हेतु भी है, मन्त्र का सीधा सीधा अर्थ यह है कि जो महत् यशवाला ईश्वर है उसके तुल्य कोई पदार्थ नहीं। जब यह विरुद्ध हेतु पड़ते देखा तो 'सत्यार्थप्रकाश' में 'यस्य नाम महद्यशः' यह पाठ ही नहीं लिखा। यदि हम इसको मिला लें तो सत्यार्थप्रकाश लिखित मन्त्रोक्त हेतु विरुद्ध हेतु हो जाता है क्योंकि अर्थ यह होगा कि 'जो ईश्वर महत् यशवाला है उसकी मूर्ति नहीं होती'। संसार में यशवालों की ही अधिक मूर्तियां देखने में आती हैं, रईसों के कमरों में हम यशवालों की ही मूर्तियां पाते हैं, कंगलों की मूर्तियां कम देखने में आती हैं। आज संसार में प्रभु पंचमजार्ज सब से अधिक यशवाले हैं अतएव नोट, रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, इकन्नी, पैसे और पाई तक पर इनकी मूर्ति पाई जाती है फिर यह कहना कि ईश्वर बड़े यशवाला है इसकारण उसकी मूर्ति नहीं--यह हेतु विरुद्ध--हेतु हो गया इसका इन लोगों के पास क्या जवाब है?

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने 'न तस्य' इस मंत्र के उत्तरार्ध को बिलकुल छिपा लिया पबलिक के आगे नहीं आने दिया इसका कारण कोई बतला सकता है? लेखक जानता है कि इस मंत्र के उत्तरार्ध में वेद ने मूर्तिपूजा का मण्डन किया है वह मण्डन पबलिक के आगे न चला जावे इस कारण उत्तरार्ध को छिपा लिया। मन्त्र इतना है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषमामाहिंसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः ॥३

यजु० अ० ३२

उस ईश्वर के तुल्य कोई नहीं जो महत् यशवाला है और जिसका 'हिरण्यगर्भ-मामाहिंसी-यस्मान्न जात:' इन मन्त्रों में वर्णन है।

इस मन्त्र में तीन मन्त्रों की प्रतीक हैं, मन्त्र के आरम्भ के कुछ अक्षर लिख कर पूरे मन्त्र और उसके भाव को याद करवाना उसको प्रतीक कहते हैं। उत्तरार्ध में सब से पहिले 'हिरण्यगर्भ इत्येष:' लिखा है। 'हिरण्यगर्भ:' यह मंत्र की प्रतीक है और इस प्रतीक का पूरा मन्त्र यह है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १३ । ४

हिरण्यगर्भ ईश्वर सृष्टि से पहिले वर्तमान थे वह प्रकट होकर समस्तभूत समूह के एक पति हुये । वह हिरण्यगर्भ द्युलोक और पृथ्वी को धारण किये है उस देव के लिये हम हवि देते हैं ।

'न तस्य' इस मंत्र में कहा था कि वह कौन ईश्वर है ? तो उत्तरार्ध ने बतलाया कि जिसका वर्णन 'हिरण्यगर्भः' मंत्र में है । अब हमने 'हिरण्यगर्भः' यह मंत्र टटोला, इस मंत्र में ईश्वर का शरीर धारण करना और मनुष्यों का उसको हवि देकर पूजन करना बतलाया फिर हम कैसे मान लें कि उसके मूर्ति नहीं ? "हिरण्यगर्भः" मंत्र तो ईश्वर की मूर्ति और पूजा दोनों का वर्णन कर रहा है । इतना ही नहीं किन्तु "हिरण्यगर्भः" इस मंत्र से मूर्ति निर्माण होकर उसका पूजन होता है । इस विषय में कात्यायन कल्पसूत्र लिखता है कि—

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतᳫं हिरण्यम-मृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः ॥१॥ उत्तानस्प्रा-ञ्चाᳫं हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति ।

कात्यायन कल्प सूत्र १७ । ४ । १३

'हिरण्यगर्भः' इस मंत्र के ऊपर शतपथ भी है उसको भी सुनिये-

अथ साम गायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमे-वापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥२२॥ ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथा-स्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वा व तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ॥२३॥ ते चेतयमाना एतत्सामापश्यंस्तदगायंस्तस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवा-स्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेन

मायमग्निर्हिं न सदिति ॥२४॥ अथ सर्पनामैरुपतिष्ठतइमे वै लोकाः सर्पाः ।

शत० ७ । ४ । १

सब देवताओं ने हिरण्मय पुरुष को सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्ण पुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक की समान है । तब फिर सब बोले कि इस हिरण्मय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो । सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें, वह देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्र रूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्र रूप साम को गाया तब उस हिरण्मय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया । इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य विधान करता है ।

पाठको ! अब आप ही बतलावें 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र में ईश्वर की मूर्ति का खण्डन है या मूर्तिपूजा का विधान । इन धोखेबाजों से तुम यह आशा न करो कि ये कभी विचार पर आवेंगे । इनका मतलब तो यह है कि कल्पसूत्र और शतपथ ब्राह्मण एवं समस्त भाष्य तथा वेद ये सब झूठे और ईसाई धर्म सही । इसी से ये वेद के परमशत्रु हैं । वेद वेद चिल्लाकर वेद से पीछा छुड़ाना चाहते हैं,जो चाहे सो करें क्योंकि इन्होंने लज्जा और धर्म को एकदम तिलांजलि दे दी किन्तु विचारशील मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते कि कात्यायन कल्प सूत्र और शतपथ ब्राह्मण को मिथ्या मान इनके बनावटी अर्थ को सत्य मान लें ।

'नतस्य' इस मंत्र में दूसरी प्रतीक "मामाहि ँ सी" है, इस प्रतीक का पूरा मंत्र यह है ।

मामाहिँ सीज्जनितायः पृथिव्या
यो वा दिवँ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १२ । १०२

जो प्रजापति पृथ्वी का उत्पन्न करने, सत्यधारण करने वाला द्युलोक को सृजन कर व्याप्त है और जो आदि पुरुष प्रथम शरीर जगत् का आल्हाद और तृप्त साधक जल को उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्यों का रचने वाला है वह प्रजापति मुझे मत मारे उस प्रजापति के निमित्त मैं हवि देता हूँ।

इस मंत्र में ईश्वर को "प्रथम शरीरी" कहा है। शरीर मूर्ति ही होता है फिर इसी मंत्र में ईश्वर को हवि देना लिखा, फिर हम कैसे मान लें कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र में मूर्तिपूजा का खण्डन है? जो लोग "न तस्य" मंत्र में मूर्तिपूजा का खण्डन बतलाते हैं वे संसार की आंख में धूल झोंक रहे हैं।

"न तस्य" इस मंत्र में तीसरी प्रतीक "यस्मान्नजात" यह है इसका मंत्र भी सुन लें।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳ रराण-
स्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥

यजु० ८। ३६

जिस पुरुष से दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं प्रादुर्भूत हुआ, जो सम्पूर्ण लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है वह षोडश कलात्मक सब भूतों का आश्रय जगत् का स्वामी प्रजा रूप से सम्यक् रमण करता हुआ प्रजा पालन के निमित्त अग्नि, वायु, सूर्य लक्षण वाली तीन ज्योतियों को अपने तेज से उज्जीवन करता है।

इस मंत्र में ईश्वर को प्रजारूप कहा। प्रजा में विना रूप के कोई पदार्थ रहता नहीं, समस्त रूप उसी से निकले हैं इससे वह मूर्तिमान् है, फिर मूर्ति का निषेध करना हठ नहीं तो और क्या है।

चालबाज लोग जानते हैं कि वेद का विवेचन बहुत कठिन है वह सभी मनुष्यों की समझ में नहीं आता ऐसे गंभीर विषय का कौन विचार करेगा। हमारी साधारण मोटी मोटी बातें मनुष्यों की समझ में आजावेंगी, हमारी इस चाल से मनुष्य मूर्तिपूजा और उसके कहने वाले वेद को तिलांजलि देकर हमारी सोसाइटी में नाम लिखवा लेंगे एवं हमारे चलाये हुये मजहब की जन संख्या बढ़ जावेगी किन्तु जब से यह उपरोक्त विवेचन इनके आगे पहुँचा है तब से अनेक विचार शील मनुष्य मूर्तिपूजा करने लग गये और जो लोग वेद

को बच्चों का खेल समझते हैं जिनका मतलब वेद वेद चिल्लाकर संसार को नास्तिक बनाना है उनका दिल इतना कमजोर होगया है कि प्रथम तो वे शास्त्रार्थ में नहीं आते, यदि किसी कारण आ भी जावें तो इस विवेचन को सुनते ही ऐसे बैठ जाते हैं कि जैसे अत्यन्त बूढ़ी भैंस बैठ जाती हो। अब हम पाठकों से पूछते हैं कि आप ही बतलाइये 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन है या मण्डन? धूर्त लोग संसार को ईसाई बनाने के लिये वेद का कतल करना चाहते हैं इस कारण वेद मंत्रों को चुरा कर, वेद में धोखा दे अपने धर्म और ईमान को बेच जबर्दस्ती से वेद में से मूर्तिपूजा का खण्डन निकालते हैं, इनके इस कर्तव्य पर प्रत्येक मनुष्य की आंख से रुधिर के आंसू बह निकलते हैं।

वेद वेद चिल्लाकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने वाले प्रत्येक स्थल पर झूठ बोल, चालाकी कर, धोखा दे अपने धर्म कर्म का कचूमर निकाल जबर्दस्ती से वेद से ईसाई धर्म सिद्ध कर रहे हैं ऐसे चालबाजों की चालबाजियों और धोखे से बचना प्रत्येक मनुष्य का काम है। जब इन्होंने देखा संभव है किसी समय में संसार 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र के अर्थ का विवेचन कर बैठे और हमारे समस्त जाल का मटिया मेट हो जावे तब तो हमारे पास मूर्तिपूजन के खण्डन में कोई जाल ही न रहेगा यह विचार कर इन्होंने एक दूसरा बनावटी जाल बनाकर तैयार किया जरा उसकी भी बानगी देखनी होगी।

बहुत दिनों की बात है हम भागलपुर जा रहे थे रास्ते में एक स्टेशन से दो मनुष्य हमारी गाड़ी में आबैठे, उनके साथ में हारमोनियम और तबला भी था, बैठने पर बातचीत होने लगी; मालूम हुआ कि एक मनुष्य तबला बजाता है और दूसरे मनुष्य किसी धार्मिक सोसाइटी के भजनोपदेशक हैं। जब बातें हो चुकीं तब उन्होंने तबलची से कहा कि तबला ठीक करो पंडित जी को एक भजन सुनावें। तबला और हारमोनियम मिलाये गये, गाना आरंभ किया गया और एक भजन गाया जिसका आरम्भ यह है कि—

तुम्हीं हो मूर्ति में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
कहो भगवान पर भगवान भला क्योंकर चढ़ाऊं मैं॥

भजन बहुत बड़ा है पूरा हुआ, पूर्ण होने पर भजनोपदेशक ने हम से पूछा कि कहिये पंडित जी भजन कैसा है? हमने कहा अच्छा है। उन्होंने फिर पूछा कि भजन में कोई गलती हो तो बतला दीजिये? इसके उत्तर में हमने कहा

कि गलती तो अवश्य है,पहिली कड़ी को सुधार दीजिये,उसने कहा कैसा बनादें ?
हमने उत्तर दिया कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
कहो भगवान में भगवान भला क्योंकर धंसाऊं मैं॥

यह बना दो। भजनोपदेशक बोले इससे क्या होगा ? हमने बतलाया कि जो कुछ होना होगा आठ दश दिन में हो जायगा। रामनाम सत्य को छोड़ कर और क्या होगा ? अच्छी फिलास्फी निकाली, दुनियां की प्रलय ही कर डाली, अब दुनियां जियेगी कैसे ? काम तो सब बन्द ही हो जायंगे। दुनियां चलेगी तो पैर के ईश्वर से पृथ्वी का ईश्वर दब जायगा, बैठेगी तो आदमी के ईश्वर से चारपाई का ईश्वर दबा धरा है,पाखाना फिरेगी तो ईश्वर में से ईश्वर निकल भागेगा, पेशाब करेगी तो पेशाब का व्यापक ईश्वर लुढ़क चलेगा। चूल्हे में आग सुलगा नहीं सकते, नहीं तो चूल्हे में व्यापक ईश्वर के भीतर लड़कीवाला ईश्वर जल जाय। स्वांस ले नहीं सकते, ऐसा करने पर वायु व्यापक ईश्वर पेट व्यापक ईश्वर में जाकर ठोकर लगा देगा। बस आज से सब काम बन्द करो और सीधे टिकट कटा कर यमराज के वेटिंग रूमों में पहुँचो। भजन बनाने वाले ने चाहा था कि हम मूर्तिपूजा को छुड़वा दें किंतु यहां दुनियां ही छूट चली। भला जब ये ऐसी २ चालाकियों से संसार की आंख में धूल झोंक कर वेद को उड़ाना चाहते हैं तो फिर वेद में धोखा क्यों न देंगे ? जालसाज़ी को छोड़ कर और तो इनके पास कुछ है ही नहीं ? मूर्तिपूजन के उड़ाने के लिये जो इन्होंने वेद से दूसरा जाल बनाया है वह यह है।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इवते तमो य उ सम्भूत्याᳬरताः॥

यजु० ४०। ६

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं

इस अर्थ को वेद मंत्र ही बनावटी सिद्ध कर देता है। इस अर्थ में संभूति और असंभूति इन दो पदों के अर्थों में घपला मचा कर वेद से मूर्तिपूजा का खण्डन निकाला गया है।

इस मन्त्र का देवता आत्मा है। जाली अर्थ में आत्मा परक अर्थ ही नहीं बनता। वेद मंत्र का जो देवता होता है वही मन्त्र का वर्णनीय विषय होता है, नये अर्थ में वेद के साथ यह अन्याय किया गया है कि जो आत्मा के वर्णन को उड़ा कर प्रकृति और लकड़ी पत्थर का वर्णन कर दिया। बोलो इस अन्याय से दुःखी होकर वेद किसके आगे रोवे? इस मन्त्र के अर्थ से जबर्दस्ती से मूर्तिपूजा का खण्डन निकाला, इसमें तो नास्तिक और शुष्क वेदान्तियों का खण्डन है। अर्थ देखिये—

'जो असंभूति शरीर की उपासना करते हैं जिनका सिद्धान्त यह है कि शरीर से भिन्न और कोई जीवात्मा नहीं है इस कारण शरीर की ही पुष्टि करो वे नरक को जाते हैं' यह तो नास्तिकों का खण्डन हुआ। अब उत्तरार्द्ध का अर्थ सुनिये 'जो संभूति केवल आत्मज्ञान में रत हैं, अपने आपको ब्रह्म मानते हैं और कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड को सर्वथा छोड़ देते हैं वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं।'

मंत्र का अर्थ यह है, इस मन्त्रार्थ में पूर्वार्द्ध में भी आत्मा का वर्णन और उत्तरार्द्ध में भी आत्मा का वर्णन। वर्तमान काल में उव्वट, महीधर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सायण, गिरिधर और मिश्र भाष्य उपलब्ध होते हैं उन सब में यही अर्थ है फिर इनकी जबर्दस्ती कैसे चलेगी? वेद स्वतः कहता है कि—

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदो भयछं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते॥

यजु० ४० । ११

जो योगी आत्मा, विनाशी शरीर इन दोनों को मिले हुये जानता है वह शरीर से मृत्यु को जीत कर आत्मा में मोक्ष को पाता है।

इस मन्त्र में 'संभूति' शब्द का अर्थ 'आत्मा' और 'असंभूति' शब्द का अर्थ 'शरीर' स्पष्ट है फिर किसी का बनाया बनावटी अर्थ कैसे सत्य सिद्ध होगा? जब वेद ही इस मन्त्र में 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' मन्त्र के दूषणों को दूर कर देने

के लिये कल्याणकारी मार्ग बतलाता हुआ मन्त्रोक्त शब्दों पर स्पष्ट करण की दृष्टि डाल रहा है।

जब 'अन्धन्तमः' मन्त्र पर बनाये हुये जाल का भण्डाफोड़ हो जाता है तब लाचार होकर वेद के दुश्मन यह कहने लगते हैं कि ईश्वर तो निराकार है, निराकार की मूर्ति कैसे बनेगी ? पाठकवर्ग ! यह इनकी तीसरी चालाकी है इसकी कलई खोलने के लिये ईश्वर स्वरूप ही तोष दायक है उसके पढ़ने से पता लगेगा कि ईश्वर निराकार है या साकार ? उसके पढ़ने से यह भी पता लग जायगा कि चालबाज लोग वेद के अभिप्राय को छिपाने और हिन्दुओं को नकली ईसाई बनाने के लिये कैसे २ घृणित मार्गों का अवलम्बन करते हैं। वेद में मूर्तिपूजा का वर्णन है इसको आप ऊपर पढ़ चुके अब शिवलिङ्ग विवेचन को पढ़ें।

शिवलिंगपूजा

वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" मानता है। इस विषय को हमने अवतार, मूर्तिपूजा, सृष्टयुत्पत्ति और "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" इन विषयों के लेखों में स्पष्ट कर दिया है। यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्व वेद काण्ड ११ में शङ्कर को ब्रह्म तथा सर्वस्वरूप कहा है। वेद और पुराणों में शङ्कर को अष्टमूर्ति लिखा है। शङ्कर की वे अष्ट मूर्तियां प्रकृति, महतत्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी हैं। इन्हीं अष्ट मूर्तियों में शङ्कर का पूजन होता है, चाहे शङ्कर का पूजन प्रकृति में करो या महतत्व में अथवा अहंकार या आकाश में, वायु वा अग्नि में, स्थूल पदार्थों में करना चाहो तो जल और पृथ्वी में करो किन्तु जो मनुष्य अष्टधा प्रकृति में इकट्ठा ही शंकर का पूजन करे उसके लिये ब्रह्माण्ड का पूजन है क्योंकि ब्रह्माण्ड इन अष्ट प्रकृतियों से बना है। ब्रह्माण्ड का पूजन कैसे हो यह बहुत बड़ा है, इसका छोटा रूप ऋषियों ने शिवलिङ्ग बनाया। शिवलिङ्ग ब्रह्माण्ड का नकशा है, जैसे यह ब्रह्माण्ड ऊपर से नीचे तक और चारों तरफ कुछ गोल होता है, इसी प्रकार शिव के लिङ्ग की आकृति का वर्णन है। बस सिद्ध हुआ कि लिङ्ग क्या है ब्रह्माण्ड का नकशा है और ब्रह्माण्ड में अष्ट प्रकृति विद्यमान रहती हैं, एक शंकर के लिङ्ग पूजन से एक दम आठ प्रकृतियों का पूजन होजाता है। इस अभिप्राय से संस्कृत साहित्य में शिवलिङ्ग पूजन लिखा है। लौकिक ग्रन्थों

में योनि और लिङ्ग इन शब्दों से स्त्री पुरुष की मूत्रेन्द्रिय का भी बोध होता है किन्तु वेद पुराण और दर्शन इनमें इन अर्थों का बोध नहीं होता। शिवपुराण ने शिवलिङ्ग कितने हैं इसका भी विवरण लिख दिया है।

लिंगानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः ।
तदेव लिंगं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥२७
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम् ।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते ॥२८
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे ।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिंगानि सुबहूनि च ॥२९
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः ।
भूविकाराणि लिङ्गानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ॥३०
स्वयंभूलिंगं प्रथमं विन्दुलिङ्गं द्वितीयकम् ।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिंगं तु पंचमम् ॥३१
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै ।
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो वीजं वै नादरूपतः ॥३२
स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्यव्यक्त एव सः ।
स्वयं भूतं जातमिति स्वयंभूरिति तं विदुः ॥३३
तल्लिंगपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते ।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थंडिलेऽपि वा ॥३४
स्वहस्ताल्लिखितं लिङ्गं शुद्धप्रणवमंत्रकम् ।
यंत्रलिंगं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ॥३५
विन्दुनादमयं लिंगं स्थावरं जंगमं च यत् ।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ॥३६

शिवपुराण विद्येश्वर सं० अ० १८

शंकर का प्रथम लिंग प्रणव (ओंकार) है, गीता, उपनिषद् और पुराणों

में भूरि भूरि इस लिंग का महत्व वर्णन किया गया है। शंकर का यह लिंग आर्यसमाजियों को बड़ा प्रिय है, जो कोई आर्यसमाजी किताब, विज्ञापन, चिट्ठी लिखता है इन सब लेखों में सब से ऊपर इस लिंग की स्थापना करता है, यह इतना प्रिय है कि प्रत्येक आर्यसमाजी पीतल का बनवा कर शंकर के इस लिंग को मस्तक पर टोपी में लगा कर अपना गौरव समझता है। कहिये, अब तो लिंग को बुरा बतलाने वालों के मस्तक में ही शिवलिंग चढ़ बैठा, क्या इसको शिव की मूत्रेन्द्रिय समझ कर आर्यसमाजी मस्तक पर धारण करते हैं? यह लिंग केवल आर्यसमाजियों की कामनाओं का परिपूर्ण करने वाला नहीं है वरन् चाहे कोई मनुष्य किसी मत का हो जो भक्ति द्वारा इसका पूजन करेगा यह उसकी कामनाओं को परिपूर्ण कर देगा ॥ २७ ॥ प्रणवरूप जो शंकर का लिंग है वह अतिसूक्ष्म है अतएव निष्कल है और शंकर का स्थूल लिंग यह समस्त ब्रह्माण्ड है, इसी को पंचाक्षर लिंग कहते हैं ॥ २८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल इन दोनो लिंगों की जो पूजा है ये दोनों ही पूजा तप हैं एवं साक्षात् मोक्ष की देने वाली हैं। पौरुष (विराट् रूप) प्रकृति तथा 'भूतानि' आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सादा और पाषाणरूप ये शंकर के अनेक लिंग हैं ॥२९॥ इन लिंगों के वर्णन में इतनी आधिक्यता है कि उनका वर्णन शिव ही कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं परन्तु पृथ्वी विकार के लिंग मैं मति अनुसार तुम से कहता हूँ ॥३०॥ स्वयंभू लिंग १, विन्दु लिंग २, प्रतिष्ठा किये लिंग ३, चर लिंग ४, गुरु लिंग ५ ॥३१॥ देवता और ऋषियों के तप से सन्तुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होने को पृथ्वी के अन्तर्गत वीज और नादरूप से रहने हारे शिव जी ॥३२॥ जिस प्रकार अंकुर पृथ्वी को भेद कर निकलते हैं इसी प्रकार पृथ्वी के अन्तर से निकले हुये लिंग को स्वयम्भू लिंग कहते हैं ॥३३॥ उस लिंग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है, सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी अथवा वेदिका में ॥३४॥ अपने हाथ से लिखे हुये, शुद्ध प्रणव युक्त मंत्र और लिंग को यंत्र पर लिख कर उसकी प्रतिष्ठा तथा आवाहन करे ॥३५॥ यही विन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगम रूप है भावना से ही इसमें निःसन्देह शिव का दर्शन होता है ॥३६॥

बस इतने ही लिंगों के पूजने की विधि है तथा इतने ही लिंग पूजे जाते हैं। शंकर लिंग के चारो तरफ जलहरी होती है, यह जल को बाहर नहीं जाने देती इससे इसका नाम जल हरी है। जल हरी का अपभ्रंश जलहरी है। यह

सप्तावरण का नक़शा है, ब्रह्माण्ड के चारो तरफ सात आवरण रहते हैं वे ब्रह्माण्ड की चोज को आवरण से बाहर नहीं जाने देते, उनका ही नकशा यह जलहरी है-यह वेद-शास्त्रों का अभिप्राय है। इससे भिन्न लिंग-जलहरी का जो कोई मनमाना अर्थ करता है वह मिथ्या और अमान्य है।

आर्यसमाज।

मूर्तिपूजा के विषय में आर्यसमाज का सिद्धान्त नीचे दिखलाता हूँ। देखिये—

(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहां से चली ? (उत्तर) जैनियों से (प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई ? (उत्तर) अपनी मूर्खता से। (प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीवका भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है (उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है। इसलिये इनका खण्डन १२ वें समुल्लास में करेंगे। (प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्ति के सदृश वैष्णवादि की मूर्तियां नहीं हैं। (उत्तर) हां यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिये जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाईं क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियां नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं उनसे विरुद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयाशक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फंसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमाने असंभव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये। उनका नाम 'पुराण' रख कर कथा भी सुनाने लगे। और फिर ऐसी २ विचित्रमाया रचने लगे कि पाषाण की मूर्तियां बना कर गुप्त कहीं पहाड़ वा जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझको रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मीनारायण और भैरव हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं। हमको वहां से ला, मन्दिर में स्थापना

कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवांछित फल देवें। जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहां पर है? तब तो पोप जी बोले कि अमुक पहाड़ वा जंगल में है चलो मेरे साथ दिखला दूं। तब तो वे अन्धे उस धूर्त के साथ चलके वहां पहुँच कर देखा। आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है, अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्तियां स्थापन कीं (प्रश्न) परमेश्वर निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करें तो मूर्ति के सन्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है? (उत्तर) जब परमेश्वर निराकार, सर्व व्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और बनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचना युक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं उनको देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं। अब देखिये! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जानके कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस

अन्तर्यामी के न्याय से विना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा। और नामस्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी २ कहने से मुंह मीठा और नींव२ कहने से कडुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो वह रीति झूठी है। (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है ? (उत्तर) वेद विरुद्ध। (प्रश्न) भला अब आप हमको वेदोक्त नाम स्मरण की रीति बतलाइये ? (उत्तर) नाम स्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

(प्रश्न) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है ? (उत्तर) हां २ झूठी। क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीर धारण रहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वव्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुण रहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आसकता है ? आता जाता वह है जो एकदेशीय हो और जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है। (प्रश्न) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किंतु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है। (उत्तर) जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में

परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना [देखो ! यह] कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जला के क्यों देते ? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न, जलादि में है क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य को करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये 'भाव' सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत दुग्ध-दधि आदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मरजाते हो ? इस लिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसा करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसे समझना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो (प्रश्न) अजी जब तक वेद मन्त्रों से आवाहन नहीं करते तब तक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है (उत्तर) जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आजाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं होजाती ? और विसर्जन करने से चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहां से आता और कहां जाता है ? सुनो अन्धो !

पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्र बल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुये पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई भोले भाले लोगो! ये पोप जी तुमको ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है। (प्रश्न)

प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।
आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इत्यादि वेद मन्त्र हैं क्यों कहते हो नहीं हैं? (उत्तर) अरे भाई! बुद्धि को थोड़ी सी तो अपने काम में लाओ! ये सब कपोल कल्पित वाममार्गियों की वेद विरुद्ध तन्त्र ग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियां हैं। वेद वचन नहीं। (प्रश्न) क्या तन्त्र झूठा? (उत्तर) हां सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्ति विषयक वेदों में एक मन्त्र भी नहीं वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादिमूर्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाण की मूर्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं। (प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्ति के होने ही से खण्डन हो सकता है। (उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वविधि नहीं होता? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥१

यजुः अ० ४० मं० ६

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ २ ॥

यजुः अ० ३२ मं० ३

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५

केनोपनि०

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं ॥१॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥२॥ जो वाणी की इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥१॥ जो मन से इयत्ता करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी को ब्रह्म तू जान और उसी की उपासना कर, जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥२॥ जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ॥३॥ जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर ॥४॥ जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है

उसकी उपासना मत कर ॥५॥ इत्यादि बहुत से निषेध हैं। निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। 'प्राप्त' का जैसे कोई कहीं बैठा हो उसको वहां से उठा देना। 'अप्राप्त' का जैसे हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुवें में मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना, विद्याहीन मत रहना इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त, परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है इसलिये पाषाणादि मूर्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है। (प्रश्न) मूर्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है? (उत्तर) कर्म दो ही प्रकार के होते हैं विहित-जो कर्तव्यता से वेद में सत्य भाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध-जो अकर्तव्यता से मिथ्या भाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं? (प्रश्न) देखो? वेद अनादि हैं, उस समय मूर्ति का क्या काम था? क्योंकि पहिले देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं लासके, और मूर्ति का ध्यान तो कर सकते हैं इसकारण अज्ञानियों के लिये मूर्तिपूजा है क्योंकि सीढ़ी २ से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहली सीढ़ी छोड़ कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जासकता इसलिये मूर्ति प्रथम सीढ़ी है इसको पूजते २ जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा :जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता २ पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता २ पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियां गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं (उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेद विरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो २ ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेद निन्दकः ।१।

मनु० २। ११

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।२।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।३।

मनु० अ० १२ [६५ । ६६]

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान,त्याग,विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है।१। जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःख सागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल,असत्य,अन्धकार रूप इसलोक और परलोक में दुखदायक हैं ॥२॥जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥३॥ इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर जैमिनि महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेद विरुद्ध होने से झूठे हैं जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं उनमें कही हुई मूर्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है इसलिये ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं २ मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हां छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्य भाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है किन्तु मूर्तिपूजा करते २ ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके बहुत २ से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थक नष्ट हो जायंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टि विद्या है। इसको बढ़ाता २ ब्रह्म को भी पाता है और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा। (प्रश्न) साकार में मन स्थिर होता

और निराकार में स्थिर होना कठिन है इसलिये मूर्तिपूजा रहना चाहिये। (उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक २ अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता २ आनन्द में मग्न होकर स्थिर होजाता है और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है। दूसरा-उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। तीसरा-स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। चौथा-उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है। पांचवां-नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं। छठा-उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं। सातवां जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्ट बुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे। आठवां-भ्रान्त होकर मन्दिर २ देश देशान्तर में घूमते २ दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं। नववां-दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, पर स्त्री गमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। दशवां-माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं। ग्यारहवां-उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब

हा हा करते रोते रहते हैं। बारहवां-पूजारी परस्त्रियों के संग और पुजारिन पर पुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं। तेरहवां-स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। चौदहवां-जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जडबुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है। पन्द्रहवां-परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं उनको पुजारी जी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल कर सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धि युक्त पदार्थ रचे हैं? सोलहवां-पत्थर पर चढ़े हुये पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं ऐसे २ अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं इस लिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे। (प्रश्न) किसी प्रकार की मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्यावर्त में पंचदेव पूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उसका यही पंचायतन पूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य की मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतन पूजा है वा नहीं? (उत्तर) किसी प्रकार की मूर्तिपूजा न करना किन्तु मूर्तिमान् जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है परन्तु विद्याहीन मूढ़ों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तिपूजा है, सुनो—

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥१॥

यजु० अ० १६ मं० १५

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥२॥

अथर्व० कां० ११ व० ५ मं० १७

अतिथिर्गृहानागच्छेत ॥३॥

अथर्व० कां० १५ व० १३ मं० ६

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥४॥

ऋग्वेदे

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ।५।

तैत्तिरीयोपनि० वल्ली० १ अनु० १।

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥६॥

शतपथ० कां० १४ प्रपाठ० ६ ब्राह्म० ७ कंडिका १०

मातृदेवो भव पितृदेवो भव
आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥७॥

तैत्तिरीयो० व० १ अनु० ११

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥८॥

मनु० अ० ३ । ५५

पूज्यो देववत्पतिः ॥६॥

मनुस्मृतौ

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना । दूसरा पिता सत्कर्तव्यदेव उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥१॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी ॥२॥ चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥३॥ पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय है ॥८॥ ये पांच मूर्तिमान देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है । ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां

हैं । इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरक गामी हैं । (प्रश्न) माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ? (उत्तर) पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है । बड़े अनर्थ की बात है कि सी साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुख दायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खालेंगे और भेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा । इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घंटा नाद टं टं पूं पूं शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमङ्गुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे वैसी ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है । मूढ़ों को चटक मटक, चलक झलक, मूर्तियों को बना ठना, आप वेश्या वा भंड़ुआ के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं । जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने बनावे और घर रचने आदि कामों में लगा के खाने पीने को देता, निर्वाह कराता । (प्रश्न) जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी ? (उत्तर) नहीं हो सकती क्योंकि वह मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार-शक्ति घट जाती है विवेक के विना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती और जो कुछ होता है सो उनके संग उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है क्योंकि जिसका गुण दोष न जानके उसकी मूर्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती, प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है, ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त्त में निकम्मे पूजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुये हैं, वे मूढ़ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्होंने फैलाई है । झूठ छल भी बहुत सा फैला है । (प्रश्न) देखो काशी में 'औरंगजेब' बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े २ चमत्कार दिखलाये थे, जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उनपर तोप गोला आदि मारे तब बड़े २ भमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया । (उत्तर)

यह पाषाण का चमत्कार नहीं किन्तु वहां भमरे के छत्ते लग रहे होंगे, उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं और जो कूप की धारा का चमत्कार होता था वह पुजारी जी की लीला थी। (प्रश्न) देखो महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे, क्या यह भी चमत्कार नहीं है ? (उत्तर) भला जिसका कोटपाल कालभैरव, लाटभैरव आदि भूतप्रेत और गरुड़ आदि गण उन्होंने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाये ? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि वे बिचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते ? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ते फोड़ते हुये काशी के पास आये तब पुजारियों ने उस पाषाण के लिंग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राजा के मंदिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पोपमाया है।

(सत्यार्थ० समु० ११ पृष्ठ २१२ से २२४ तक)

विवेचन

यहां पर स्वामी जी ने "न तस्य प्रतिमा अस्ति" और "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इन दो वेद मंत्रों से मूर्तिपूजा का खण्डन दिखलाया है। इस विषय में हम ऊपर लिख आये हैं कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र में तो मूर्तिपूजा का विधान है और 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' इस मन्त्र का देवता आत्मा है इस कारण इसमें काष्ठ-पत्थर के पूजने का निषेध हो नहीं सकता। मंत्र में तो आत्मा का ही वर्णन रहेगा किंतु स्वा० दयानन्द जी ने देखा कि वेदों के जानने वाले तो बहुत कम हैं, मूर्ख मनुष्य हमारे जाल को समझेंगे नहीं, मूर्तिपूजा का निषेध देखते ही आर्यसमाजी बन जावेंगे-बस इस करामात को आगे रख स्वामीजी ने आर्यसमाजियों की आंख में धूल झोंकी है।

यहां पर स्वामी जी ने "अजएकपात्" और "अकायम्" इन दो मंत्रों का भी इशारा कर ईश्वर को अजन्मा और शरीर रहित सिद्ध किया है। हम यह अवतार प्रकरण में लिख आये हैं कि "अजएकपात्" यह मंत्र ईश्वर को अजन्मा

कहता है किन्तु वह अजन्मा ईश्वर शरीर धारण करता है इस को "प्रजापतिश्चरति गर्भे" मंत्र कह रहा है। रही बात "अकायम्" की हमने अवतार प्रकरण में यह उत्तम रीति से दिखला दिया कि इसी मंत्र में "परिभूः" "स्वयम्भूः" शब्दों से ईश्वर को साकार बतलाया है। इस से भिन्न जो सैकड़ों मन्त्र ईश्वर को साकार बतला रहे हैं वे भी हमने अवतार प्रकरण में दिखला दिये, उनका जवाब भी आर्यसमाज के पास कुछ नहीं है, उन मन्त्रों को स्वामी जी पबलिक के सामने नहीं आने देते, चुरा लेते हैं, बस चोरी के अवलम्ब पर ही स्वा० दयानन्द जी ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं-यह आर्यसमाज के लिये अत्यन्त लज्जा की बात है। कहीं चोरी करने से भी कोई धर्म चल सकता है ? क्या चोर लोग संसार की दृष्टि में कुछ इज़्ज़त पा सकते हैं ? क्या इन बातों को आर्यसमाजी नहीं समझते ? समझते सब हैं किन्तु करें क्या मूर्खतावश स्वामी जी के जाल में फंस गये, अब आफंसे सो आफंसे। सच्ची बात ग्रहण करने में स्वामी जी तथा आर्यसमाजियों की इज़्ज़त की कौड़ियां नहीं मिलतीं इस कारण कुछ न कुछ हुज्जतबाज़ी आगे रख, जाल बना, चालाकी का अवलम्बन कर, झूठ बोल, धर्म को तिलांजलि दे स्वामी के चलाये नकली ईसाई धर्म को वैदिक ही कहते रहते हैं।

स्वामी जी ने "मातृमान्" "आचार्यो ब्रह्मचर्येण" "अतिथिर्गृहानागच्छेत्" "अर्चत प्रार्चत" इत्यादि मन्त्र देकर यह सिद्ध किया है कि माता-पिता आचार्य अतिथि और पांचवें स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूज्या है, इन्हीं को पूजना, मूर्ति कभी न पूजना। इन मन्त्रों में माता-पिता-आचार्य-अतिथि और पति वेद ने पूज्य बतलाये हैं। वेद ने मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं किया, मूर्तिपूजा का खण्डन स्वा० दयानन्द जी वेद का धोखा देकर अपनी तरफ से लिख रहे हैं, ऐसी धोखेबाजी न करें तो आर्यसमाजियों से महर्षि की पदवी कैसे पावें ? वेद मूर्ति और माता पिता दोनों का पूजन बतलाते हैं, मूर्ति का पूजन किस अवलम्ब पर छोड़ा जावे इसका कोई भी कारण न बतला कर स्वामी जी मूर्तिपूजा का छोड़ देना लिखते हैं, इस लिखने का खास प्रयोजन यह है कि आर्यसमाजी धीरे धीरे वेदों के कट्टर दुश्मन बन जावें।

यहां पर स्वामी जी ने यह मजा किया कि पति के लिये उसकी स्त्री को पूज्या लिख दिया। कहो स्वामी जी कितने धर्मात्मा हैं जो कल्याण देने वाले

ईश्वर के पूजन को तो यता बुलाते हैं और अपने प्यारे आर्यसमाजी शिष्यों को स्त्री के पूजने का उपदेश लिखते हैं। यह बात हमको आज ही मालूम हुई कि आर्यसमाजी चारपाई से उठते ही अपनी पत्नी के पैरों में शिर रखते हैं, उसको अर्घ्य-पाद्य देते हैं, फिर साबुन लगा कर स्नान करवाते हैं, चन्दन लगा आंख में अंजन आंजते हैं, कपड़े पहिनाते हैं बाद में भोग रखते हैं पश्चात् धूप-दीप देकर पुष्पांजलि और उसके बाद परिक्रमा कर आरती गाते हैं कि "जय औरत माता माई जय औरत माता। वेद की आरति गाऊं तुम मुक्ती दाता"।

धन्य है स्वामी जी महाराज तुमको, तुमने इन आर्यसमाजियों को ऐसा ठिकाने बिठलाया कि ये भी तुमको जन्म भर भूल नहीं सकते। औरत के पुजारी आर्यसमाजियो! दयानन्दोक्त पत्नीपूजन तुम क्यों नहीं करते? याद रक्खो यह तुम्हारे लिये स्वामी जी ने धर्म बतलाया है, धर्म को जो तुम छोड़ दोगे तो नरक को जाओगे? कृपा कर नरक से बचो और दोनों वक्त अपनी स्त्री का पूजन करो इसी में तुम्हारा कल्याण होगा? आर्यसमाजी भी इतने भक्त हैं कि स्त्री की कौन कहे यदि स्वामी जी गधे का पूजन लिख जाते तो आर्यसमाजी उसको वैदिक ही बतलाते? कुछ भी हो मूर्तिपूजन तो स्वामी दयानन्द जी का भी उड़ाया न उड़ा, ईश्वर का पूजन नहीं तो औरत का ही पूजन सही, पूजन तो रहा? कोई एक मनुष्य यह कहेंगे कि स्त्री के पूजन में लाभ है क्योंकि वह चेतन है आकर प्रसन्न होगी और वरदान देगी, उसके वरदान से मुक्ति मिलेगी, जड़ मूर्तियों के पूजने में क्या रक्खा है? इसका उत्तर यह है कि औरत के जिस शरीर का पूजन किया जाता है वह भी जड़ है, जड़ का पूजन तो बना ही रहा। कोई एक आर्यसमाजी कह देंगे कि स्त्री के जड़ शरीर में चेतन आत्मा है, यदि ऐसा है तब तो मूर्ति का पूजन भी ठीक है क्योंकि जड़ मूर्ति में ईश्वर व्यापक है और उस व्यापक ईश्वर को सभी ने चेतन माना है। पूजन के स्थान दोनों ही जड़ हैं, जड़ शरीर के ज़रिये से जैसे औरत का व्यापक आत्मा प्रसन्न होकर आर्य-समाजियों को मोक्ष देता है ऐसे ही जड़ मूर्ति के ज़रिये से उसमें व्यापक ईश्वर प्रसन्न होकर वैदिक लोगों को मोक्ष देता है।

स्वामी जी ने "यद्वाचानभ्युदितम्" इत्यादि केनोपनिषद् की पांच श्रुतियां देकर ब्रह्म को इन्द्रिय ज्ञान में नहीं आने वाला बतलाया है और इसी को लेकर

मूर्तिपूजा का खण्डन कर दिया है इसमें हमारी कुछ शंकायें हैं उनको हम नीचे लिखते हैं।

(१) स्वा० दयानन्द जी केवल चारसंहिताओं को स्वतः प्रमाण मानते हैं उपनिषदों को नहीं ? उपनिषद् वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जो ईश्वर को निराकार कहे ऐसी दशा में केन की श्रुतियों का वेदानुकूलत्व क्या लट्ठ के जोर से सिद्ध होगा ? यह स्वामी दयानन्द जी की चालबाजी है कि जिस वेद में सैकड़ों मंत्र अवतारों के रहते हुये निराकार प्रतिपादक केन की श्रुतियों को वेदानुकूल मानलें।

(२) इन्हीं श्रुतियों के आगे मूल में यक्षावतार का वर्णन आता है। यक्षावतार के वर्णन करने वाली श्रुतियों को बेवकूफ ईश्वर की बेवकूफी समझ छोड़ दिया और निराकार प्रतिपादक श्रुतियों को ले लिया, स्वामी जी की इस चालबाजी पर आर्यसमाजियों को लज्जा आनी चाहिये।

(३) जब वेद ब्रह्म को रूप और अरूप कह रहा है तब उसके रूप प्रतिपादक मंत्र पबलिक् के आगे नहीं आने पाते, स्वामी दयानन्द जी का यह धोखा देना क्या पाप नहीं है ?

(४) यदि ब्रह्म हमेशा न आंख से दीखता है, न कान से सुनाई देता है न वाणी उसको कह सकती है और न वह किसी के मन में आता है तो फिर ऐसे ब्रह्म का ध्यान पूजन कोई कैसे कर सकेगा ? निराकार का ध्यान आज तक कभी हुआ नहीं और आगे को कभी हो नहीं सकता फिर स्वा० दयानंद जी निराकार का ध्यान पूजन लिखते कैसे हैं।

ध्यान विधायक सर्वोत्तम ग्रन्थ पातञ्जलियोगदर्शन है उसमें लिखा है कि—

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥३९॥

योग० पा० १

अत्यन्त प्रिय पदार्थ के ध्यान से मन स्थिर होता है।

इसके आगे योगदर्शन रूप रहितपदार्थ के ध्यान का निषेध करता हुआ लिखता है कि—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्यवशीकारः॥४०॥

योग० पा० १

परम अणु से लेकर और परम महत् तक इस चित्त का वशीकार होता है। भाव यह है कि ध्यान साकार का ही होता है निराकार का नहीं ? जब हम ईश्वर को सर्वथा निराकार मानेंगे तब तो ध्यान ही न होगा, फिर ध्यान करना कैसा ?

यहां पर निर्णय यह है कि "उभयंवा" इस श्रुति में जो बतलाया गया है कि ईश्वर एक है और उस के रूप दो हैं एक रूप आकार वाला है जिस का पूजन होता है और एक रूप आकार रहित है जहां मन वाणी काम नहीं देते वह ब्रह्माण्ड से बाहर है, उस ब्रह्म का वर्णन केनोपनिषद् की श्रुतियों में है, उसको लेकर मूर्तिपूजा का निषेध करना इन विचारे मूर्ख आर्यसमाजियों की आंख में धूल झोंकना है ?

क्या ऐसी २ चालबाजियों से आर्यसमाज वैदिक धर्म के सांचे में ढलेगा ? वेद ने ईश्वर का पूजन बतलाया है, पूजन बतलाने वाला "अर्चत प्रार्चत" यह मंत्र है। यह ईश्वर के पूजन में था, स्वामी जी ने एक चालबाजी खेली, इस मंत्र को ईश्वर के पूजन से हटाकर इसे मूर्ति पूजा प्रकरण में स्त्री के पूजन में लगा दिया किन्तु इस मन्त्र में 'पुत्रका' शब्द था, जिसका अर्थ यह होता था ईश्वर कह रहा है कि मेरे प्यारे बेटो ! मेरा पूजन करो। अब वह अर्थ तो उड़ गया, अब आर्यसमाजियों की स्त्री पति से कहेगी कि मेरे प्यारे बेटे ! मेरा पूजनकर। कुछ भी हो चाहे स्त्री को अम्मा बनना पड़े किंतु आर्यसमाजियों की दृष्टि में दयानन्द के जाल ही वैदिक धर्म रहेंगे ?

स्वामी जी कुछ हुज्जतबाजी भी लिखते हैं, कहते हैं कि जो फूल संसार को सुगंधित करते हैं वे मूर्तिपूजा के जल में सड़ कर बदबू देने लगते हैं इस कारण मूर्तिपूजा छोड़ दो, यह रूल आर्यसमाज को मान्य है तो आर्यसमाजियों को खाना पीना सब छोड़ देना चाहिये क्योंकि घृत, दुग्ध, फल, मिठाई, अन्न जो पदार्थ सुगँधित और सुहावने हैं खाने से उन सबका बदबूदार पाखाना बन जाता है।

आर्यसमाजियो ! तुम सच कहो मूर्तिपूजा के खण्डन में स्वामी जी ने कौन विद्वत्ता की बात कही, जो कुछ भी लिखा है वह बच्चों के बहकाने को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं रखता। यदि तुम बुद्धिमान हो, विचारशील हो तो दया-

नव्य की चालबाजी में फंस कर वेद को तिलांजलि मत दो किन्तु वेद पढ़ो, वेद के भाव को जानो और वेद की रक्षा करो।

अभिन्ननिमित्तोपादानकारण

वेद

वेद ने सृष्टिकर्ता ईश्वर को माना है तथा वेद ने सृष्टि बनने का मेटर भी ब्रह्म को ही माना है। जैसे मिट्टी से घट, लोहे से कुठार, सूत से वस्त्र और सुवर्ण से कटक कुण्डल बनते हैं इसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बना है इसके ऊपर प्रलय काल की दशा को वर्णन करता हुआ वेद लिखता है कि—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम् ॥१
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ॥२

ऋ० अ० ८ मं० १०। सू० १२९

(तदानीं) महाप्रलयकाल में (असत्) अपरा माया (न) नहीं थी (सत्) जीव (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था (यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सत्वगुण (नो) नहीं था (कुहकस्य) इन्द्रजालरूप (शर्मन्) ब्रह्माण्ड के चारों ओर जो (आवरीवः) तत्व समूह का आवरण होता है (तत्किं) "नकिमप्यासीत्" वह भी नहीं था (गहनं गंभीरम्) गहन गंभीर (अम्भः) जल (किमासीत्) क्या था अर्थात् नहीं था ॥१॥ (तर्हि) तिस समय (मृत्युः) मौत (न) नहीं (आसीत्) थी (अमृतम्) जीवन (न) नहीं (आसीत्) था (रात्र्याः) रात (अह्नः) दिनका

(प्रकेतः) ज्ञान (न आसीत्) नहीं था (अर्थात्) प्राणरहित (स्वधया) अपनी पराशक्ति से (एकम्) अभिन्न एक (तत्) ब्रह्म ही (आसीत्) था (तस्माद्ध) उस सर्वशक्तिमान् से (अन्यत्) अन्य (किंच) और कुछ भी (न) नहीं (आस) था ॥

इन दो मन्त्रों से प्रकृति-जीव का अभाव होकर केवल ईश्वरसत्ता का प्रलय में होना सिद्ध है। इसके ऊपर से ही वेद ने ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" माना है। सृष्ट्युत्पत्ति बतलाता हुआ शतपथ लिखता है कि—

आत्मैवेदमग्रऽआसीत्। पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत् ॥

शत० १४।४।२।१

इस उत्पत्ति से पूर्व आत्मा ही पुरुषाकार हुआ उसने अपने से भिन्न किसी को न देखा अर्थात् द्वितीय पदार्थ का सर्वथा अभाव था तब आत्मा ने कहा कि "अहमस्मि" केवल मैं हूँ इसीसे उसका नाम "अहंनामा" हुआ। इसी से समस्त संसार जड़ चेतन की उत्पत्ति हुई, इस उत्पत्ति को बतलाता हुआ वेद कहता है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।
आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।
अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

उस परमात्मा से सब से प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, फिर वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, फिर जल, जल के पश्चात् पृथिवी।

वेद इस प्रकरण को बार बार दोहराता है, समस्त संसार की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाता हुआ काल बिजली आदि की उत्पत्ति भी ब्रह्म से ही बतलाता है देखिये —

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥

यजु० ३२। २

उस परमात्मा पुरुष से समस्त निमेषादि कालविभाग और बिजली उत्पन्न हुई उसको ऊपर या मध्य भाग अथवा दिशाओं में कोई भी पकड़ नहीं सकता।

इस मंत्र में काल विभाग और बिजली की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई है अर्थात् ब्रह्म ही बिजली और कालरूप बना। इसी भाव को लेकर 'सर्वे निमेषा' इस मंत्र के पूर्व का मंत्र कह उठा कि

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु० ३२। १

वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।

इसी विषय को स्पष्ट करता हुआ पुरुष सूक्त लिखता है कि—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

यजु० ३१। २

यह जो वर्तमान समस्त जगत् है और भूतकाल में जो जगत् हुआ था तथा भविष्य काल में जो जगत् होगा यह सब पुरुष है। जिससे वह कारणावस्था को छोड़ कर कार्यसंसार अवस्था में आवे तो उसको विकार दोष लग जावेगा। इसके ऊपर वेद कहता है कि नहीं लगता क्योंकि वह अमृत मोक्ष का भी स्वामी है।

इसी को ऋग्वेद कहता है कि—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसा पश्यमन्तित-
स्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम्॥

ऋ० १०। ११४। ४

एकपक्षी समुद्र में प्रवेश कर गया वही सर्वलोकों को प्रकाशित करता है उस देव को परिपक्व मन से मैं अपने हृदय कमल में देखता हूँ। जैसे अध्ययन काल में विद्या प्राण को अपने में लीन करती है और जैसे स्वप्न में वह प्राणवायु

को अपने में लीन करता है वैसे ही मेरी ब्रह्म में लीनता है।

इसी विषय पर शतपथ लिखता है कि—

स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।

वह ईश्वर रमण न कर सका क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता इसकारण उसने इच्छा की कि हम दो हो जावें।

इसी सिद्धान्त को प्रतिपादन करता हुआ यजुर्वेद लिखता है कि—

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

यजु० ४०। ७

अवस्था विशेष में योगी यह समस्त प्रपंच आत्मा ही है इसको जान कर मोह और शोक को प्राप्त नहीं होता क्योंकि समस्त संसार को एकत्व ब्रह्म की दृष्टि से देख रहा है।

ब्रह्म ही समस्त प्रपंच का उपादान कारण है इसको वेदों की सैकड़ों श्रुतियां कह रही हैं, यह इतना अकाट्य विषय है कि किसी का हिलाया नहीं हिलता।

आर्यसमाज

इस विषय में आर्यसमाज का सिद्धान्त यह है।

(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ? (उत्तर) निमित्तकारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ? (उत्तर) नहीं, वह अनादि है। (प्रश्न) आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं। (प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है ? (उत्तर)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥१॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥

यजु० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसे ही (वृक्षम्) अनादि मूल व कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न होजाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं।

इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पाप पुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं ॥१॥ (शाश्वती अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेदद्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है ॥२॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषदि अ० ४ मं० ५

यह उपनिषद् का वचन है। प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है। ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषय में कह आये। अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं।

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

सांख्य सू० अ० १ सू० ६१

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिल कर जो संघात है उनका नाम प्रकृति है । उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उससे पांच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पचीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है । इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्मभूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण है । पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य है । (प्रश्न)

सदेव सोम्येदमग्र आसीत् । १

छान्दो० प्र०६ खं० २

असद्वा इदमग्र आसीत् ।

तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्द व० अनु० ७

आत्मैवेदमग्र आसीत् ।

बृह० अ० १ ब्रा०४ मं० १

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ।

शत० ११ । १ । ११ । १

ये उपनिषदों के वचन हैं । हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत् । १ । असत् । २ । आत्मा । ३ । और ब्रह्मस्वरूप था । ४ । पश्चात्

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति ।

सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति ॥

तैत्तरीयोपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० ६

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप होगया है ।

यह भी उपनिषद् का वचन है । जो यह जगत है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्म रूप हैं । (उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो ? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में

[एव मेव खलु] सोमान्नेन शुङ्गेनापोमूलमन्विच्छद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ

सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।

छान्दोग्य उपनि० प्र० ६ । खं० ८ । मं० ४

हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथ्वी कार्य से जल रूप मूल कारण को तू जान कार्य रूप जल से तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उस को जान। यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब जगत का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत सृष्टि के पूर्व असत के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था। और जो (सर्वं खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुंडवा जोड़ा' ऐसी लीला का है क्योंकि

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

छान्दोग्य० प्र० ३ खं० १४ मं० १

और

नेह नानास्ति किंचन ।

कठोपनि० अ० २ वल्ली० ४ मं० ११

जैसे शरीर के अंग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे होजाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक होजाते हैं। सुनो इसका अर्थ यह है। हे जीव! तू ब्रह्म की उपासना कर, जिस ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है, जिस के बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सहचरित है उसको छोड़ कर दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतन मात्र अखण्डैक रस ब्रह्म रूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किंतु ये सब पृथक२ स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं। (प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं ? (उत्तर) तीन, एक निमित्त दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिस के बनाने से कुछ बने न बनाने से न बने, आप स्वयं बने, नहीं दूसरे को प्रकारान्तर से बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिस के विना कुछ न बने वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो, निमित्तकारण दो प्रकार के हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था

रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा । दूसरा——परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव । उपादान कारण प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं । वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है । कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है । जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार होजाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियम पूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है । जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनों से अर्थात् ज्ञान,दर्शन,बल,हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा काल और आकाश साधारण कारण । जैसे घड़े का बनाने वाला कुम्हार निमित्त,मट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल,आकाश,प्रकाश,आंख,हाथ, ज्ञान,क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं । इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है । (प्रश्न) नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मानते हैं ।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥

मुण्डको० मु० १ खं० १ मं० ७

यह उपनिषद् का वचन है । जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बना कर आप ही उस में खेलती है वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार होजाऊं संकल्प मात्र से सब जगद्रूप बन गया क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥

गौड़पादीय का० श्लोक ३१

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है जो प्रथम न हो अन्त में न रहे वह वर्तमान में भी नहीं है किंतु सृष्टि की आदि में जगत् न था ब्रह्म था । प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा तो वर्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं ? (उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण

ब्रह्म होवे तो वह परिणामी,अवस्थांतर युक्त विकारी होजावे और उपादान कारण के गुण,कर्म,स्वभाव,कार्य में भी आते हैं।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।

वैशेषिक सू० अ० २ आ० १ सू० २४

उपादान कारण के सदृश्य कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप जगत्कार्य रूप से असत् जड़ और आनन्द रहित,ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है,ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्ड रूप है, जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि में कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ है वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये। और जो मकरी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किंतु बाधक है क्योंकि वह जड़ रूप शरीरतन्तु का उपादान और परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीवतन्तु नहीं निकल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बना कर बाहर स्थूल रूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है। और जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बना कर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार ज्ञान,ध्यान,उपदेश,श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से यह वर्तमान होता है।

सत्यार्थ० समु० ८ पृ० २०९ से २१४ तक

विवेचन

यहां पर "नासदासीत्" प्रभृति सैकड़ों मन्त्र जो अद्वैत का प्रतिपादन करते थे वे तो छिपा लिये गये और "द्वासुपर्णा" इस एक मन्त्र को लेकर द्वैत का प्रतिपादन कर दिया। इसी प्रकार वेदान्त दर्शन को तो छिपा लिया और सांख्य दिखला दिया।

आजकल भी जब कोई मनुष्य अद्वैत की सिद्धि में दो चार मन्त्र देता है तब आर्यसमाजी "द्वासुपर्णा" मन्त्र बोल देते हैं, इसका क्या अर्थ हुआ? इसके माने यही हुये कि तुम्हारे बोले हुये वेदमन्त्रों की हम बात ही नहीं सुनना चाहते या वेद में रहने पर भी हमारी दृष्टि में वे वेद मन्त्र ही नहीं हैं यथा ये मंत्र

ईश्वर के बनाये हैं, ईश्वर हमारी दृष्टि में मूर्ख है, हम ईश्वरप्रणीत मन्त्रों को ही नहीं मानते। जिस मन्त्र पर दयानन्द की छाप लगेगी हम सिर्फ उसी को मानेंगे-यही मानें हो सकते हैं ? नहीं तो अपने एक मन्त्र के सहारे से वेद के दश बीस या सौ पचास मन्त्रों को उड़ा देना कैसे बनेगा ?

हमारी समझ में आर्यसमाजी तो द्वैताद्वैत के निर्णय को जानते ही नहीं वरन् स्वा० दयानन्द जी जिन्होंने एक मन्त्र के पीछे वेद के सैंकड़ों मन्त्रों को धूल में मिला दिया वे भी द्वैताद्वैत का निर्णय नहीं जानते थे। न्यायशास्त्र परमाणुओं को नित्य मानता है और सांख्य प्रकृति-पुरुष इन दो को। इस झगड़े को भी स्वामी दयानन्द जी फैसल न कर सके इसी से हम कहते हैं कि स्वा० दयानन्द जी दर्शन और वेद दोनों के ज्ञान से शून्य थे।

सांख्य प्रकृति-पुरुष दो को और वेदान्त केवल ब्रह्म को मानता है। सनातनधर्म के सम्प्रदाय में भी दो भेद हैं। शंकर अद्वैत और भगवान् माध्व द्वैत मानते हैं। इसी प्रकार वेद "एकः सुपर्णः" इस मन्त्र में अद्वैत और "द्वासुपर्णा" इस मन्त्र में द्वैत कह रहा है तो क्या अब हम वेदान्तदर्शन जगद्गुरु शङ्कराचार्य का सिद्धान्त और अद्वैत बतलाने वाले वेदमन्त्र इन सबको मिथ्या कह कर जान बचाते हुये धर्मनिर्णय पर धूल डाल दें क्या इसी को पाण्डित्य कहते हैं ?

शास्त्रकारों ने इस विषय को निर्णय करने के लिये परमार्थिक सत्ता और व्यवहारिक सत्ता इन दो सत्ताओं का आश्रय लिया है। दोनों सत्ताओं के अवलम्बन से विवेचन का असलीभाव यथार्थरूप से समझ में आजाता है। जो पदार्थ जिससे बनता है उसको उपादान कारण और पदार्थ को कार्य कहा जाता है। घट मिट्टी से बनता है मिट्टी घट का उपादान कारण है इसी प्रकार कुल्हाड़ी का लोहा, आभूषणों का सुवर्ण और पट का तन्तु एवं इस समस्त विश्व का उपादान कारण ब्रह्म है। जिसप्रकार घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है इसी प्रकार यह समस्त विश्व प्रलय के पश्चात् ब्रह्म से उद्भूत होकर फिर प्रलय होने के अवसर पर ब्रह्म में मिल जाता है। बात यह सत्य है और इसी का नाम परमार्थिक सत्ता है।

सांख्य और पूज्य आचार्य माध्व तथा "द्वासुपर्णा" इन सबका कथन यह है कि इस परमार्थिक सत्ता से हमारा लाभ नहीं होता। कल्पना करो कि किसी मनुष्य को चार पैसे का एक घट मंगवाना है, उसके अन्तःकरण में परमार्थिक

सत्ता भरी है, वह घट को मिट्टी समझे है, घट की पृथक् सत्ता को वह स्वीकार नहीं करता इसकारण अब वह यह तो कहेगा नहीं कि तुम चार पैसे का एक घट ले आओ वरन् यह कहेगा कि तुम चार पैसे की मिट्टी ले आओ? लानेवाला चार पैसे की दश सेर या बीस सेर मिट्टी लाकर डाल देगा, उस मिट्टी से पानी पीने को तो मिलेगा नहीं, डेले उठा उठा कर शिर फोड़ो? परमार्थिक सत्ता में जब समस्त संसार ब्रह्म है तो फिर उपासना नहीं बनेगी? हम उपासना करने वाले ही अब ब्रह्म हो गये तब फिर उपासना कैसी और किस को? संसार का व्यवहार चलाने के लिये हम को मिट्टी से भिन्न घट, हांडी, नाद, सुराव मानने होंगे? ऐसा न मानें तो परमार्थिक सत्ता सत्य रहने पर भी व्यवहार नहीं चलता तथा उपास्य उपासकभाव नहीं बनता? संसार का व्यवहार चलाने और जीव को अपवर्ग पद पर पहुँचाने के लिये व्यवहारिक सत्ता का मानना आवश्यकीय है।

अद्वैत पक्ष को मानने वाले जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने भी उपासना के अवसर पर व्यवहारिक सत्ता मानी है। जगद्गुरु जी लिखते हैं कि—

सत्यपि भेदापगमे
नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।

हे नाथ! यद्यपि हम तुममें भेद का अभाव है तो भी मैं आपका सेवक हूँ आप मेरे नहीं।

अब यह सिद्ध हो गया कि परमार्थिक सत्ता यथार्थ, ठीक, जिसमें कभी हेर फेर नहीं होता ऐसे सत्यभाव को आगे रखती है और व्यवहारिक सत्ता संसार के व्यवहार को ठीक चलाने के लिये या चिरकाल से अनेक योनियों में घूमते हुये इस जीव को ब्रह्म बनाने के लिये अवश्य ही अवलम्बनीय है।

वेद ने "नासदासीत्" प्रभृति मन्त्रों में परमार्थिक सत्ता और "द्वासुपर्णा" मन्त्र में व्यवहारिक सत्ता दिखलाई है जिसको दयानन्द जी समझ नहीं सके और अपने मनगढ़न्त विवेचन से वेद के सैकड़ों मन्त्रों को कुरान की आयतों से भी बुरा समझ उनको वेद की डिगरी से बाहर कर गये।

सृष्टि

वेद

वेद ने यजुर्वेद के ३१ के अध्याय में सृष्टि कही किन्तु क्रमशः न कही।

सृष्टिक्रम को दिखलाता हुआ शतपथ लिखता है कि—

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत । स ह एतावानास, यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं द्विधा पातयत्, ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम् । ततो मनुष्या अजायन्त । सा ह इयमीक्षां चक्रे कथं नुमां आत्मन एव जनयित्वा सम्भवति, हन्त तिरोसानीति । सा गौरभवत् वृषभ इतरः स तामेव समभवत्ततो गावोऽजायन्त । वडवा इतरा अभवदश्व इतरः । गर्दभी इतरा अभवद् गर्दभ इतरः, स तामेव समभवत्तत एकसफा अजायन्त । अजा इतरा अभवत् वस्त इतरः । अविरितरा मेष इतरः । स तामेव समभवत्ततः अजा अवयश्च अजायन्त यदिदं किंच मिथुनं आपिपीलिकाभ्यः तत्सर्वमसृजत । सो वेद, अहं वावसृष्टिरस्मि, अहं हि इदं सर्वं असृक्षीति । ततः सृष्टिरभवत् ।

शतपथ १४ । ४ । २ । १

उसको अकेले में आनन्द नहीं आया इसीलिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता है । उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिल कर होते हों, फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो विभाग किये, एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना उससे मनुष्य पैदा हुये । पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझसे रमण किया इस खेद से वह छिप गई । छिप कर गौ हुई पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया उससे गो जाति उत्पन्न हुई । फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना, पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना, फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टाप वाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुये, पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना, पत्नी फिर भेड़ बनी पुरुष मेढ़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी, इसी प्रकार दोनों चोटी तक बनते गये और संसार बनता गया फिर उस आत्मा ने जाना मैं ही सृष्टि हूँ, मैंने ही इन सबको पैदा किया इसलिये उस आत्मा का नाम सृष्टि हुआ इसलिये सृष्टिस्वरूप ही ईश्वर है, ईश्वर में और सृष्टि में कुछ अन्तर नहीं है ।

आर्यसमाज

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या? (उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुये और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बाप के सन्तान हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्या, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में? (उत्तर) युवावस्था में क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

सत्यार्थ० समु० ८ पृ० २२५

विवेचन

यहाँ पर स्वामी जी जान बूझ कर धोखा देते हैं "मनुष्या ऋषयश्च ये" वेद में यह कोई मन्त्र ही नहीं, स्वामी जी ने ताज़ा बना कर तैय्यार किया है। "ततो मनुष्या अजायन्त" यह शतपथ की श्रुति का टुकड़ा है इसको यजुर्वेद के नाम से लिखा है, इसका कारण यह है कि स्वामी जी शतपथ को वेद नहीं मानते, पुराण मानते हैं। पुराण का प्रमाण लिखते लज्जा मालूम होती है इसकारण लिख दिया कि यह श्रुति वेद की है। स्वामी जी ने समझ लिया कि कौन वेद टटोलेगा-इस प्रकार से धोखा देकर बतलाया कि जवान जवान मनुष्य और जवान जवान स्त्रियां तथा जवान जवान घोड़े और घोड़ियां एवं जवान जवान भैंसे और भैंसे प्रभृति सब सृष्टि जवान जवान पैदा हुई। नहीं मालूम ये निराकार के जवान जवान जोड़े किसी के घर से निकल भागे या आसमान से टपके? इनकी पैदायश कैसे हुई-इन बातों को बतलाने वाला सत्यार्थप्रकाश में कोई लेख नहीं? शतपथ की समस्त श्रुति को छिपा कर "ततो मनुष्या अजायन्त" केवल इस टुकड़े को लिखना और मनमानी युवा सृष्टि का पैदा होना स्वामी जी ने क्यों लिखा और शतपथ की श्रुति को क्यों चुराया? इसका कारण यही है कि शतपथ की समस्त श्रुति लिख देने से अद्वैत पक्ष की सिद्धि होकर ईश्वर साकार

होजाता है। अद्वैत पक्ष और ईश्वर की साकारता को उड़ाने के लिये स्वामी जी ने चोरी करना ही उत्तम समझा है।

देवजाति

वेद

वेद में देवताओं का वर्णन इस प्रकार है

त्रया देवा एकादशत्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा॥

यजु० अ० २० मं० ११

तीन देवता अथवा एकादश देवता अथवा तेंतीस देवता, अनेक सम्पत्ति-वाले बृहस्पति हैं पुरोहित जिन के, सविता देवता की प्रेरणा से समस्त देवताओं के सहित ये देवता हमारी रक्षा करें।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता
वसवो देवता रुद्रा देवताऽदित्या देवता मरुतो देवता
विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥

यजु० १४। २०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसु देवता, रुद्र देवता, आदित्य देवता, मरुत देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता, वरुण-देवता।

इस मंत्र में वसु ८, रुद्र ११, आदित्य १२, मरुत ७, विश्वेदेवा १३ ऐसे सब मिला कर ५८ देवता हैं।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु॥

अथर्व का० ७

देवताओं की पत्नियें हमारी रक्षा करने की कामना रखती हुई हमारे

पास आवें और हम को अन्न प्राप्ति कराने एवं उनका लाभ कराने के लिये आवें। जो देवियें पृथिवी पर रहती हैं और जो जल का कर्म करने वाले अन्तरिक्ष में स्थित हैं वे शोभन आह्वान वाली देवियें हमको सुख देवें।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।

अथर्व० कां० २० सू० १२६ मं० ११

यज्ञ में आचार्य कहता है कि समस्त नारीगणों में हमने इन्द्राणी इन्द्र की स्त्री को सौभाग्यवती सुना है। इस का पति अन्य स्त्रियों के पति के समान जरावस्था में आकर नहीं मरता है अर्थात् इस का पति अमर है और वह सब विश्व से बड़ा है।

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राणी
अग्नायी अश्विनी राट्।
आरोदसी वरुणानी शृणोतु
व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥

अथर्व० कां० ७ सू० ४९ मं० २

देवता जिन के पति हैं ऐसी देवपत्नियें हवियों की कामना करें वा रक्षा करें, इन्द्रदेव की पत्नी इन्द्राणी, अग्निदेव की पत्नी अग्नायी, रुद्र की जाया रोदसी वरुण देव की स्त्री वरुणानी, अश्वनीकुमारों की दमकती हुई पत्नी भली प्रकार सुनें और हमारी हवि को पत्नियों के ऋतुकाल में अर्थात् पत्नी से याज में भक्षण करें।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्
त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स
देवांस्तपसा पिपर्ति।

अथर्व० ११।५।२

ब्रह्मचारी जिस समय यज्ञ करने को उद्यत होता है उस समय सूक्ष्म रूप से पितर,गन्धर्व और छः सहस्र तीन सौ तैंतीस देवता अलग अलग उसके पास जाकर उपस्थित होते हैं और वह यज्ञ द्वारा उन सब को तृप्त करता है।

त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्निं
त्रिᳬंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा
आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥

यजु० ३३ । ७

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया।

इस मंत्र में तीनहज़ार तीन सौ तीस संख्या तो पृथक है और नौ संख्या आगे है। किसी किसी आचार्य ने तीनहजार तीन सौ तीस में नौ संख्या का योग कर दिया है उसके मत में तो ३३३९ देवता होते हैं किंतु किसी २ आचार्य ने तीन हजार को तीन सौ संख्या से गुणा किया और आगे तीस तथा नौ का योग किया उसके मत में ९०००३९ देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया-अर्थ हुआ। किसी किसी आचार्य का मत है कि ३३ ३० इन चार अंकों को इन्हीं के स्वरूप में नौ अंक कर दो, नौ अंक करने वालों के मत में ३३ ३३ ३३ ३ ३० देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृकर्म में नियुक्त किया-यह अर्थ हुआ।

देवता चैतन्य हैं इस विषय की पुष्टि में वेद मन्त्र देकर निरुक्त लिखता है कि—

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या। इन्द्रमिद् गाथिनो वृहत्। इन्द्रेणैते तृत्सवोवेविषाणाः। इन्द्राय साम गायत। नेन्द्रादृतेपवते धाम किंचन। इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्। इन्द्रे कामा अयंसतेति।

निरुक्त दैवत काण्ड पा० १

इन्द्र द्यौ और पृथ्वी का राज्य करता है। इन्द्र को साम गाने वालों ने बृहत्साम से स्तुति किया है। इन्द्र के साथ जुटे हुये वृत्तु छोड़े हुये जल की भांति नीचे दौड़े। इन्द्र के लिये साम गाओ। इन्द्र के विना सोम किसी याम प्रातः सवन आदि स्थान को नहीं पवित्र करता है। इन्द्र के वीर कर्मों को कहता हूँ। इन्द्र में हमारी कामनायें बंधी हैं।

इस मंत्र को भगवान् यास्क ने परोक्षकृता स्तुति में लेकर निरुक्त के उदाहरण में रक्खा है।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहेते॥

निरुक्त दैवत० पा० २

हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याण वाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं।

आर्यसमाज।

"त्रयस्त्रिंशत्त्रिशता०" इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से ये आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्प विद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं।

सत्यार्थ० समु० ७ पृ० १७८

"विद्वाँसो हि देवाः" यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ६७

विवेचन

स्वा० दयानन्द जी शतपथ के आधार पर तैंतीस देवता मानते हैं और उन देवताओं को चेतन्य नहीं मानते वरन् जड़ मानते हैं। प्रथम तो शतपथ में देवताओं को जड़ नहीं लिखा-चैतन्य लिखा है, दूसरे स्वा० दयानन्द की दृष्टि में शतपथ पुराण है और वह वेदानुकूल होने पर मान्य है। वेद के बीसियों मंत्र देवताओं को चैतन्य बतलाते हैं, निरुक्त लिखता है कि

अथाकारचिंतनं देवतानाम्। पुरुषविधाः स्युरित्येकं चेतनावद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाभिधानानि। अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते। अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः। अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः। अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद् दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति। यथो एतच्चेतनावद्धि स्तुतयो भवंतीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयंते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यंतानि। यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयंत इत्यचेतनेष्वप्येतद्भवति। अभिक्रंदन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव। सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनमिति नदीस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव। होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव। अपि वोभयविधाः स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः॥

निरुक्त दैवत कां० पा० २

निरुक्त ने देवताओं का विचार करते हुये देवताओं के दो प्रकार के रूप बतलाये हैं (१) पुरुषाकार (२) जड़। ये दो प्रकार के रूप बतला कर निरुक्त ने इन दोनों की ही पुष्टि की। मनुष्याकार में निरुक्त कहता है कि पुरुषों की भांति हैं, शरीरधारी और चेतन हैं यह एक मत है क्योंकि चेतनावालों की भांति उनकी स्तुतियें हैं तथा उनके वचन सम्भाषण भी चेतनावालों की भांति हैं और वे देवता पुरुषों के सदृश अंगों से स्तुत किये जाते हैं जैसे हे इन्द्र तुम महान् की बड़ी था

दर्शनीय दोनों भुजायें हैं । हे इन्द्र ! इन दोनों अपार द्यावा पृथिवी को भी जिस- लिये तू पकड़े हुये है हे धन वाले यह तेरी एक मुट्ठी ही है । पुरुषों के सदृश द्रव्यों के संयोग से भी देवता पुरुष विध ही सिद्ध होते हैं । जैसे हे इन्द्र ! अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं । पुरुषविध न होने में स्त्री, घर आदि नहीं बन सकते इसलिये पुरुषविध ही हैं । पुरुषों के कर्मों से भी पुरुषविध सिद्ध होते हैं । तेरी ओर प्रस्थित हुये पुरो- डास और सोमरस को हे इन्द्र ! खा और पी । हे सब ओर से सुनने वाले कानों वाले इन्द्र ! हमारे बुलावे को सुन । यह खाना, पीना, सुनना नहीं बन सकता जब तक देवता मनुष्यों के सदृश अंगों वाले न हों । सो इन प्रमाणों से मन्त्रों के देवताओं का पुरुषविध होना सिद्ध है ।

निरुक्तकार मुनि यास्क ने इस विषय में कई एक वेद के मन्त्र दिये हैं उन मन्त्रों से ही देवताओं का पुरुषाकार होना सिद्ध किया है । मन्त्रों के टुकड़े लेकर ही यह निरुक्त बना है । बस सिद्ध होगया कि वेदों में देवता पुरुषाकार और चेतन हैं-यह एक वेद का मत है ।

वेद का दूसरा मत है कि देवता जड़ हैं । इस विषय में निरुक्त लिखता है कि अपुरुषविध हैं । यह दूसरा मत है जैसा कि पूर्व में कहा है कि जल और ज्योति के मिलने से वर्षा का कर्म होता है उस विषय में जो युद्ध के वर्णन हैं वे रूपक मात्र हैं किंच देवताओं का जो रूप दीखता है वह अपुरुषविध है जैसे अग्नि,वायु,सूर्य,पृथिवी,चन्द्रमा,ये प्रत्यक्षतः अपुरुषविध हैं इन को पुरुष विध मानने में दृष्टिहानि होती है इसलिये इनको पुरुषविध माना जा ही नहीं सकता । जब ये पुरुष विध नहीं तो इन्हीं की भांति इन्द्रादि परोक्ष देवता भी अपुरुषविध ही हैं । जो यह कहा है कि चेतनावालों की भांति स्तुतियें होती हैं इस लिये पुरुष विध हैं इस का उत्तर यह है कि अचेतन जड़ वा बेसमझ भी इस प्रकार स्तुति किये जाते हैं जैसे अक्ष से लेकर ओषधियों पर्यंत । और जो यह कहा है कि पुरुषों कैसे अंगों से स्तुति किये जाते हैं यह भी अचेतनों में होता है । यह सोमग्राव अपने हरे सोम रस से भीगे मुखों से देवताओं को यज्ञ में आने के लिये पुकारते हैं । पत्थरों के मुख नहीं होते सो जैसे यहां औपचारिक वर्णन है वैसे इन्द्रादि में है और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश द्रव्यों के सम्बन्धों से यह भी औपचारिक ही है । सिंधु ने जगत् के लिये सुख का हेतु घोड़े से युक्त

रथ जोड़ा है। इस स्तुति में यथाऽभिहित अर्थ बन सकना असंभव है क्योंकि बहती हुई नदी की रथ में स्थिति नहीं होती। जैसे असंभव होने से यहां रूपक कल्पना है वैसे अन्यत्र भी रूपक से स्तुतियें जाननी चाहिये। और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश कर्मों से यह भी वैसा ही है। जैसा होता अग्नि से भी पहिले ही खाने योग्य हवि को खाते हो यह ग्रावस्तुति ही है। पत्थरों में मुख्य खाना नहीं बन सकता इसलिये यह भी रूपक है। यास्क ने जड़ और चेतन दोनों को वेद से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहां पर श्रुति में विरोध होगा वहां दोनों श्रुतियों का कथन सत्य स्वीकार किया जावेगा। यहां पर भी सूर्यादि ग्रहमण्डल जड़ और इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं फिर स्वामी दयानन्द जी का देवताओं को जड़ लिखना जान बूझ कर संसार को अन्धा बनाना है।

"ब्रह्मचारिणम्" इस मंत्र में छः सहस्र तीनसौ तेंतीस और "त्रीणि शता" इस मंत्र में ३३३३३३३० देवता वेद ने बतलाये, स्वा० दयानन्द जी इन दोनों मंत्रों को गपोड़ा मानते हुये देवताओं की संख्या केवल तेंतीस लिखते हैं, आर्यसमाजियों को स्वामीजी की इस नास्तिकता और चालबाजी पर ध्यान देना चाहिये।

स्वामीजी मनुष्यों से भिन्न देवजाति नहीं मानते। मनुष्यों में जो लिख पढ़ गये उन्हीं को आप देवता मानते हैं और वह भी इन्साफ के बल पर नहीं वरन् चोरी के बल पर। शतपथ लिखता है कि—

द्विविधा देवा देवदेवा मनुष्य देवाश्च
विद्वांसो हि देवः।

दो प्रकार के देवता हैं एक देवयोनि के देवता, दूसरे मनुष्यों में देव। देवयोनि के सभी देवता जन्म से विद्वान् होते हैं-यह शतपथ का कथन है इस में से "विद्वांसो हि देवाः" श्रुति के इस छोटे से टुकड़े को चुरा कर विद्वानों को देवता लिखते हैं। इस चोरी का प्रयोजन केवल इतना था कि आर्यसमाजी हम को ही देवता मानने लगें।

इसी प्रकार दैत्य, गन्धर्व और अप्सरा प्रभृति देवयोनियों के वेद ने जाति भेद माने हैं स्वा० दयानन्द जी की दृष्टि में ये सब मनुष्य ही हैं।

वेदोत्पत्ति।

वेद

वेदों की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ब्रह्म से मानी है। इस विषय में वेद का सिद्धांत यह है कि उस निराकार ब्रह्म ने ब्रह्मा शरीर धारण किया। ब्रह्मा ने अपने मुख से ऋषियों को वेदों का उपदेश दिया।

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवंवारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि।

शत० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम उठता है और वह धूम्र चारों दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में ईश्वरीय ज्ञान जो कि ईश्वर का श्वास भूत है वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, और व्याख्यान रूप होकर चारों तरफ फैला।

इस के ऊपर यजुर्वेद लिखता है कि

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

यजु० ३१। ७

जिस यज्ञ भगवान् का सब से प्रथम उत्पन्न होना "तं यज्ञम्" इस मंत्र में लिखा है और इसी मन्त्र में जिस यज्ञ भगवान् का देव, साध्य, ऋषियों के द्वारा पूजन किया गया है उसी ईश्वर से ऋग्वेद, सामवेद तथा गायत्र्यादि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुये।

अथर्व कहता है कि

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः॥

अथर्व० ११। ७। १। २४

सब के अन्त (प्रलय काल) में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्,साम अथर्व और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुये।

वेद लिखता है कि प्रथम ब्रह्म ने ब्रह्मावतार धारण किया। इस का मंत्र यह है।

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० १६। २३। ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरम्भ में बड़े द्युलोक को विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ है, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है।

इस ब्रह्मावतार यज्ञ भगवान् ने ऋषियों को वेदों का उपदेश किया। इस उपदेश को बतलानेवाली श्रुति यह है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तथं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

श्वेताश्व० अ० ६। १८

जिस परमात्मा ने (पूर्व) अर्थात् सृष्टि की आदि में ब्रह्मा जी को उत्पन्न किया और जिस परमात्मा ने ब्रह्मा जी ही के लिये वेदों को दिया उस ही प्रकाश स्वरूप आत्मज्ञान के प्रकाश करनेवाले परमात्मा की मैं मुमुक्षु शरण होता हूँ।

यहां पर परमात्मा के दो रूप माने हैं एक ब्रह्म निराकार और एक ब्रह्मावतार॥ इस कारण यह कहा गया कि उस निराकार ब्रह्म ही की कृपा से ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेद आये। यहां पर भेदावलम्ब है। दूसरी श्रुति लिखती है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरसे ब्रह्मविद्यां
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह
भरद्वाजोंगिरसे परावराम् ॥

मुण्डकोपनिषद्

विश्व के कर्ता, भुवनों के रक्षक ब्रह्मा जी सब देवताओं से पहिले हुये। ब्रह्मा जी ने वह वेदविद्या जिसके सब विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा ऋषि को पढ़ाई, अथर्वा ने वह ब्रह्मविद्या अंगिरा ऋषि को पढ़ाई, अंगिरा ऋषि ने भरद्वाजगोत्री सत्यवाह को पढ़ाई, उसने वह परावर विद्या अंगिरा को पढ़ाई।

आर्यसमाज

(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार ? (उत्तर) निराकार मानते हैं। (प्रश्न) जब निराकार है तो वेद विद्या का उपदेश बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा ? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। (उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों की अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे बिना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद के देखो, सुनो कि बिना मुख जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं वैसे जीवों को अन्तर्यामीरूप से उपदेश किया है किन्तु केवल दूसरों को समझाने के लिये उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित

कर देता है फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आसकता। (प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ? (उत्तर)

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।

शत० ११।४।२।३

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया (प्रश्न)

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

श्वेताश्व० अ० ६ मं० १८

यह उपनिषद् का वचन है। इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ? (उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो मनु ने क्या लिखा है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥

मनु० १।२३

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्यजु साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

सत्यार्थ० समु० ७ पृ० २०३

विवेचन

मनुष्य को एक झूठ को सत्य करने के लिये कई एक झूठ बोलने पड़ते हैं एक जाल को जब कोई झूठा बतलाने लगता है तब उस जाल की पुष्टि में कई एक जाल बनाने पड़ते हैं। वही हाल यहां पर है, स्वामी जी ने ईश्वर को निराकार बतला दिया, अब वेद कौन बनावे झगड़ू धोबी ? वेदों के प्रादुर्भाव होने में पड़ गया झगड़ा तब स्वामी जी लिखते हैं कि ईश्वर का ज्ञान अग्नि, वायु,

रवि इन ऋषियों के अन्तःकरण में आया तब इन्होंने अपने मुंह से जो कहा वही वेद है। चोखी रही, सम्भव है ऋषियों ने अपने ही तरफ से कुछ कहा हो,उनके अन्तःकरण में ईश्वरीय ज्ञान आया इसका क्या सबूत ? कई एक मनुष्य यह कहते हैं कि मनु और शतपथ इसके साक्षी हैं,यह कथन बिल्कुल ही तोषदायक नहीं क्योंकि मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण दयानन्द की दृष्टि में बहुत पश्चात् बने, इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि वेदों के प्रादुर्भूत काल में वह ज्ञान ईश्वरीय समझ लिया गया हो क्योंकि उस समय कोई ग्रन्थ इसकी साक्षी होने वाला नहीं था।

(२) "ब्रह्म ज्येष्ठ।" इस मन्त्र में जो वेद ने ब्रह्मा का अवतार बतलाया। "यो ब्रह्माणम्" इस श्रुति में ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेदों का आगमन बतलाया। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् ने ब्रह्मा का अवतार और ब्रह्मा के जरिये से संसार में जो वेदों का आगमन बतलाया, इन सब श्रुतियों को तो स्वा० दयानन्द जी चाट गये, केवल मनु और शतपथ से ऋषियों द्वारा वेदागमन मानते हैं। मजा यह है कि स्वामी जी की दृष्टि में मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण, जिसको स्वा० दयानन्द जी ने पुराण माना है, ये दोनों ही ग्रन्थ स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं किन्तु "अग्निवायुरविभ्यः" इस मनु के प्रमाण और "अग्नेर्ऋग्वेदः" इस शतपथ के प्रमाण की वेदानुकूलता पाई नहीं जाती फिर स्वा० दयानन्द जी ने इन दो प्रमाणों को स्वतः प्रमाण कैसे माना ? इस प्रश्न पर आर्यसमाज का दिवाला निकल जाता है।

(३) आप एक और धोखा देते हैं कि इन ऋषियों ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाया स्वामी जी ! तुम्हारे इस धोखे को मूर्ख आर्यसमाजी ही मानेंगे, हम नहीं मान सकते क्योंकि हम जानते हैं कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" ब्रह्मा सब देवताओं से पहिले प्रकट हुआ। हम मनु के प्रथमाध्यायानुकूल यह भी जानते हैं कि आदि में अयोनिज ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई है, फिर वे चार ऋषि आये कहां से ? हम यह भी जानते हैं कि इन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा ने वेद पढ़ा इसका लेख वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास किसी में भी नहीं है यह तो आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाने के लिये ताजा गपोड़ा स्वामी जी के दिमाग शरीफ से निकला है, आर्यसमाजियों को लज्जा आनी चाहिये जो दयानन्द के गपोड़ों को वेद मान बैठे।

(४) मनु और शतपथ इन दोनों में अग्नि,वायु, रवि, इन तीन का नाम

आता है। यह चौथा अंगिरा कहां से कूद बैठा ? प्रमाणों के अर्थ में दयानन्द जी ने अंगिरा को जबर्दस्ती से मिलाकर आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाया है, इस अयोग्य कार्य को समस्त संसार घृणा की दृष्टि से देखता है।

(५) अग्नि, वायु, रवि ये तीन ऋषि किस जमाने में हुये ? इनका होना वेद धर्मशास्त्र, दर्शन-पुराण कहीं पर नहीं मिलता। क्या इनका ऋषि होना स्वा० दयानन्द जी ने कुरान से या बाइबिल से लिया है ? इन तीन ऋषियों की उत्पत्ति कहां लिखी है ? यदि ये ऋषि थे तो इनकी माताओं का क्या नाम था और किन २ मनुष्यों के ये पुत्र थे ? ये किस देश में हुये ? इनके कितने २ भाई एवं कितनी २ बहिनें थीं ? फिर ये किस २ के यहां विवाहे गये ? इनके श्वसुरों और इनकी स्त्रियों का क्या २ नाम था ? तथा इन ऋषियों में से किस २ ऋषि के कितने २ पुत्र हुये ? इन ऋषियों के गोत्र और प्रवर क्या थे ? वैदिक और पौराणिक साहित्य में इनका कहीं कुछ भी पता चलता है ? इन प्रश्नों पर आर्यसमाज का टाट लौट कर दयानन्द के जाल का ऐसा भण्डा-फोड़ होता है कि संसार जिसका तमाशा देखता है।

(६) 'स ब्रह्मविद्याम्' मुण्डक की इस श्रुति में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेद पढ़ाये और अथर्वा ने अंगिरा को, अंगिरा ने सत्यवाह को वेदों का उपदेश किया यह जो क्रम वेद ने बतलाया क्या यह झूठा है ? इसके ऊपर आर्यसमाज क्या कहता है। श्रुति कह रही है कि इस क्रम से वेद संसार में आया इस पर आर्यसमाज की क्या धारणा है ? अब आर्यसमाज यह नहीं कह सकती कि चार ऋषियों ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाये क्योंकि संस्कृत साहित्य में इन चार ऋषियों का अस्तित्व और इनके जरिये से ब्रह्मा का वेद पढ़ना कहीं नहीं है। "डूबते को तिनके का सहारा" बहुत होता है इस न्याय से वेदोत्पत्ति की सफाई हो जाने के भय से स्वामी दयानन्द जी ने मनगढ़न्त अग्नि, वायु, रवि ये तीन मनुष्य जबर्दस्ती के सांड बना कर इनको ऋषि और वेद प्रादुर्भावकर्ता लिखा जो निरी गप्प है। स्वा० दयानन्द का लेख तो अव्वल दर्जे का गपोड़ा हो गया, अब आर्यसमाजी बतलावें कि "स ब्रह्मविद्याम्" इस श्रुति पर आर्यसमाज की क्या धारणा है ? इसका कोई उत्तर आर्यसमाजियों को नहीं सूझता। बात यह है कि जो ठग के जाल में फंसेगा वह ठगा ही जावेगा ?

(७) कई एक आर्यसमाजी जो धार्मिक ज्ञान की तरफ से चौपटानन्द हैं वे कह देते हैं कि इन ऋषियों के नाम तो मनुस्मृति और शतपथ में भी लिखे हैं

फिर तुम यह कैसे कहते हो कि सृष्टि के आरंभ से आज तक अग्नि,वायु,रवि कोई ऋषि नहीं हुये? इस के उत्तर में हम यह कहेंगे कि पहिले तुम मनु का श्लोक और श्लोक का अभिप्राय तथा शतपथ की श्रुति और उस का अर्थ समझो तब अग्नि,वायु,रवि को ऋषि बनाना? मनु देखिये

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥२३
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च ॥२४

मनु० १

उस ब्रह्मा ने कर्म,आत्मा और देवताओं के गण तथा प्राणी समूह साध्यों के गण एवं सूक्ष्म यज्ञ को रचा ॥२२॥ फिर अग्नि, वायु, रवि इन तीन तत्वों से यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग् यजु साम लक्षण वाले सनातन वेद को दुहा।२३।बाद में काल और काल विभाग, नक्षत्र एवं ग्रह,नदी, समुद्र,पर्वत तथा सम विषम स्थलों को रचा ॥ २४ ॥

यहां पर निर्माण कर्ता ब्रह्मा है और वह ऊपर से आरहा है। यह संसार ब्रह्मा ने रचा है,संसार की रचना क्रम को यहां दिखलाया जारहा है। यहां पर ब्रह्मा से भिन्न संसार रचने वाला कोई अन्य ईश्वर नहीं माना,यह सब रचना ब्रह्मा ने की है,वही ब्रह्मा "अग्निवायुरभ्यः"इस श्लोक में "दुदोह"क्रिया का 'कर्ता' है अर्थात् इस श्लोक में "ऋग्यजुःसामलक्षणम्" यह कर्म है। ब्रह्मा कर्ता है 'दुदोह' क्रिया है अर्थात् 'ऋग्यजुःसामलक्षणम्' फेल है और ब्रह्मा फाइल है एवं "दुदोह" मफूल है,अर्थ हुआ कि अग्नि,वायु,रवि से ब्रह्मा ने वेदों को दुहा। जो पदार्थ किसी पदार्थ में सर्वव्यापक होता है वह उसमें से दुहा जाता है जैसे गौ के अंग अंग में दूध है,वह स्तनों के जरिये से दुह लिया जाता है तो क्या इन तीन ऋषियों के हाड़,मांस,रुधिर-चमड़े में वेद व्यापक होगया जो ईश्वर ने तीनों को पकड़ कर दुह लिया। यह अर्थ ही कभी संगत नहीं होता क्योंकि सर्वव्यापक पदार्थ दुहा जाता है,ऋषियों के अंग में वेद का सर्वव्यापक होना असंभव है इस कारण

यह मानना पड़ेगा कि अग्नि-वायु-सूर्य इन पद पदार्थों में जो सूक्ष्म होके वेद सर्व-व्यापक बन गया था उस को ब्रह्मा ने खैंच कर वेद के स्थूल रूप में कर दिया यह असली अर्थ है। जब दयानन्द जी को कोई रस्ता नहीं मिला तब अपनी चालबाजी से तीन पदार्थों को ऋषि बनाया। आर्यसमाजी लिखते पढ़ते हैं ही नहीं, उन्होंने समझा कि क्या दयानन्द हम को धोखा देंगे? बस इसी आधार पर तीन ऋषियों के द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव मान लिया गया, चतुर्थ-अथर्व वेद का दयानन्द जी के मत में पता नहीं कि अब्दुलरहमान ने बनाया या डाक्टर स्मथ ने?

जिस मनु के श्लोक को आगे रख कर तीन ऋषियों से वेदोत्पत्ति बतलाई उसके पहिले श्लोक में मनु कहते हैं कि ब्रह्मा ने देवता और साध्यों को उत्पन्न किया, दयानन्द के मत में मनुष्यों से भिन्न देवता और साध्य होते ही नहीं? दयानन्द जी तो पढ़े हुये मनुष्यों को देवता एवं साध्य मानते हैं। जब हम यह श्लोक आर्यसमाजियों के आगे रखते हैं कि देखो मनु ने मनुष्यों की उत्पत्ति तो पहिले लिख दी और अब इस श्लोक में देवता तथा साध्यों की उत्पत्ति बतलाई गई है इस कारण देवता और साध्य सृष्टि मनुष्य सृष्टि से भिन्न है तब आर्यसमाजी कहते हैं कि "कर्मात्मनाम्" यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है अतएव हम इसको नहीं मानते? जैसे "कर्मात्मनाम्" वेदानुकूल नहीं वैसे ही "अग्नि-वायु" यह श्लोक भी वेदानुकूल नहीं है फिर इसको दयानन्द जी ने माना क्यों? ए चालबाजी की कबड्डी खेलनेवाले आर्यसमाजियो? तुम जो धर्म और अपनी इज्जत को चालबाजियों के जरिये से जूते से कुचल वैदिक बनना चाहते हो, तुम्हारे इस घृणित कार्य से आज संसार तुमको घृणा की दृष्टि से देख रहा है।

मनु का विवरण आप देख चुके, अब कुछ शतपथ के कथन पर भी दृष्टि डालें। शतपथ कहता है कि—

प्रजापतिर्वाऽइदमग्रऽ आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥ स इमांस्त्रींल्लोकानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीᳪंष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः ॥२॥ स इमानि त्रीणि ज्योतीᳪंष्यभितताप। तेभ्य-

स्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥३॥ सइमांस्त्रीन्वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुव इति यजुर्वेदात्स्वरिति सामवेदात्सदृग्वेदेनैव होत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथम् ॥४॥

शतपथ ११ प्र० ४ ब्रा० २ पृ० ५७६

सृष्टि के आरंभ में एक केवल प्रजापति विद्यमान था उस को इच्छा हुई कि मैं प्रजा बनूं । उस ने निश्चल होकर तप किया, उस श्रान्त और तप्त प्रजापति से पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक उत्पन्न हुये ॥१॥ फिर उसने इन तीन लोकों को तपाया तपे हुये इन तीन लोकों से अग्नि, पवन, सूर्य ये तीन ज्योतियां उत्पन्न हुई ॥२॥ फिर उस प्रजापति ने इन तीन ज्योतियों को तपाया बाद में इन तीन ज्योतियों से तीन वेद उत्पन्न हुये, अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद ॥३॥ फिर उस प्रजापति ने इन तीन वेदों को तपाया इन तप्त तीन वेदों से भूर्भुवः स्वः ये तीन शुक्र उत्पन्न हुये, ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, सामवेद से स्वः, फिर ऋग्वेद से होत्र, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गीथ उत्पन्न किये ॥४॥

यह शतपथ का पाठ है । अब पाठक उत्तम रीति से समझ जावेंगे कि अग्नि, वायु, रवि ये क्या हैं ? इन श्रुतियों में स्पष्ट लिखा है कि तप के द्वारा प्रजापति ने तीन लोकों को बनाया और उन तीन लोकों को तपाकर अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन ज्योतियों को बनाया एवं इन तीन ज्योतियों को तपा कर उनसे तीन वेदों को बनाया । अब पाठक विचार करें कि अग्नि, वायु, सूर्य ये तीनों ही ज्योतियां तत्व हैं या ऋषि ? और फिर इन ज्योतियों को तपाया है, क्या ये ऋषि तपाये गये थे ? अभी तो ब्रह्म लोक में बैठे हुये प्रजापति ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की रचना कर रहे हैं ? इस समय तो पृथ्वी आदि लोकों में प्राण धारण करने वाले प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं ? अभी तो पृथ्वी पर एक मनुष्य भी पैदा नहीं हुआ फिर ये अग्नि, वायु, रवि तीन ऋषि आये कहां से ? (२) जब तीन लोकों को तपाया गया तो उन का सारभूत तीन तत्व निकलेंगे या तीन लोकों में से तीन ऋषि कूद पड़ेंगे ? जब शतपथ खुद अग्नि, वायु, रवि इन को ज्योति लिख रहा है फिर ये ऋषि कैसे होंगे ? दयानन्द जी ने शतपथ की श्रुति के अंश से टुकड़े को चुरा कर आर्यसमाजियों को जो धोखे में डाला है यह दयानन्द जी की चोरी

और सीनाजोरी है ? आर्यसमाजियो ! यदि तुम में जरासा भी धर्म का अंश हो या तुम में किंचित् लज्जा हो तो फिर तुम दयानन्द के बनावटी सर्वथा असत्य जाल में कभी फंस नहीं सकते किंतु तुमने धर्म और लज्जा को दियासलाई दिखलादी . एवं तुम इस चक्कर में पड़े हो कि किसी प्रकार दयानन्द का लेख असत्य न हो । असत्य तो असत्य ही रहेगा ? फिर यह श्रुति दयानन्द के अद्वैत सिद्धांत पर चौका लगा देती है,इस में स्पष्ट लिखा है कि एकला प्रजापति कामना करता है कि मैं प्रजा बनूं ? श्रुति "अभिन्निमित्तोपादानकारण" कह रही है, इसीलिये दयानन्द जी ने सब श्रुतियों को नहीं उठाया । जान गये कि अग्नि,वायु,रवि ऋषि न होकर तत्व बन जायंगे और इससे भिन्न प्रकृति से जो हमने संसार की उत्पत्ति मानी है वह भी मिट जायगी । आर्यसमाजियो ! तुम वेद ज्ञान शून्य हो,भले ही दयानन्द के गढ़े में गिरो किंतु ऐसे अनर्थकारी पापरूप गढ़े में कोई लिखा पढ़ा मनुष्य कैसे गिरेगा ?
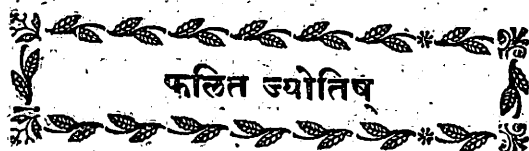
फलित ज्योतिष्

वेद

वेद ने नक्षत्रों से कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है । मंत्र देखिये

> यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे
> अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
> प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति
> सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥

अथर्व० १९ । २ । ८ । १

जो नक्षत्र द्युलोक, अन्तरिक्ष, जल,पृथ्वी,पर्वत और दिशाओं में हैं, चन्द्रमा जिनकी कल्पना करता हुआ चलता है मेरे लिये वे सब शुभ हों ।

> शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः
> शमादित्यश्च राहुणा ।
> शं नो मृत्युर्धूमकेतुः
> शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥

अथर्व० १९ । १ । ९

चन्द्रमा के साथ के सब ग्रह तथा सूर्य के साथ के राहु और मृत्युसूचक धूमकेतु एवं विकराल रुद्रगण हमको कष्ट न दें।

मूल शान्ति

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलवर्हणात्परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥
व्याघ्रे अह्नि अजनिष्ट वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मावधीत्पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम् ॥३॥

अथर्व० ६। ११। ११०

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को विचृत कहते हैं इनमें हुआ पुत्र मूलवर्हण अर्थात् वंशोच्छेदक होता है। हे यम! इन दोनों से इस बालक की रक्षा करो, इसके समस्त दुरित दूर करो और इसको दीर्घायु बनाओ ॥२॥ व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्र वाले दिन में उत्पन्न हुआ यह बालक मूल नामक पाप नक्षत्र से न मरे और उत्पन्न होकर माता पिता को न मारे ॥३॥

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां
मूलवर्हणात्परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान्विचृत प्रजानन्
तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे ॥१॥

अथर्व० ६। ११। ११२

हे अग्ने! मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई का मारक न हो, वंश का उच्छेद न करे। ग्रहण करने वाली जो पिशाची है वह इसके पाशों को काट दे इस कार्य में सब देवता अनुमोदन करें।

आर्यसमाज

जब किसी ग्रहग्रस्त,ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं कि हे महा-

सज ! इसको क्या है ? तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं । जो तुम इनकी शान्ति,पाठ,पूजा,दान कराओ तो इसको सुख हो जाय,नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं । (उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादिलोक हैं,वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें ?(प्रश्न)क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है ?(उत्तर)नहीं,ये सब पाप पुण्यों के फल हैं ।(प्रश्न)तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है ?(उत्तर)नहीं,जो उसमें अंक,बीज,रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची,जो फल की लीला है वह सब झूठी है (प्रश्न)क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ?(उत्तर) हां,वह जन्म पत्र नहीं किन्तु उसका नाम "शोकपत्र" रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्म पत्र बनके ग्रहों का फल न सुनें । जब पुरोहित जन्म पत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता,पुरोहित से कहते हैं महाराज ! आप बहुत अच्छा जन्म पत्र बनाइये । जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल, पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्म पत्र बना के सुनाने को आता है तब उसके मा बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं इसका जन्म पत्र अच्छा तो है ? ज्योतिषी कहता है जो है सो सुना देता हूँ । इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रगृह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा-इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं वाह २ ज्योतिषी जी,आप बहुत अच्छे हो । ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता; तब ज्योतिषी बोलता है कि यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २ ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्यु योग है । इसको सुनके माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोक सागर में डूब कर ज्योतिषी जी से कहते हैं कि महाराज जी ! अब हम क्या करें ? तब ज्योतिषी जी कहते हैं उपाय करो । गृहस्थ पूछे क्या उपाय करें ? ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि ऐसा २ दान करो । ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे । अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत सा यत्न

किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो हमारे मंत्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है, तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप, पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये। और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं, वैसे गृहस्थ भी कहें कि यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले-लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना जो ज्योतिषियों को दिया था।

सत्यार्थ० समु० २ पृ० ६६

विवेचन।

वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है, साथ ही साथ छः नक्षत्र मूल के हैं उनमें पैदा हुये बालक की कुशलता के लिये मूलशान्ति करनी लिखी है, निःसन्देह वेदों ने नक्षत्र-ग्रहों से कल्याण चाह कर मूलशान्ति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। स्वा० दयानन्द जी ने एक भी प्रमाण न देकर वेद के लेख पर चौका लगा दिया। स्वामी जी लिखते हैं कि "ग्रह तो जड़ हैं" भला इन महात्मा से पूछो कि ग्रह जड़ होते तो वेद उनसे शुभ कामना मांगने को क्यों लिखता ? ग्रह जड़ नहीं हैं, ग्रहों को जड़ बतलाने वाले की बुद्धि जड़ है। फिर वेद का खण्डन भी कैसा कि मन्त्रों को छिपाया और वेद के मन्त्रों का खण्डन हुज्जतबाजी से किया, आर्यसमाजियों को दिखला दिया कि हमने जो 'मुखं किमस्यासीत्' मन्त्र के टीका पर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर को मूर्ख बतलाया था उस मूर्ख ईश्वर के बनाये हुये फलित ज्योतिष के सिद्ध करने वाले मंत्रों को हम हुज्जत से ही उड़ाये देते हैं, अब तुमको मानना पड़ेगा कि ईश्वर मूर्ख और स्वामी जी विद्वान् थे। स्वामी जी ने ऐसा किया क्यों ? जब तक ये वेद के मन्त्र हुज्जतों से न उड़ा दिये जावेंगे तब तक हिन्दू लोग ईसाई धर्म में आवेंगे ही नहीं। ईसाई धर्म में ग्रहों को जड़ माना है उसकी सत्यता दिखलाने के लिये आज स्वामी जी वेद मन्त्रों को दियासलाई दिखला रहे हैं। है कोई आर्यसमाजी संसार में जो फलित ज्योतिष् को अवैदिक या मिथ्या कह दे। ऊपर के मंत्रों को देखकर आर्यसमाजियों की नानी मर जाती है। कहो

आर्यसमाजियो ! बोल दो एक बार झूठे जाल फैलाने वाले स्वामी जी की जय।

तीर्थ ।

वेद

वेद ने तीर्थों के महत्व को स्पष्ट रीति से लिखा है देखिये—

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नम-स्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥

यजु० १६ । ४२

हे शिव ! आप सब प्रकार से सब में श्रेष्ठ, सब संसार के तारने पार उतारने हारे हो क्योंकि आप तीर्थरूप हो जैसे गंगा अथवा आप तीर्थों में पर्यटन करते हो आपके अर्थ नमस्कार और तीर्थों के घाट किनारे रूप आपके लिये नमस्कार है।

और पढ़िये—

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवी-
दग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवी-
दृतावदन्तश्चमसां अपिंशत ॥

ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ६

हे ऋभव ! तुममें से कोइ एक तीर्थ सेवन कर देव भाव को प्राप्त हो तीर्थ-जल को सर्वोत्तम साधन कहता है। कोई अग्निहोत्रादि साधन अनुष्ठान से प्राप्त देवभाव तिसको सर्वोत्तम कहता है। इसी प्रकार कोई प्राणीमात्र पर दया के अनुष्ठान से देवभाव को प्राप्त होने से दया को सर्वोत्तम मानता है। इस प्रकार यथार्थ साधन का उपदेश करते हुये यज्ञपात्र के विभाग करते हो अथवा (ऋता-वदन्त) इसका यह अर्थ है कि जितेन्द्री सत्यवादी को तीर्थ फल देते हैं।

और देखिये—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति
यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।

अन्नादधुर्यजमानाय लोकं

दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

अथर्व० १८ । ४

बड़ी आपत्ति को तीर्थों से तर जाते हैं अर्थात् बड़े २ भयंकर पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं, यज्ञ और पुण्य के करने वाले जिस मार्ग से जाते हैं, जो दिशा सब प्राणीवर्ग अर्थात् दिशाओं में स्थितप्राणी यजमान के निमित्त कल्पना करते हुये वे इस पुण्यलोक प्रातिसाधन के मार्ग में प्राप्त होते यजमान के निमित्त पुण्यार्जित लोक का विधान करें ।

अन्य मन्त्र अवलोकन कीजिये—

सरस्वतीसरयुः सिन्धुरूर्मिभि-

र्महोमही रवसायं तु वक्षणीः ।

देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो

घृतवत्पयो मधुमन्नोअर्चत ॥

ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६४ मं० ९

महान् से भी महान् लहरों से युक्त सरस्वती सरयू सिंधुनामा नदी देवियां रक्षा करने के लिये हमारे यज्ञ में आओ, माता की समान प्रेरक जलदेवियां घृत मधु युक्त दुग्ध वा जल को हमें दो ।

मन्त्रान्तर पर भी दृष्टि डालिये—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्ण्या असि-
क्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु ह्यासुषोमया ॥

ऋ० मं० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

हे गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि, (शुतलज) मरुद्वृधे, आर्जीकीये, परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता, सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो और मेरी स्तुतियों को सब प्रकार से सुनो ।

आर्यसमाज

(प्रश्न) यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं झूठे क्यों कर हो सकते हैं ? (उत्तर) तुम सनातन किसको कहते हो । जो सदा से चला आता है । जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत पुस्तकों में

इनका नाम क्यों नहीं ? यह मूर्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ वाम मार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करनी चाहें वे पंडों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं (प्रश्न) जो २ तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं ? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आंख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता (प्रश्न)

गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।१।
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ।२।
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्त जन्मनाम् ।३।

इत्यादि श्लोक पोप पुराण के हैं जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गंगा गंगा कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् बैकुंठ को जाता है ॥ १ ॥ हरि इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है ॥ २ ॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप छूट जाता है यह दर्शन का माहात्म्य है ॥ ३ ॥ क्या झूठा हो जायगा ? (उत्तर) मिथ्या होने में क्या शंका ? क्योंकि गंगा २ वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे। जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके

इस लोक और परलोक का नाश करते हैं,पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है । (प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ? (उत्तर) है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं । और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है । जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं । प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं ।

समानतीर्थे वासी । अ० ४ पा० ४ । १०८

नमस्तीर्थ्याय च । यजु: अ० १६ मं० ४२

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्र को साथ २ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थ सेवी होते हैं । जो वेदादि शास्त्र और सत्य भाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हों उसको अन्नादि पदार्थ देना और उन से विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं ।

सत्यार्थ० समु० ११ पृ० ३३१

विवेचन

स्वामी जी हुज्जतबाजी से वेदों को उड़ाते हैं यह इन की धार्मिकता का चमकता हुआ उदाहरण है । आप कहते हैं कि पंडो के बही खाते देखलो उनसे मालूम होजायगा कि तीर्थ थोड़े ही काल से बने हैं । पंडों की बही क्यों देखें ? ईश्वर का बही खाता वेद क्यों नहीं देखें जिसमें तीर्थों का महत्व भरा है ? क्या स्वामी जी की दृष्टि में वेद पंडों के बही खाते के तुल्य भी महत्व नहीं रखता ? इन लेखों से वैदिक धर्म का प्रचार न होगा किन्तु वेद का सत्यानाश करके हिन्दुओं को ईसाई बनाना जो स्वामी दयानन्द जी का लक्ष्य है,स्वा० दयानन्द के लेख उसी की पुष्टि करेंगे,आर्यसमाजी इसको गौर से विचार लें ।

स्वामी जी तीर्थों के खण्डन में एक वेद मंत्र का "नमस्तीर्थ्याय च" टुकड़ा देकर डराना चाहते हैं । इन के मन में यह समा गया है कि वेद का नाम लेकर हम

योग्य,अयोग्य चाहे जो कुछ लिखें संसार को मानना ही पड़ेगा क्योंकि संसार वेद जानता नहीं,हमारे दिये हुये वेद के टुकड़े से कांप उठेगा । स्वामी जी को इतना ज्ञान नहीं है कि जो हम तीर्थों के खंडन में वेद मंत्र देते हैं संभव है उसी में तीर्थ का मानना निकल आवे ? वे तो मंत्र देकर डरते हैं इस मंत्र का तो समस्त भाष्यकारों ने यह अर्थ किया है कि रुद्र ! आप समस्त तीर्थों में विचरते हैं,इस कारण आप तीर्थ हैं,आपको मैं प्रणाम करता हूँ,अब आर्यसमाजी विचारें कि 'नमस्तीर्थ्याय च' इसमें तीर्थों का खण्डन है या मंडन ? रही बात 'समान तीर्थवासी' इस सूत्र की इसके ऊपर तत्वबोधिनीकार लिखते हैं कि 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्याय मंत्रिषु । योनौ जलावतारेच-इति विश्व, शास्त्र-मार्ग,क्षेत्र-उपाय-उपाध्याय मंत्रि-योनि-जलावतार इन का नाम तीर्थ है । क्या कोई सनातनधर्मी यह कहता है कि तीर्थ शब्द से केवल जल समूह का ही ग्रहण है और शास्त्रादिकों का नहीं ? जब ऐसा विश्व कोश ही लिख रहा है तब तो इस सूत्र का यहां लिखना व्यर्थ और दयानन्द जी की कमसमझी का चमकता हुआ उदाहरण मिलता है । क्या इन चार लाख आर्यसमाजियों में कोई आर्यसमाजी ऐसा है जो तीर्थ की पुष्टि में दिये हुये हमारे मंत्रों का खण्डन करके दयानन्द के लिखे तीर्थ खण्डन ईसाई सिद्धांत की पुष्टि करे ? इस को देख कर आर्यसमाजियों के चेहरे उतर जाते हैं । आर्यसमाजियो ! तुम संसार को धोखे में डाल कब तक चालबाजियों में फांसोगे ? किसी भले आदमी को धोखा देना,चालबाजी के जाल में फांस लेना संसार में तुम्हारी यही इमानदारी रह गई है । विद्या,ज्ञान,मस्तिष्क क्या ये तीनों तुम्हारे साफ होगये ? जरा विचार करो,सर्वथा ही अन्धेर मत मचाओ ।? मूर्तिपूजा के खण्डन का उत्तर हम मूर्तिपूजा के विषय में दे चुके हैं ।

पाप मोचन ।

वेद

जब यह मनुष्य संसार में दुःखी होता है या अन्यों को दुःखी देखता है तब यह अपने दुःख दूर करने की आवाजों को ईश्वर के पास पहुंचाता है । इस आवाज पहुंचाने की विधि और इस क्रन्दन को सुनकर जगदीश्वर मनुष्य के दुःख को दूर करता है यह उल्लेख वेद में पाया जाता है ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥

यजु० ३६। २४

वह तेजभूत देवताओं का कल्याण करने वाला पूर्व में है उदय जिसका पाप रहित शुक्ल जो सूर्य है उस की प्रसन्नता से हम सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष तक हम स्वतंत्र जीवन को धारण करें और सौ वर्ष तक हम स्पष्ट शब्द सुनें एवं सौ वर्ष तक हम भाषण करें तथा हम सौ वर्ष तक किसी के आगे दीन न हों और सौ वर्ष के ऊपर भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं किसी के आगे दीन न हों।

इस मन्त्र में अपने स्वतन्त्र जीवन और इन्द्रियों के पुष्ट होने की सूर्य से प्रार्थना की है। अब अन्य मन्त्र पढ़ने की कृपा करें।

सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रिया-
स्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥

यजु० ३६। २३

जगदीश्वर! जल, औषधी हमारे लिये सुमित्ररूप हों, जो शत्रु हमसे द्वेष करता है और हम जिस शत्रु से द्वेष करते हैं उसके लिये जल-औषधी दुर्मित्ररूप हों।

इस मन्त्र में परमात्मा से अपने कल्याण और शत्रु के अकल्याण की प्रार्थना की है। मन्त्रान्तर पर भी दृष्टि डालिये।

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि
आयुर्दाऽ अग्नेस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि
अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनन्तन्मऽ आपृण ॥

यजु० ३। १७

अग्नि! तुम जठराग्निरूप से देहों के रक्षक हो, मेरे शरीर को रोगादिकों से रक्षा करो, अग्नि! तुम आयु के दाता हो अतः मुझे दीर्घायु को अर्थात् अप-

मृत्यु को दूर करो । प्रसिद्ध है कि जब तक जठराग्नि रहती है तब तक मनुष्य नहीं मरता । अग्नि तुम तेज के दाता हो मुझे तेज दो । अग्नि ! मेरे शरीर का जो अंग ज्ञान के अनुष्ठान में असमर्थ है मेरे उस अंग को समर्थ करो ।

अन्य मन्त्र का अवलोकन कीजिये—

नमस्ते अग्नओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥

साम० पू० १ । १

अग्निदेव ! बलवान् होने को मनुष्य यजमान तुमको नमस्कार करते हैं और तुम अपने बल से हमारे शत्रुओं का नाश करो ।

इसके आगे ईश्वर से पाप क्षमा कर देने के मन्त्र लिखते हैं ।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।
यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदव यजामहे स्वाहा ॥

यजु० ३ । ४५

हमने गांव में जो मन,वाणी,शरीर से परपीड़ारूप पाप किया, बन में जो वृक्ष छेदन, मृगवध आदि पाप किया, सभा में जो अनीति आदि पाप किया, इन्द्रियसमूह में जो धर्मविरुद्ध भोजन, पान, मैथुनादि पाप किया उस पाप को हम नष्ट करते हैं—यह मन्त्र पढ़ कर पापनाशक देवता ईश्वर को हवि दी जाती है ।

द्वितीय मन्त्र—

अग्नेरक्षाणो अंहसः प्रतिस्मदेव रीषतः ।
तपिष्ठैरजरोदह ।

साम० पू० १ । १

अग्निरूप परमेश्वर ! तुम हमको पाप से रक्षा करो, हे प्रीतियुक्त जरारहित अग्नि ! तुम शत्रुओं को मारते हुये बड़े तपाने वाले तेजों से शत्रुओं को भस्म कर दो ।

तृतीय मन्त्र—

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावकशंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥

साम० पू० १ । १

परमेश्वर ! शुद्ध करने वाले पापहर्ता [पाप दूर करने से ही परमेश्वर का

नाम पावक है] अन्न के बढ़ाने वाले स्तुतियोग्य धन को हमारे वास्ते दो और लाकर हमारे वास्ते प्रकट करो । हे ईश्वर ! हमको अच्छे मार्ग से बड़े श्रेष्ठ अच्छे यश कीर्ति धन को दो ।

चतुर्थ मन्त्र—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजु० ४० । १६

हे दिव्य दानादि गुणयुक्त अग्निदेव ! संपूर्ण हमारे कर्मों को जानने वाले आप हमको मुक्ति लक्षण वाले धन वा भोग को उत्तरायण दक्षिणायन मार्ग से प्राप्त करो । कुटिल वंचनात्मक पाप को हमसे पृथक् करो हम आपके निमित्त अनेक प्रणामों का विधान करते हैं ।

पंचम मंत्र

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥१॥

ऋ० मं० १ व० ५ सू० ९७

हे अग्नि परमेश्वर ! हमारा जो पाप है वह हम से निकल कर शोक में पड़कर नष्ट हो जावे और हमारा धन बढ़कर चारों तरफ प्रकाशित हो तथा पुनः पाप शंकित होकर नष्ट हो जावे । यहां पर वीप्सा में पुनरावृत्ति है ।

षष्ठ मंत्र

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

ऋ० मं० १ व० ५ सू० ९७

शोभनक्षेत्र की इच्छा तथा शोभनमार्ग की इच्छा एवं धन की इच्छा से हम तेरा यजन करते हैं, आपकी कृपा से हमारा पाप संकट में पड़कर नष्ट हो जावे ।

इस स्थल में "अप नः" इस मंत्र से लेकर 'स नः सिन्धुम्' इस मंत्र तक

आठ मन्त्र पापक्षमापन के हैं जिनको देखना हो ऋग्वेद देख लें।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है (प्रश्न) क्या है ? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म,स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। सत्यार्थ० समु० ७ पृ० १८२।

और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है। सत्यार्थ० पृ० १८२।

ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओं का नाश,मुझ को सब से बड़ा मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायें। सत्यार्थ० पृ० १८५।

ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं। सत्यार्थ० पृ० १८५।

(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा होजाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त होजायंगे। सत्यार्थ० पृ० १९१।

विवेचन

चलो स्वामी जी अच्छे वैदिक निकले,समस्त वेद की ही सफाई कर डाली अवतार उड़ाया,मूर्तिपूजा खाई,अब स्तुति का सफाया करते हैं। आप कहते हैं

कि स्तुति करने से ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता। वाह स्वामी जी वाह तुम्हारा दिमाग निराला? वेद निराला? और चालबाजी निराली? आप की दृष्टि में तो ईश्वर की स्तुति करना झख मारना या संसार को बेवकूफी दिखलाना है।

आप अनोखा ज्ञान बतलाते हैं कि स्तुति करने का मतलब ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव बनाना है। आपकी दृष्टि में ईश्वर में भी गुण, कर्म हैं। आपको यह भी मालूम है कि गुण जब रहेगा तब किसी आधार में रहेगा? और आधार जो होगा वह निःसन्देह साकार होगा? जब आपकी दृष्टि में ईश्वर साकार ही नहीं तो उसमें गुण कैसे ठहरेगा? जरा न्याय दर्शन देखो। न्याय दर्शन ने उत्क्षेपण, अपक्षेपण, कुंचन, प्रसारण, गमन ये पांच कर्म माने हैं। ईश्वर में उत्क्षेपण कर्म है, वह किसी को उठाकर ऊपर फेंकता है या बराबर में फेंकता है? किसी को लम्बा चौड़ा करता है या किसी को घिस डालता है अथवा वह चलता है, उसमें कौन कर्म है? आपने तो ईश्वर को अविक्षेप और अनिर्वचनीय तथा इच्छारहित माना है। इच्छा रहित में कर्म का करना कभी बन सकता है? एवं ईश्वर कैसे गुण मनुष्यों में आवेंगे कैसे? वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् है, आपके मत में शरीर रहित है तो क्या दुनियां के मनुष्य सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान बन कर अपने शरीर को छोड़ दें? जहर खाकर मर जावें? आपने सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के तीन कर्म बतलाये सृष्टि का रचना, प्रलय का करना, जीव को उसके कर्मानुसार फल देना, वेद का बनाना, क्या अब ये चारों काम आर्यसमाजी करने लगेंगे? स्वभाव नाम तो शरीर का है "स्वभवनं स्वभावः" जो साथ में पैदा हो उसका नाम स्वभाव है। क्या ईश्वर के भी शरीर है? यदि स्वभाव नाम आप आदत का मानें तो ईश्वर कैसी आदत जीवों की तो नहीं हो सकती, संभव है आर्यसमाजियों की हो जावे? फिर आपने यह किस आधार पर माना कि स्तुति करने का मतलब यही है कि ईश्वर के सदृश जीव के गुण, कर्म, स्वभाव हो जाना। स्वाभाविक धर्म किसी का बदलता नहीं, नीम में कटुत्व और नीबू में खट्टापन, कोयले में स्याही, नमक में खारापन, ऊख में मिठास कभी बदलते हैं? आप बातें कैसी करते हैं?

आप लिखते हैं कि "प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना" उपासना

से जो आपने सहाय का मिलना माना है, यह सहाय कौन देगा ? आप लिखते हैं कि यदि ईश्वर पापों को क्षमा कर दे तो वह दयालु न रहे। हम भी यही कहेंगे कि यदि ईश्वर प्रार्थना से सहाय करता है तो वह दयालु नहीं रहा क्योंकि जिन्होंने प्रार्थना की उनको सहाय दी और जिन्होंने नहीं की वे टका से रह गये ? प्रार्थना की रिश्वत खाने वाला ईश्वर कभी दयालु हो नहीं सकता-यह आप ही का सिद्धान्त था कि पाप क्षमा कर देने से ईश्वर दयालु नहीं रहता। आप उपासना से ईश्वरमेल बतलाते हैं गजब कर रहे हैं। समुद्र में मिला हुआ गंगाजल कभी अलाहिदा नहीं हो सकता फिर आप यहां जीव ब्रह्म का मेल करके आपने लिखे मुक्ति से पुनरागमन का क्यों कचूमर निकाल रहे हैं ? फिर आप ईश्वर का साक्षात्कार होना भी मानते हैं। क्या ईश्वर शरीरी है जिसका साक्षात्कार होगा ? साक्षात्कार इन्द्रिय और मन से होता है, ये सब साकार हैं इस कारण ये साकार का ही साक्षात्कार कर सकते हैं। आपने ईश्वर का साक्षात्कार लिख कर यहां पर ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त को रगड़ डाला।

आपने यह खूब लिखा कि 'जो केवल भांड के समान ईश्वर की स्तुति करता है' ईश्वर स्तुति करने वालों को भांड की उपमा देने वाला या तो नास्तिक चार्वाक ही हुआ था या आप ही हुये। आपने यह लिखा कि 'ऐसी स्तुति कभी न करनी चाहिये कि मेरे शत्रुओं का नाश हो और मेरे धन हो एवं मैं प्रतिष्ठा-वान् बनूं। इससे तो यही जाना जाता है कि आपने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखे। जो मन्त्र हमने दिये हैं उनमें शत्रुओं के नाश और धनी होने की प्रार्थना स्पष्ट लिखी है, क्या आपकी दृष्टि में इन मन्त्रों के बनाने वाले जगदीश्वर की बेसमझी तो नहीं है ? यह आपने खूब लिखा कि 'हमको रोटी बनाकर खिला-इये' ऐसा तो आपने ही किया होगा ? ईश्वर भक्त जगद्गुरु शंकराचार्य, भग-वान् रामानुजाचार्य, पूज्य आचार्य वल्लभ तथा वन्दनीय निम्बार्काचार्य, प्रातः स्मरणीय माध्वाचार्य प्रभृति अनेक ईश्वर भक्त हुये हैं; कौन कहता है कि ये सब आलसी थे ? आलसी तो आप हैं जो ईश्वर की स्तुति प्रार्थना से ही पिण्ड छुड़ा रहे हैं ?

आपने यह भी अच्छा इन्साफ किया कि ईश्वर भक्तों के पाप ही क्षय नहीं करता। यदि ऐसा है तो फिर ईश्वर के मानने की क्या आवश्यकता जो

लोग दीन होकर ईश्वर की शरण जाते हैं और कहते हैं कि भगवन्! अब आप हमारे पिछले पापों का नाश कर दें और आगे को हम कभी भी पाप नहीं करेंगे ईश्वर उनके पापों का क्षय करता है या नहीं? आपको तो यह सोच लगी है कि यदि ईश्वर पाप क्षमा कर देगा तो न्यायकारी न रहेगा। यदि ईश्वर पापों का नाश नहीं करता तो फिर आपने अपनी लेखनी से यह कैसे लिख दिया। देखिये हम आपके लेख को दिखलाते हैं।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अपनः शोशुचदघम्। ऋ० १।७।५।६

(आर्याभिविनय मं० ३६)

हे अग्ने परमात्मन्! तू ही सब जगत्, सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। हे कृपालो! आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें।

आपने आर्याभिविनय में आठ-दश मंत्रों के अर्थ में यह लिखा है कि हे ईश्वर! आप हमारे पापों का नाश करदें। क्या आपका लिखना वेद मंत्रों का भाष्य करना यह सब मिथ्या है अथवा वेद मंत्र ही मिथ्या हैं या कहीं ऐसा तो नहीं कि ईश्वर आर्यसमाजियों के पापों का नाश कर देता हो और सनातन-धर्मियों के पापों का नाश न करता हो। मामला क्या है? आप ही खंडन करें और आप ही मण्डन करें-यह बात क्या है? क्या आप सत्यार्थप्रकाश लिखते समय अपने लिखे आर्याभिविनय के लेख को भूल गये थे? आप कैसे महर्षि हैं, अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं। क्या इसी गुण से आपको महर्षि पदवी मिली है?

नाम स्मरण महत्व

वेद

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां

मनामहे चारुदेवस्य नाम ॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ मं० १

हम किस का शुभनाम ग्रहण करें और हम किसके द्वारा पिता माता का दर्शन करें ।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत् ।

छान्दो० प्र० १ मं० १

ओम जिस का नाम है जो अविनाशी है उस की उपासना जप करना चाहिये ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

गीता ८ । १६

जो पुरुष "ॐ" इस ब्रह्म के नाम का उच्चारण करता हुआ उस के अर्थ-स्वरूप मेरे को चिन्तन कर शरीर को त्यागता है वह परम गति को प्राप्त होता है ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

केन० उ० खं० १ मं० ५

जो मन से इयत्ता करके मन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान, उसी की पूजा उपासना नाम स्मरण तू कर ।

आर्यसमाज

गंगा २ वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण शिव और भगवती नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता । नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता । जैसा कि मिश्री २ कहने से मुंह मीठा नहीं होता और नींब नींब कहने से कडुवा नहीं होता ।

सत्यार्थ० समु ११ पृ० ३१४

विवेचन

स्वामी जी हैं बड़े मजे के, हुज्जतबाजी से ही वेद को उड़ा देते हैं । ऊपर के मंत्रों में जो नाम महत्व वेद-गीता ने बतलाया था वह स्वामी जी ने जरा सी

हुज्जत में उड़ा दिया,अब बतलाओ ईश्वर बड़ा कि स्वामी ? और स्वामी जी में एक बड़ा प्रशंसनीय गुण है वह यह कि अपना लिखा आप ही भूल जाते हैं। आपने प्रथम समुल्लास में ओंकार की व्याख्या करते हुये लिखा है कि 'अवतीत्योम्-रक्षा करने से ओ३म्'

रक्षा करने से ओम् कहलाता है तो यह जो ओम् ईश्वर का नाम है वह स्मरण करने से रक्षा करता है या इस निराकार ओम् को पीतल की शकल बनाकर शिर में टांगने से रक्षा करता है यद्वा अपने आप स्वाभाविक धर्म से रक्षा करता रहता है-इस का आपने कुछ नहीं लिखा। गीता कहती है कि ओंकार के स्मरण से उच्च गति मिलती है,फिर यहां पर स्मरण से ही रक्षा क्यों न मानें ? आप क्या कहते हैं जरा वेद तो देखलें ?

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४

मुण्डक० खं० २

ॐ का धनुष और आत्मा का तीर बना कर ब्रह्म को लक्ष्य बनावे,फिर सावधान होकर तीर को छोड़े ऐसा करने पर ब्रह्म होजाता है।

यहां पर ॐ का धनुष और आत्मा का बाण छील छाल कर बढ़ई नहीं बनाता किंतु अन्तःकरण में यह घटना होती है। जब ॐ का धनुष बनाया जावेगा तब अन्तःकरण में ॐ का स्मरण होगा, बिना स्मरण किये ॐ का न धनुष बन सकता है और न जीव ब्रह्म बन सकता है फिर आप ईश्वर नाम स्मरण के महत्व को कैसे मिटा देंगे। स्वामी जी आपने आर्याभिविनय में ईश्वर का भजना लिखा है देखिये—

स पूर्वया निविदा कव्यतायो
रिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च
देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४२

ऋ० १।७।३।२

(आर्याभिविनय मं० ४२)

हे मनुष्यो! सो ही आदि सनातन,सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई कार्य नहीं था तब सृष्टि के आरम्भ स्वप्रकाश स्वरूप एक ईश्वर [ने]

प्रजा की उत्पत्ति और ईक्षणता [विचार] और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक लोकान्तर रचे हैं, जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर है उसी विज्ञानादि धन देने वाले को विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं, हम लोग उसी को भजें।

इन्द्रियों से अग्राह्य निराकार के नाम का स्मरण ही भजन है तो भी आप नामस्मरण का खण्डन करते हैं-यह आपकी ताजी बुद्धि का नमूना है। मिशरी कहने से मुंह मीठा नहीं होता तो क्या नींबू कहने से भी मुंह में पानी नहीं आता। यदि ऐसा ही है तो आपने दयालु, न्यायकारी आदि ईश्वर के नाम लेने क्यों लिखे?

वेद

वेद पृथ्वी को अचला मानता हुआ सूर्यादि ग्रह पंजरों का पृथ्वी के चारों तरफ भ्रमण मानता है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वस्तभितं येन नाकः यौऽन्तरिक्षे रजसो विमानः। कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६

यजु० ३२। ६

जिसने द्युलोक जल पूर्ण अर्थात् वृष्टिदायक किया है और पृथ्वी निश्चल वृष्टिग्रहण अन्न निष्पादन में दृढ़ की है। जिसने स्वर्लोक जहां आदित्य मण्डल तपता है सो और जिसने दुःख रहित स्वर्गलोक स्तंभित किया है। जो अन्तरिक्ष में वृष्टिरूप जल का निर्माता है उस प्रजापति देवता के निमित्त हवि देते हैं।

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेन
देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

यजु० ३३। ४३

रात्रि लक्षण तम से वर्तमान देवादिक और मनुष्यादिकों को अपने २

कार्य में योजित करता हुआ एवं समस्त भुवनों को देखता हुआ हिरण्मय देदीप्यमान रथ से सूर्य आता है।

निघंटु ने पृथ्वी को "निर्ऋति" लिखा है। "निर्ऋति" का अर्थ है गमन रहित (चालशून्य)। यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको "निर्ऋति" कैसे लिखता।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः॥

(सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय)

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है, ऐसे ही स्वभाव से पृथ्वी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है।

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा॥३०॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधराघनाः॥३१॥
मध्ये समन्ताद्दण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥३२॥

सूर्यसिद्धान्त अ० १२

ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाश कक्षा कहते हैं उसके मध्य में नक्षत्र मण्डल का भ्रमण होता है उसके नीचे यथाक्रम शनि, जीव, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, एक से नीचे एक भ्रमण (अपनी अपनी मध्यकक्षा में) करते हैं उसके नीचे सिद्ध विद्याधर मेघ हैं और चारों ओर से बीचों बीच ब्रह्माण्ड के मध्य (केन्द्र में) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल सर्वतोभाव से स्थित है।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ? (उत्तर) घूमते हैं (प्रश्न)

कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजु० अ० ३ मं० ६

सत्यार्थप्र० समु० ८ पृ० २३१

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

विवेचन ।

(१) क्या मजे की बात है मुसलमानों का सिद्धान्त वेद में से निकल पड़ा। जिन हिन्दुओं का वेद धर्मपुस्तक था, वेद ने उनके सिद्धान्त को खण्डन कर दिया और मुसलमानों के सिद्धान्त को सत्य बना दिया इस प्रकार की घटनायें संसार में कभी देखी नहीं गईं वरन् ऐसा देखा जाता है कि जिसका धर्म पुस्तक होता है उसके सिद्धान्त का मण्डन करता हुआ परपक्ष को मिथ्या ठहराया करता है किन्तु यहां पर इसके विरुद्ध हुआ। इससे हम कह सकते हैं कि वेद का बहाना लेकर परिव्राजकाचार्य ने मुसलमानों की हिमायत की और न्याय का गला घोट डाला है।

(२) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रू ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है वेदों का यह नियम है कि जो जिस मंत्र का देवता होता है उस मंत्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इसका अग्नि देवता है तो पृथ्वी परक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मंत्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृत ज्ञाता ही समझेंगे, संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य मान लेंगे। सच है, पक्षपात बड़े २ अनर्थ करवा देता है शोक इस बात का है कि यवनों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोटते हैं।

(३) इस मन्त्र के अर्थ में 'मातरम्-पितरम्-पुनः' आदि कई एक शब्द बिल्कुल ही छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया। जिस अर्थ में मन्त्र के शब्द ही छूट जायं क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है ? हमको नहीं मालूम ऐसे

अर्थ को कोई कैसे सच मान लेगा।

(४) यदि हम इस मन्त्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रख दें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मन्त्र का यही अर्थ है जो इस के भाषा-टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मन्त्र में पृथ्वी का वर्णन है या अग्नि का ? हमको तो इतना विचार करना है कि मन्त्र के नीचे टीका रूप जो भाषा लिखी है वह इस मन्त्र का अर्थ है या नहीं ? इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेद मन्त्र का अर्थ ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई किसी मनुष्य ने पूछा 'लोटे' का क्या अर्थ ? जिस से पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने 'जूता' है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करनेवाले को भी हिन्दू वेद भाष्यकार मान लेते हैं।

वेद मंत्र का ठीक अर्थ देखिये-(आयम्)इस(गौः)यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले (पृश्नि)श्वेत रक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने (आ)सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्व दिशा में(मातरम्) पृथ्वी को (असदत्)प्राप्त किया(च) और (स्वः)सूर्यरूप होकर(प्रयन्)स्वर्ग में चलते अग्नि ने (पितरम्)स्वर्गलोक को (असदत्)प्राप्त किया।

सिद्ध हो गया कि इस मन्त्र में भूभ्रमण नहीं है किन्तु मन्त्र का धोखा देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का अचलत्व मानते रहे हैं इसके पश्चात् सब से प्रथम ईरान के दार्शनिक "पैथागोरास" ने यह आवाज उठाई कि पृथ्वी घूमती है ? इसके पश्चात् 'केप्लर' और सरन्यूटन' ने संसार में इस सिद्धान्त का प्रचार किया ? भारतवर्ष में एक 'आर्यभट्ट' नामक विद्वान् हुये, उन्होंने अठारह अधिकार का 'आर्यभट्टि' नामक ग्रन्थ लिखा, इसमें पृथ्वी का अचलत्व और ग्रहपंजर का भ्रमण सिद्ध किया। इस ग्रन्थ के लिखने पर भी उस समय के "लल्ल" और "वराहमिहिर" जो ज्योतिष् के अतिप्रवीण विद्वान् थे उनके सामने आर्यभट्ट ने प्रतिष्ठा नहीं पाई। फिर प्रतिष्ठा पाने के उद्योग से आर्यभट्ट ने एक सौ बीस श्लोक का दूसरा 'आर्यभट्टि' नामक ग्रंथ लिखा और इसमें पैथागोरास के सिद्धान्त भूभ्रमण को सिद्ध किया किन्तु लल्ल और

वराह ने इसका प्रबल खण्डन किया अतः यह सिद्धान्त दब गया। फिर केप्लर ने इसको उठाया, बाद में सरन्यूटन के उठाने पर यह पुष्ट होकर तालीम में आगया, शिक्षा में आजाने के कारण इस मिथ्या सिद्धान्त को संसार सत्य मानने लगा। जब सब संसार इसको मान बैठा तब स्वा० दयानन्द जी ने वेद से सिद्ध कर दिया। भूभ्रमणवादियों की समस्त युक्तियों को देकर हम खण्डन लिखते हैं पाठक पढ़ें।

(१) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि जैसे नाव पर बैठे हुये मनुष्य को नाव का ठहरा रहना और किनारे के वृक्षों का चलना जान पड़ता है इसी प्रकार पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को पृथ्वी की स्थिरता और ग्रहों का भ्रमण समझ पड़ता है।

यह उदाहरण यदि निर्दोष होता तो संसार इसके मानने को भी तैयार हो जाता किन्तु इस उदाहरण में भ्रम और प्रत्यक्ष विरोध ये दो दोष हैं इस कारण विचार शील मनुष्य इसको कभी भी मानने को तैयार नहीं।

(क) जहां पर कुछ का कुछ दीखता हो ऐसे ज्ञान को भ्रमजन्य ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान मिथ्या हुआ करता है। कल्पना करो कि एक मनुष्य अंधेरी रात में चलाजा रहा है और रास्ते में एक मोटी रस्सी का तीन हाथ का टुकड़ा पड़ा है, अंधकार के कारण उसको मिथ्या ज्ञान होगया कि यह सर्प है, जैसे रस्सी में सर्पज्ञान मिथ्या और भ्रमजन्य ज्ञान है इसी प्रकार नौका में स्थिरता और नदी के तट के वृक्षों में चलने का ज्ञान भी भ्रमजन्य और मिथ्या ज्ञान है; भ्रमजन्य मिथ्या ज्ञान का चर्चा न्याय, वेदान्त प्रभृति समस्त ही हिन्दु दर्शनों में आता है, दर्शनों ने स्पष्ट कह दिया है कि भ्रमजन्य मिथ्या ज्ञान असत्य होता है अत एव त्याज्य है; फिर हम किस आधार पर नौका की स्थिरता और किनारे के वृक्षों का चलना इस भ्रमजन्य ज्ञान को सत्य मानें? संसार के आगे नाव और किनारे के वृक्षों के उदाहरण को रखने वाले की बुद्धि में यह दोष उस समय नहीं आया किन्तु जो लोग इसको समझ रहे हैं वे इस प्रकार के उदाहरण को लड़कों का खेल समझ कर छोड़ देते हैं।

(ख) नौका में स्थिरता बुद्धि और वृक्षों में संचलन बुद्धि असावधानी से होती है। यदि तुम नौका पर बैठ अपने मन को रोक सावधानता से देखोगे तो यह विपरीत ज्ञान हो ही नहीं सकता। जो बात असावधानी से मनुष्य के

अंतः करण में बैठी है उसको सत्य मानना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है वरन् सावधानी से उसका ज्ञान अंतः करण से निकाल देना ही मनुष्य कर्तव्य है। अब हम सावधानी से देखते हैं तब हमको कहना पड़ता है कि यह उदाहरण ही गलत है। नाव का न चलना, वृक्षों का चलना यह ज्ञान होता ही नहीं, जो ज्ञान नहीं होता उसको लेकर पुष्टि करना यह उदाहरण बनाने वाले और उदाहरण को सच्चा समझने वालों की भूल है, चलो पहिले उदाहरण का सफाया हो गया।

(ग) जो पृथ्वी को अचला और ग्रह गणों का भ्रमण मानते हैं उनका यह कथन है कि जैसे कुछ मनुष्य वृत्ताकार चबूतरे पर खड़े हों और उस चबूतरे की बहिर्भूमि पर घोड़े दौड़ रहे हों, इसी प्रकार हम वृत्ताकार गोल पृथ्वी पर ठहरे हैं और घोड़ों की भांति भपंजर पृथ्वी की परिक्रमा दे रहा है, भूभ्रमणवादियों के पास कोई युक्ति, कोई प्रमाण ऐसा नहीं है कि जिससे इस उदाहरण का खण्डन हो जावे, अपने दिये उदाहरण की पुष्टि में गिर जाना और दूसरे के दिये उदाहरण के खण्डन में चुप रह जाना यह भूभ्रमणवादियों की अत्यन्त कमजोरी है, जो विवेकशाली मनुष्यों के अन्तःकरण में यह सिद्ध कर देती है कि भूभ्रमणवादियों के कथन में कोई सार नहीं केवल हठ धर्मी और अभिमान है।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि सहस्रों तारे पृथ्वी से अत्यन्त दूर हैं उनकी रोशनी पृथ्वी पर इतनी देरसे आती है कि उस रोशनी से जब हिसाब लगाया जाता है तो करोड़ों मील दूरी उन तारों की सिद्ध हो जाती है, ऐसे तारे जब पृथ्वी के चारों तरफ घूमेंगे तब उनकी क्या चाल होगी यह दोष पृथ्वी के अचला होने में आता है।

इसका उत्तर यह है कि जिनका प्रवेश भपंजर में नहीं है वे ऐसी शंका किया करते हैं। सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों के नाम स्पष्ट लिख दिये जो पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। आकाशस्थ सब ही तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमते, पुच्छल तारों से पता चला है कि बाज बाज पुच्छल तारा पृथ्वी के जिस भाग में आया था उसी स्थान पर वह सैकड़ों वर्षों के पश्चात् आता है फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आकाश के सब तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी की एक परिक्रमा दे जाते हैं? आप आकाश गंगा को ही ले लें, चातुर्मास्य में एक ऐसी सड़क सी दिखलाई देती है जिसकी लम्बाई उत्तर दक्षिण होती है और

उसके तारों की वकुतायत रहती है, चातुर्मास्य में वह दीखती है जाड़े और गर्मी में नहीं दीखती फिर हम कैसे मान लें कि आकाश गंगा के तारे चौवीस घंटे में पृथ्वी का फेरा करते हैं, इन सब झगड़ों को निबटाने के लिये सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों का नाम स्पष्ट लिख दिया जो चौवीस घंटे में पृथ्वी की परिक्रमा दे आते हैं। इन ग्रहों को बतलाने वाला श्लोक हम ऊपर लिख चुके हैं।

अब हम उन प्रमाणों को रखते हैं कि जिनमें युक्तिवाद को लेकर भूभ्रमण का खण्डन किया गया है पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षिति-
रित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या न खात्पुनः
स्वनिलयमुपेयुः ॥ ६ ॥
अन्यच्च भवेद् भूमेरन्हा
भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरण-
मथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति ॥ ७ ॥

वराहमिहिर।

जो यह कहते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है भपंजर नहीं घूमता तो उनसे हमारा यह प्रश्न है कि ऐसा होने पर पक्षी अपने घोंसलों में नहीं जा सकेंगे ॥ ६ ॥ यदि पृथ्वी तीव्र वेग से पूर्वाभिमुखी भ्रमण करती है तो ध्वजा पताका पृथ्वी के वेग से सर्वदा पश्चिम की तरफ को ही उड़ेंगी और यदि पृथ्वी मंद वेग से पूर्व को चलती है ऐसी दशा में २४ घण्टे में उसका पूर्ण भ्रमण नहीं हो सकेगा ॥७॥

यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुःखगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झिताः
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥ ४२ ॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः।

अथ मंदगमात्तदा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥ ३ ॥
शि० वृ० गो० ।

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पत्ती अपने घोसलों में नहीं पहुँच सकेंगे और आकाश का फैंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा ॥ ४२ ॥ यदि पृथ्वी पूर्वाभिमुखी घूमती है तो फिर बादल हमेशा पश्चिम को जायगा । यदि कहो कि पृथ्वी धीरे धीरे चलती है इस कारण बादल पश्चिम को नहीं जाते तो ऐसी मंद-गति से एक दिवस में पृथ्वी का भ्रमण कैसे होगा ॥ ४३ ॥

* स्पष्टीकरण *

इन श्लोकों में भूभ्रमणवादियों के सिद्धान्त में पांच दोष दिखलाये हैं (१)वायु का जोरदार चलना (२) बड़े जोर के साथ ध्वजा पताकाओं का सर्वदा पश्चिम को उड़ना (३) बादल का पश्चिम को जाना (४) बाण का पश्चिम को गिरना (५) पक्षियों को घोसले का न मिलना ।

इन दोषों को हम क्रम से पाठकों के आगे रखते हैं, पाठक समझने का उद्योग करें । आकाश में किसी चीज के घूमने या पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में से किसी वस्तु के जाने से आकाश में धक्का लगता है, इस संचलन शक्ति से वायु पैदा हो जाता है,आप हाथ में पंखा लीजिये और उसको घुमाइये निश्चल और शान्त आकाश में पंखे के घूमने से वायु पैदा हो जावेगा । जिस कमरे में बिजली का पंखा लगा रहता है उसे पंखे को जितने जोर से घुमाया जावेगा उतना ही वायु जोर से चलेगा, जब मोटर जोर से चलता है तो आकाश में उसका धक्का लग कर जोरदार वायु उत्पन्न होजाता है और वह वायु उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा से मोटर आ रहा है, इसी प्रकार बाम्बे मेल या कलकत्ता मेल जब अपनी पूरी चाल पर चलता है तो आकाश में धक्का लग कर इतना जोरदार वायु पैदा हो जाता है कि उस वायु के जोर से रेल की सड़क के पास के पते,घास, कपड़े उड़ कर अपने स्थान को छोड़ देते हैं । अब सिद्ध हो गया कि जो वस्तु जितने वेग से चलेगी उतना ही भारी धक्का उसका आकाश में लगेगा, धक्के के तुल्य वायु पैदा होगा और वह वायु उस दिशा को जावेगा जिधर से वह वस्तु आ रही है । मोटर का उदाहरण हमने दिखला दिया अब रेल का और समझवें। रेल पर एक पताका बांध दीजिये,जब रेल चलेगी तब वह पताका उड़ कर उसी

तरफ आवेगी जिधर से वह रेल आ रही है। सभी लोग रेल का सफर करते हैं, रेल में जब कोई मनुष्य खिड़की के बाहर धोती सुखाने लगता है तब वह धोती बड़े वेग से उड़ कर उसी दिशा को जाती है जिस दिशा से रेल आरही है।

पृथ्वी की परिधि (दायरे का घेरा) २५ हजार मील है, जैसे जोर से गेंद घुमाई जाती है या जोर से कुम्हार का चाक घूमता है इनके मत में वैसे ही पृथ्वी घूमती है, २५ हजार मील पृथ्वी का २४ घंटे में दौरा हो जाता है, यदि हम इस पर त्रैराशिक लगालें तो एक घंटे में १०४१ मील और एक मिनट में १७ मील घूमती है। पृथ्वी की चाल तेज और पृथ्वी का आकार विस्तृत इन दो कारणों से आकाश में जोरदार धक्का लगेगा उससे तीव्र वेगवान् वायु उत्पन्न होगा जिससे पृथ्वी पर सर्वदा भयंकर जोरदार आंधी चला करेगी, ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर कोई विचारशील मनुष्य किस प्रकार पृथ्वी का घूमना मान ले ? भूभ्रमणवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं।

(२) हम यह पहिले लिख आये हैं कि मोटर और रेल के धक्के से जो वायु पैदा होता है वह उस दिशा को जाता है जिस दिशा से रेल या मोटर आ रही है। हमारी पृथ्वी पूर्व को आ रही है इससे उत्पन्न हुआ वायु सर्वदा पश्चिम को जावेगा,पश्चिमको हवा जाने के कारण संसार में जितनी भी ध्वजा पताका लगी हैं, वे सर्वदा जोर से पश्चिम को उड़ा करेंगी ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर हम कैसे मानलें कि पृथ्वी घूमती है ?

(३) पृथ्वी के भ्रमण से एक और दोष आवेगा जिसका दूरीकरण भूभ्रमणवादी नहीं कर सकते वह यह कि बादल सर्वदा पश्चिम को जाया करेंगे, कभी भी पश्चिम से पूर्व को बादल न आवेगा, इसको इस प्रकार समझिये कि जो बादल पूर्व से उठ कर पश्चिम को जा रहा है वह तो पश्चिम को जावेगा ही किंतु जो बादल पश्चिम से उठ कर पूर्व को जावेगा हमारी दृष्टि में वह भी पश्चिम को जाता ही नजर आवेगा, इसको इस तरह समझिये कि बादल पूर्व को जा रहा है और पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है, बादल की चाल धीमी और पृथ्वी की चाल तेज है, जैसे २ समय बीतेगा वैसे २ पृथ्वी और बादल का फासला बढ़ेगा तब हमको यह मालूम पड़ेगा कि बादल पश्चिम को जा रहा है, अन्त में वह बादल धीरे २ हम से अत्यन्त दूर हो जावेगा और फिर पश्चिम दिशा में जो बादल हमको दिखलाई दे रहा था उसका दीखना भी बन्द हो जावेगा किंतु ऐसा प्रत्यक्ष

में नहीं होता, फिर हम पृथ्वी का भ्रमण किस आधार पर मान लें, क्या केवल इसी आधार पर मानना होगा कि यह योरूपीय सिद्धान्त है और एशिया वाले बेवकूफ एवं यूरोपवाले हमेशा विद्वान् होते हैं ?

(४) पृथ्वी के भ्रमण से जो चतुर्थ दोष उत्पन्न होता है वह यह है कि बाण पश्चिम को जायगा। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने धनुष पर रखकर तीर ऊपर को फेंका अब वह तीर पश्चिम में गिरेगा कारण इसका यह है कि धनुष से तीर निकल कर आकाश में गया और फिर वहां से लौटा, आने जाने में बाण को लगा चौथाई मिनट, अब चौथाई मिनट में जहां से वह बाण ऊपर को फेंका गया है वह भूमि सवा चार मील पूर्व को चली गई इस कारण बाण सर्वदा पश्चिम में गिरेगा किंतु ऐसा नहीं होता, जब प्रत्यक्ष में बाण पश्चिम में नहीं गिरता फिर प्रत्यक्ष विरुद्ध भूभ्रमण को कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान लेगा, केवल वे ही लोग मानेंगे जो लार्ड मेकाले की दूषित शिक्षा पद्धति के पंजे में पड़कर अपने विचार और अपनी बुद्धि को तिलांजलि दे चुके हैं।

(५) यदि पृथ्वी घूमती है तो फिर पक्षियों को घोंसले नहीं मिलेंगे। कल्पना करो कि प्रातः काल छः बजे कबूतर आकाश को उड़ गया और वह आठ बजे उतरा, अब वह घोंसले में जाना चाहता है तो उसको क्या घोंसला मिल सकेगा ? वह दो घण्टे उड़ा है दो घण्टे में उसका घोंसला दो हजार मील आगे बढ़ गया ? अब हजरत आकाश में ही फिरें मारे मारे। यदि कबूतर ऊपर उड़ कर तुरंत ही उतरने लगा, अब भी उसका घोंसला न मिलेगा क्योंकि उड़ने में लगे तीन मिनट, तीन मिनट में उसका घोंसला गया ५१ मील, अब वह जो लौट रहा है तो उसकी चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है अब हजरत यह भी आकाश में ही रहा किन्तु कबूतर को घोंसला मिल जाता है फिर हम कैसे मान लें कि पृथ्वी घूमती है ?

* विचार *

इन समस्त प्रश्नों के ऊपर भूभ्रमण वादी एक उत्तर देते हैं कि वायु और ध्वजा, पताका, बादल, बाण, कबूतर इन सबको भूवायु पूर्व को खैंचता जाता है इस कारण ये पांचों दोष नहीं आते, इस विषय में भूभ्रमणवादी भिन्न भिन्न दृष्टान्त भी देते हैं उन सबका विचार पाठक क्रम से सुनें।

(१) इनका कथन है कि रेल में बैठकर जब हम गेंद ऊपर को फेंकते हैं तो वह

गेंद जिधर से गाड़ी आ रही है उस तरफ नहीं जाती किंतु उसमें रेल का वेग भरा रहता है इस कारण गेंद भी रेल के साथ खिंची चली जाती है ऐसे ही पृथ्वी के ऊपर रहने वाली समस्त वस्तुओं को भूवायु पृथ्वी की चाल पर पूर्व को खैंचता है।

इसका उत्तर यह है कि गेंद को ऊपर फेंकते समय हाथ का ऐसा इशारा किया जाता है जिससे गेंद ठीक हमारे हाथ में आजावे और जब इशारे में फर्क पड़ जाता है तब गेंद को हाथ में लेने के लिये हाथ बढ़ाना पड़ता है। हम रेल में बैठे ही बैठे गेंद को इस इशारे से फेंक सकते हैं कि गेंद एक हाथ उधर को चला जावे जिधर को रेल जा रही है क्या ऐसी दशा में भूभ्रमणवादी गेंद में रेल का उक्त वेग मानेंगे ? गेंद में अन्तर अवश्य आता है किंतु वह इतना कम है कि जो ध्यान में नहीं आसकता।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि रेल की लालटेनों के पास पतंगे घूमते हैं और वे रेल के वेग से रेल की चाल पर चले जाते हैं यह उदाहरण सिद्ध करता है कि पृथ्वी के ऊपर की समस्त वस्तुयें भूवायु से खिंच कर पृथ्वी की चाल पर जाती हैं।

इसका उत्तर यह है कि पतंगे रेल के भीतर आगये, रेल उनका आधार हो गई, भीतर ही क्या यदि रेल के ऊपर भी कोई मनुष्य बैठ जावे तो वह रेल के साथ चला जावेगा किंतु जिनका आधार रेल नहीं है, जो रेल से किसी प्रकार का लगाव नहीं रखते उनको रेल का वायु या वेग नहीं खैंच सकता। कल्पना करो कि कुम्हार के चाक में चूहों ने छेद कर लिया और भीतर चूहे बैठ गये तो वे चाक के साथ घूम सकते हैं किन्तु जो चूहे चाक के ऊपर हैं वे नहीं घूम सकेंगे इसी प्रकार रेल के ऊपर जहां पर रेल का लगाव नहीं है वहां पर कोई पतंगा या पक्षी अथवा मनुष्य हो तो उसको रेल का वेग या वायु रेल के जाने वाली दिशा को कभी भी न खैंच सकेगा जैसे मुण्डी गाड़ियों में रक्खे हंडे पर पतंगे नहीं उड़ते फिर हम कैसे मान लें कि ध्वजा पताका, वाण, बादल कबूतर जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते उनको भूवायु खैंच ले जावेगा ? इसके ऊपर भूभ्रमणवादियों को सोचना चाहिये।

(३) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि जब हम रेल की खिड़की में बैठ कर कोई वस्तु नीचे फेंकते हैं तब वह हमारे निशान पर नहीं गिरती वरन्

कुछ खिचकर आगे को गिरता है अब हमको मानना पड़ता है कि उस वस्तु को रेल की वायु ने आगे को खैंचा इसी प्रकार पृथ्वी के समस्त पदार्थ भूवायु से पूर्व को खिचते हैं ।

उत्तर इसका यह है कि जब तुम कोई चीज रेल की खिड़की से नीचे फेंकोगे तो पहिले रेल की हवा के जोर से वह पीछे को हटेगी क्योंकि रेल जिधर को जाती है उधर ही से जोरदार वायु रेल के आने की दिशा को दौड़ता है, यदि वस्तु हलकी है तो हवा के धक्के से वह इतनी उड़ेगी कि उसके उड़ने का तुमको ज्ञान हो जावेगा, यदि चीज भारी है तो उसके पीछे को हटने का ज्ञान तुमको न होगा क्योंकि पहियों का वायु धक्के से उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा को रेल जारही है इसका कारण भी समझ लीजिये । जब एक पहिया घूम कर वायु को पीछे को फेंकता है तब वह वायु दूसरे पहिये का धक्का खाती है वह धक्का उस वायु को वापिस आने के लिये बाध्य कर देता है, जब एक पहिया दूसरे आगे के पहिये के वायु को वापिस भेजता है तो इसी सिद्धान्त से समस्त पहिये वायु को आगे को धिकाते रहते हैं, पहियों की शक्ति अधिक हो जाती है इस कारण से पहियों के समीप की हवा पीछे को न जाकर आगे को जाती है । आप खिड़की से एक किनारा पकड़कर कोई कपड़ा उड़ावें वह उसी दिशा को उड़ेगा जिधर से रेल आरही है इस से सिद्ध हुआ कि खिड़की से पहिये तक की वायु पीछे को जा रही है फिर आप रेल के पहियों के समीप घास पत्ते रुई या बारीक कपड़ा रख दीजिये जब रेल आवेगी पहियों की वायु के स्पर्श से ये वस्तुयें आगे को हट जावेंगी, अब सिद्ध हो गया कि ऊपर का वायु वस्तु को उस तरफ जाने के लिये बाध्य करता है जिधर से रेल आरही है और पहियों का वायु आगे को हटाता है, पृथ्वी में पहियों की लाइन नहीं लगी फिर किस आधार से पृथ्वी से उत्पन्न हुआ वायु पूर्व को जावेगा, भूभ्रमणवादियों को गहरी दृष्टि से इसका विचार करना चाहिये ।

(४) भूभ्रमणवादी कहते हैं कि रेल में बैठे हुये हम जब किसी नदी के किसी नियत स्थान पर पत्थर फेंकते हैं तो वह पत्थर नियत स्थान पर न पहुँच कर स्थान से उस तरफ बढ़ कर गिरता है जिधर को रेल जा रही है इससे सिद्ध होता है कि रेल के वायु ने उसको खैंच लिया ।

इसका उत्तर यह है कि यह तो कभी त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकता कि रेल का वायु वस्तु को उस तरफ खैंचता है जिधर को रेल जा रही है । आप खिड़की के बाहर मुंह करके खिड़की में कपड़ा उड़ा कर या रेल पर पताका लगाकर

यह निश्चय कर सकते हैं कि रेल का वायु पीछे को जाता हुआ वस्तुओं को भी पीछे को फेंकता है फिर नहीं मालूम रेल के वायु का आगे जाना भूभ्रमणवादी क्यों मानते हैं क्या इनको जब कोई उत्तर न आवेगा तब दुराग्रहसे काम लेंगे ? विज्ञान और दुराग्रह यह बड़ी मसखरी की बात है, सीधे सीधे क्यों नहीं कहते कि हमारे पास भूभ्रमण की पुष्टि में कोई सच्ची युक्ति नहीं है ? पत्थर जो नदी के किसी नियत स्थान पर फेंका जाता है पहिले उसकी लाइन मिलाई जाती है, जिस समय पत्थर और स्थान की लाइन मिलाई गई, छोड़ते समय में रेल कुछ आगे को बढ़ गई इस कारण गिरने की लाइन से चल कर कहीं अन्यत्र गिरेगा इससे पृथ्वी की भूवायु द्वारा वस्तुओं के खिंचने की पुष्टि करना भूल ही नहीं वरन भारी भूल है।

(५) कई एक लोगों का कथन है कि हवाई जहाज से जो डाक के थैले फेंके जाते हैं वे थैले नियत स्थान पर न गिर कर कुछ आगे को गिरेंगे क्योंकि वे हवाई जहाज की वायु से आगे को खिंच जाते हैं।

इसका उत्तर यह है कि थैलों का नियत स्थान पर न गिरना इसका कारण जहाज का वायु नहीं है वरन लाइन का अन्तर और पृथ्वी का वायु है। जिस लाइन से थैलों के फेंकने का इरादा किया था फेंकते समय हवाई जहाज आगे बढ़ गया इस कारण थैले गिरने की लाइन पहिली लाइन से कुछ आगे बन गई, दूसरा असर थैले पर वायु का होगा, यदि वायु पश्चिम का होगा तो थैला पूर्व को गिरेगा पूर्व का होगा तो पश्चिम को। थैलों से और भूवायु से सादृश्यता ही नहीं मिलती फिर हम जहाज के थैलों के आधार से कैसे मानलें कि भूवायु उन पदार्थों को खैंच लेता है जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते ?

इनका कथन है कि ध्वजा पताकाओं को भूवायु पूर्व को खैंचता है किन्तु यह निरी गप्प है, जब पूर्व का जोरदार वायु चलता है तब ध्वजा पताका बड़े जोर से पश्चिम को उड़ती हैं इस समय में क्या भूवायु की अन्त्येष्टि हो गई ? अब वह जाने वाली ध्वजा पताकाओं को क्यों नहीं रोकता क्या अब भूवायु नष्ट हो गया ? भूभ्रमणवादियों के पास इसका क्या उत्तर है ?

भूवायु न पृथ्वी से लगाव रखता है और न पदार्थों को खैंचता है, जब भूभ्रमणवादियों को कुछ नहीं सूझता तब भूवायु द्वारा खिंचने का झूठा। अड़ंगा लगा बैठते हैं इसकी पुष्टि में हम कुछ उदाहरण पाठकों के आगे रखते हैं सावधानी से पढ़ने का कष्ट उठावें। पृथ्वी से लगाव न रखने वाले कबूतर को यदि भूवायु पूर्व को खैंचेगा तब तो एक भी बादल पश्चिम को न जा सकेगा।

बादल उठा और भूवायु से खिंच कर पूर्व को जाने लगा इससे पृथ्वी के पश्चिम भाग में बादल न जा सकेगा इसी कारण से वृष्टि भी न होगी। जिस समय बादल जोर से उठते हैं और बादलों के ऊपर बादल दिखलाई देते हैं उस समय कभी २ ऐसा भी अवसर आ जाता है यह हमने अपनी आँख से देखा है और लोगों को दिखलाया है, नीचे के भाग में पूर्व की हवा है इस कारण बादल पश्चिम को जा रहा है और ऊपर के भाग में पश्चिम की हवा है इस कारण बादल पूर्व को जाता है प्रायः यह नियम है कि जिधर को हवा जायगी उधरको ही बादल जावेगा, भूवायु बादल को नहीं खैंचता फिर हम यह क्यों न मान लें कि भूभ्रमणवादियों को जब कुछ नहीं सूझता तब भूवायु द्वारा खिंचने का झूठा धोखा दे देते हैं।

भूवायु का प्रभाव वस्तु पर पड़ता ही नहीं, समझिये। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने जर्मन से एक ऐसी बन्दूक मंगवाई, कि जिसकी गोली पांच फर्लांग पर गिरती है, जब वह गोली पूर्व को छोड़ी जाती है तब पाँच फर्लांग पर गिरती है, उतनी ही देर में पश्चिम में भी पांच फर्लांग पर गिरती है, इस गोली पर भूवायु का प्रभाव क्यों नहीं? क्या भूवायु गोलीसे डर जाता है? जब गोली पर भूवायु का प्रभाव नहीं है तो ऊपर को छोड़े हुये बाण पर भूवायु का प्रभाव हम बुद्धि को नीलाम करके कैसे मान लें?

रेल और मिलों के इन्जनों का धुआं पहिले ऊपर को उड़ता है जब वह इंजन के स्टीम से लगाव छोड़ देता है तब यदि पश्चिम की हवा है तो वह पूर्व को और पूर्व की हवा है तो पश्चिम को, उत्तर की हवा होने पर दक्षिण को जाता है इस धुएं को भूवायु खैंच कर पूर्व को क्यों नहीं ले जाता? नहीं मालूम भूभ्रमणवादी इसका कब जवाब देंगे?

हमने देखा है कि भूवायु के प्रभाव से जहाज की गति में कोई अन्तर नहीं आता। कल्पना करो कि कानपुर में एक हवाई जहाज आगया वह एक घन्टे में अस्सी मील की रफ्तार से चलता है, जब उसको पूरी चाल पर पूर्व दिशा को चलाते हैं तब वह एक घंटे में अस्सी मील जाता है और जब पश्चिम को चलाते हैं तब भी एक घंटे में अस्सी ही मील जाता है इसी प्रकार उत्तर या दक्षिण किसी दिशा में उस जहाज को चलावें पूरी रफ्तार से जब वह चलाया जावेगा तो फी घंटा अस्सी मील ही जावेगा, पूछना यह है कि इस हवाई जहाज पर भूवायु की शक्ति का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता और कबूतर पर क्यों पड़ जाता है क्या भूवायु हवाई जहाज से डर जाता है? वास्तव में भूवायु में यह शक्ति नहीं है कि वह पदार्थों को खैंच कर

पृथ्वी की चालु पर पूर्व को ले जावे हां जब भूभ्रमणवादियों को प्रतिवादियों की शंकाओं पर कुछ नहीं सूझता तब भूवायु के खैंचने का झूठा अड़ंगा लगाकर जान बचाने का उद्योग करते हैं।

* अनुभव *

अमेरिका वालों ने तारों के देखने की एक दुर्बीन बनाई, उस दुर्बीन से लोगों को तो तारे दीखे किंतु हमने तारों को न देख कर दुर्बीन में यह देखा कि पृथ्वी अचला है वह कभी एक इन्च भी अपने स्थान से नहीं हटती, सुनिये कथो जैपुर, उज्जैन, देहली और काशी में जयपुराधीश महाराज जयसिंह के बनवाये ज्योतिष के यंत्र हैं, इन सब स्थानों में एक एक यंत्र ऐसा भी है कि जिससे ध्रुव का दर्शन होता है, इस यन्त्र में दक्षिण की तरफ से यन्त्र का आरम्भ होकर यन्त्र की दीवार ऊंची उठती हुई उत्तर को जाती है, उत्तर के आखिरी सिरे पर एक वृत्ताकार लोहे का कड़ा है उसका लम्बा भाग दीवार की ईंटों में चिन दिया गया है अतएव उत्तर के कोने पर केवल वृत्ताकार जिसका व्यास सवा इन्च का है लगा हुआ है, एक ऐसा ही कड़ा दक्षिण की तरफ यन्त्र के उस भाग में लगा है जहां से यन्त्र का आरम्भ होता है जब मनुष्य खड़ा होकर नीचे के कड़े से दृष्टि की लाइन ऊपर के कड़े के बीचों बीच लाता है उस सीध में ध्रुव दीख पड़ता है।

एक दिन उजियारी रात में माननीय महामहोपाध्याय श्री १०८ पं० अयोध्यानाथ जी नई बस्ती वाले अमेरिका वाली दुर्बीन लेकर काशी के मान मन्दिर में पहुँचे उन्होंने उस दुर्बीन से ध्रुव को देख कर एक भपंजर का नकशा बनाया, दश बजे रात के वे चलने लगे उन दिनों हम काशी में पढ़ा करते थे और मानमन्दिर में ही रहते थे एवं हम ज्योतिष इन्हीं पूज्य महामहोपाध्याय जी से पढ़ते थे तो हमारा इनका गुरु शिष्य सम्बन्ध था। मैंने कहा कि गुरु जी दुर्बीन छोड़ते जाओ मैं तीन बजे लेता आऊंगा, पूज्य पंडित जी भजन पूजन से निवृत्त होकर तीन बजे रात से विद्यार्थियों का पाठ आरम्भ कर देते थे और साढ़े छः बजे प्रातःकाल पढ़ा कर पढ़ाने की गद्दी छोड़ देते थे इस कारण मैंने कहा कि मैं तीन बजे दुर्बीन लेता आऊंगा, गुरु जी ने दुर्बीन मुझे दे दी, उस समय चन्द्रमा का प्रकाश था इस कारण बिना दुर्बीन के ध्रुवतारा स्पष्ट नहीं दीखता था। मैंने साढ़े दश बजे कुर्सी डाल और उस पर बैठ दुर्बीन लगाई, डेढ़ बजे रात के बन्द कर दी, साढ़े दश बजे से डेढ़ बजे तक ध्रुवतारा दुर्बीन से उन लोहे के वृत्तोंमें दीखा करा, जहाँ साढ़े दश बजे था वहां ही डेढ़ बजे रहा एक बाल कितना भी फर्क उसमें न पड़ा, बस हमको ज्ञान होगया

कि ध्रुवतारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथ्वीको अचला कहा है वास्तव में ये दोनों ही नहीं चलते यदि दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी न किसी समय इस लाइनसे ध्रुवतारा पूर्व पश्चिम अवश्य हो जाता। अब हम पूंछना चाहते हैं कि सैकड़ों वर्ष के बने हुये यन्त्र में आज तक ध्रुव उसी स्थानपर दीखता है जिस स्थान पर यन्त्र के बनने के समय था, यदि हम पृथ्वी को चलने वाली मान लें तो फिर ध्रुव सैकड़ों वर्ष तक लाइन पर कैसे रहेगा? मजा रहा, जो दुर्बीन तारे देखने को बनाई गई वह पृथ्वी का अचलत्व सिद्ध कर गई इसी को कहतेहैं "जादू तो वह जो शिर चढ़ के बोले।

कई एक मनुष्य यह कहने लगते हैं कि पृथ्वी की कीली पर ध्रुव है, यह कोरी गप्प है। भूभ्रमणवादियों ने यह माना है कि सूर्य्य सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक लिरा तारा की तरफ जा रहा है। लिरा तारा की तरफ जाते हुये सूर्य्य की पृथ्वी एक साल में परिक्रमा करती है और सवा सत्ताइस दिन में चलती हुई पृथ्वी की चन्द्रमा परिक्रमा करता है। क्या ध्रुवतारा भी पृथ्वी की चाल पर चल कर सूर्य की परिक्रमा करता है? दुर्जनतोषन्याय से हम यह भी मान लें कि ध्रुव पृथ्वी की कीली पर है तो भी ध्रुव के नीचे के देश भलेही उस स्थानमें रहें किन्तु काशी आदि जो ध्रुव से दक्षिण में हैं पृथ्वी के भ्रमण से वे किसी समय उत्तर में अवश्य आवेंगे ऐसा नहीं होता अतएव भूभ्रमणमिथ्या और वेद का गला घोट कर वेद से जो भूभ्रमणवादियों की पुष्टि की गई पुष्टि करने वाला वह स्वामी दयानन्द जी का लेख भी मिथ्या है।

स्वर्ग।

वेद।

वेद ने स्वर्गादि लोकों को इस मृत्युलोक से भिन्न माना है। इस विषय में वेद लिखता है कि:—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपियन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्॥ अथर्व० ४। ३४। २

घृतहृदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयन्तुसर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ॥

अथर्व० ४ । ३४ । ६

अस्थिरहित, पवित्र, वायु, से निर्मल स्वच्छ हुये जीव स्वर्ग लोक को पहुँचते हैं, उनका शिश्न कामाग्नि जला नहीं सकता, स्वर्गलोक में इनके लिये बहुत स्त्रियां हैं। जिनमें घृत के तड़ाग हैं, जिनके किनारों पर शहद है, जिनमें अमृत ही जल है, दूध से और दही से जो भरे हैं तेरे लिये ये सब धारा बन कर स्वर्ग में प्राप्त हों।

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न यत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनाया पिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥

कठोपनिषद्

स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है वहां तुम बुढ़ापे से, नहीं डरोगे क्योंकि स्वर्गस्थ देव बूढ़े नहीं होते, भूख और प्यास इन दोनों को पार करके शोक को छोड़ कर तुम भोगों को भोगोगे। मर्त्यलोक से स्वर्ग कितनी दूर है इसको बतलाता हुआ वेद लिखता है कि:—

सहस्राश्वीनेवा इतः स्वर्गो लोकः ।

ऐतरेय ब्रा० ७ । ७

बड़े मजबूत, पवन के समान वेग रखने वाले एक सहस्र घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है या तेज वेग वाला एक घोड़ा एक दिन में जितने मील पहुँचता है उसका सहस्र गुणित दूर यहां से स्वर्ग है स्वा० दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। अब पाठक मिलालें कि आर्यसमाज का मत वैदिक है या वेद विरुद्ध ?
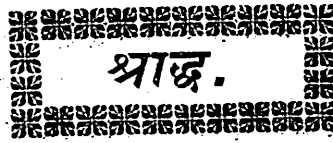
श्राद्ध.

वेद ।

वेदों में पितृयज्ञ और धर्मशास्त्रों में इसको श्राद्ध कहते हैं। वेद के प्रत्येक मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध मृतक पितरों का होता है। आवाहन देखिये

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता ।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥
अथर्व० कां० १८। २। ३४

जो गाड़े और जो बन में पड़े रह गये तथा जो फूंके एवं जो जीवित ही स्वर्ग को चले गये हे अग्निदेव ! तुम इन सब पितरों को हवि खाने को बुला लाओ । अथर्ववेद में पितरों के बुलाने का यह मन्त्र है और यजुर्वेद में पितरों के आवाहन का जो मन्त्र है वह यह है।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽ-
ग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽ-
धिब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥
यजु० १९। ५८

सोम के योग्य अग्निद्वारा स्वादित वा स्मार्त हमारे पितर देवताओं के गमन योग्य मार्गों से आवें। इस यज्ञ में अन्न से प्रसन्न होते मानसिक उपदेश दें और वे हमारी रक्षा करें।

जो मृतक पितर पितृलोक में जाते हैं वे इस पितृयज्ञ श्राद्ध में सूक्ष्म शरीर से भोजन खाने के लिये स्वतः आते हैं ऐसे पितरों को इन दो मन्त्रोंमें बुलाया है। इसी के ऊपर मनु जी लिखते हैं कि:—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥
मनु० ३। १८९

निमन्त्रित पितर ब्राह्मणोंके साथ साथ वायुभूत होकर आते हैं और ब्राह्मणोंके साथ बैठ कर भोजन करते हैं।

कई एक लोगों की यह शंका है कि वे पितर हमको दीखते क्यों नहीं ? इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि:—

तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः।

शत० २। ३। ४। २१

सूक्ष्म होने के कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य होते हैं क्योंकि—

आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि।

न्यायदर्शन ३। १। २८ वात्स्यायनभाष्य

लोकान्तर में जल, अग्नि, वायु के शरीर होते हैं।

जब अग्नि, वायु, जल के शरीर अतिसूक्ष्म होते हैं फिर वे दृष्टि में कैसे आवेंगे ? इनसे भिन्न जो पितर अन्य योनियों में गये हैं उनके लिये स्वधा देकर उस स्वधा को ईश्वर से पितरों को पहुँचा देने की प्रार्थना का मन्त्र यह है।

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ २॥ऽउच न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतंजुषस्व॥

यजु० अ० १९। ६७

हमारे जो पितर शरीर धारण करके इस लोक में आये हुये विद्यमान हैं और जो इस लोक में नहीं हैं, जिनको हम जानते हैं या जिनको हम नहीं जानते, हे सर्वज्ञ अग्ने! तुम उन सबको जानते हो इस स्वधा पितृयज्ञ से तुम उनको तृप्त करो।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

यजु० १९। ६०

जिनको भस्म करके अग्नि ने जिनका स्वाद लिया है या अग्नि में न फूंकने के कारण अग्नि ने स्वाद नहीं लिया जिनका वे पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

कई एक मनुष्य इस पर शंका कर बैठते हैं। यहां शंका का कोई काम नहीं सीधा समास है "अग्निना स्वादिताः-अग्निष्वात्ताः" जलाते हुये आवसथ्यादि अग्नि ने जिनका स्वाद ले लिया उनका नाम है "अग्निष्वात्ताः" सब शंका ढेर हो गई। शतपथ लिखता है कि:—

यानग्निरेव दहन्स्वदयति

ते पितरोऽग्निष्वात्ताः।

काण्ड २

जिनका भस्म करते समय अग्निने स्वाद लिया है वे ही पितर अग्निष्वात्त हैं। यहां यजुर्वेद में "अग्निष्वात्ताः" और "अनग्निष्वात्ताः" पद दिये हैं किन्तु ऋग्वेद और अथर्व वेद में इन पदों के स्थान में "अग्निदग्धाः" और "अनग्निदग्धाः" पद आते हैं। मंत्र देखिये—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा

मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

अथर्व० १८।२।३५

अग्नि ने जिनको जलाया और अग्नि ने जिनको नहीं जलाया वे पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

"ये निखाता" तथा 'आयन्तु' और "ये चेह पितरः" "ये अग्निष्वात्ताः" एवं "ये अग्निदग्धाः" इन चारों ही मंत्रों से मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध है क्योंकि जीवित पितर न गाड़े जातेहैं और न कहीं पड़े रहजाते हैं तथा न फूंके जातेहैं और न स्वर्गमें गये हुये पितरों को यहां बुलाकर हम अन्न खिला सकते हैं एवं न जीवित पितरों ही को भोजन खिलानें के लिये ईश्वर बुलाने जाता है। ये सब घटनायें मृतकों में होंगी अतएव वेद से मृतपितरों के श्राद्ध की सिद्धि होती है।

फिर वेद लिखता है कि—

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥

अथर्व० १८।४

यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो पृथ्वी में निवास करते हैं। ७८। और यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो अन्तरिक्ष में रहते हैं। ७९। एवं यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो स्वर्ग में वास करते हैं। ८०।

जीवित पितर अन्तरिक्ष स्वर्ग में नहीं रह सकते, इन लोकों में तो शरीर छोड़ने पर ही प्राणी जाते हैं इस कारण श्राद्ध इन तीन मंत्रों से भी मृतक पितरों का ही

सिद्ध होता है। हां-यह शंका कर सकते हैं कि मरे हुये पितर पृथ्वी पर कैसे रहेंगे? इसका उत्तर यह है कि जिन हमारे पितरों ने यहां शरीर छोड़ा और फिर वे कर्मानुसार इसी पृथ्वी पर किसी योनि में आ गये "पृथिविषद्भ्यः" मंत्रमें उनका ग्रहण है। (१) तो स्वर्ग और अन्तरिक्ष में जो पितर गये हैं वे पितृ शरीर छोड़ कर गये हैं, उनका पृथ्वी वाले पितरों से साहचर्य है वे भी मरे हुये तो ये भी मृतक। (२) इस मंत्र से स्वधा लेकर अग्नि में छोड़ा जाता है, अग्नि में छोड़ी हुई आहुति ईश्वर द्वारा मृतक पितरों की तृप्ति कर सकती है, जीवितों की नहीं अतएव मानना पड़ेगा कि इन तीन प्रकार के पितरों के ग्रहण में मृतक पितरों का ही ग्रहण है।

जिस मनुष्य के सन्तान न होती हो उसको सन्तान उत्पन्न करने के हेतु श्राद्ध करना लिखा है। इस श्राद्ध में तीन पिण्ड होते हैं। मध्यम पिण्ड को पत्नी खाती है। इसके ऊपर गृह्यसूत्र लिखता है कि—

आधत्त पितरो गर्भमिति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नीयात्।

आचार्य तो "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मंत्र को पढ़े और श्राद्ध करने वाले की पत्नी मध्यम पिण्ड को भक्षण करे।

इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ॥२६२॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६३ ॥

मनु० अ० ३

पितृपूजन में तत्पर विवाहित पतिव्रता पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मंत्र के उच्चारण होते हुये मध्यम पिण्ड को भक्षण कर आयुवाले यशवान्, बुद्धिमान्, धनी, सात्विक, धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न करती है।

इस श्राद्ध में पिण्ड भक्षण के समय आचार्य जिस मंत्र का उच्चारण करता है वह मन्त्र यह है।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषो सत् ॥

यजु० २। ३३

हे पितरो ! जैसे इस ऋतु में देव मनुष्य पितरों के अर्थ का पूर्ण करने वाला होवे वैसे पुष्पमाला पहिनने वाला गुणवान् पुत्ररूप गर्भ को संपादन करो।

अभिप्राय इस मन्त्र का यह है कि इस मन्त्र वाले श्राद्ध में पितरों से यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी कृपा करो जिससे हमारी स्त्री को गर्भ रहे। यह प्रार्थना मृतकपितरों से तो कर सकते हैं किन्तु जीवितों से नहीं कर सकते। क्या जीवित पितरों से यह कह सकते हैं कि आप लोगों ने भोजन तो खा लिया जरा हमारी स्त्री को भी...........।

इस श्राद्ध से कोई भी मनुष्य जीवित पितरों का श्राद्ध नहीं कह सकता वरन् यह मानना पड़ेगा कि यह श्राद्ध मृतक पितरों का है।

अथर्व वेद श्राद्ध के पितरों का निवास स्थान बतलाया हुआ लिखता है कि

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।

तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

अथर्व० १८।२।२

आकाश के तीन विभाग हैं, पृथ्वी से लेकर जहां तक जल के कण उड़ कर जाते हैं उस आकाश का नाम उदन्वती है अर्थात् जल कण रखने वाला प्रथम भाग है। इसके ऊपर जो आकाश विभाग है उसका नाम पीलु है क्योंकि यहां तक परमाणु जाते हैं। इसके ऊपर का तीसरा भाग प्रद्यौ कहलाता है, इस भाग में उन पितरों का निवास है जिनका श्राद्ध में आवाहन होता है।

यहां पर यह ज्ञान रखना चाहिये कि जो पुण्यात्मा पितर हैं वे पितृ तथा स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं और जिनका पुण्य कुछ कम है वे याम्यागतिको पहुँच कर कर्मानुसार अनेक योनियों में चले जाते हैं। जो पितर पितृलोक प्रभृति लोकों में निवास करते हैं वेद ने उनका आवाहन लिखा है और जो पितर कर्मानुसार योनियों में गये हैं उनको ईश्वरद्वारा श्राद्ध कर्म का फल उन्हीं योनियों में पहुँचता है। जब श्राद्ध में बुलाये जाने वाले पितर "प्रद्यौ" तृतीय आकाशमें रहते हैं और वे ही श्राद्ध में आकर भोजन करते हैं तो फिर जीवित पितरों का श्राद्ध कैसे माना जावेगा ?

श्राद्धविधि में पितृयज्ञ द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराना लिखा है। मन्त्र ये हैं—

इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु,

विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।

स मे मा त्तोष्ट स्वधया पिन्वमानो,
विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥

अथर्व० ४। ३४। ८

इस ओदन [अन्न] को मैं ब्राह्मणों के समक्ष या ब्राह्मणों में रखता हूँ, वह विस्तृत है, लोकजित है और स्वर्ग में पहुँचने वाला है। जल के द्वारा बढ़ाया हुआ वह ओदन हमको अनन्त फल देने वाला हो और कामधेनु के समान मुझको समस्त मनोवांछित फल दे।

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु,
या विप्रुष ओदनानामजस्य।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके,
जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥

अथर्व० ६। ५। १६

हे अग्ने! जो ओदन हमने ब्राह्मणों के समक्ष में परोसा है, जिसको यथा विभाग विभक्त किया, जो उसके बनाने में विन्दु उड़े उन सबको स्वर्गलोक में ले जाओ, जान जान कर हमारे पितरों को दो, मार्ग में सावधान होकर लेजाओ।

इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

यस्यास्येन सदाऽश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः॥

मनु० १। ६५

जिसके मुख से खाई हुई हवि को देवता और कव्य को पितर खाते हैं, इससे अधिक और क्या ब्राह्मण शक्ति होगी।

यदि श्राद्ध जीवित पितरों का होता तो फिर पित्र्यन्न को ब्राह्मणों को खिलाने की और ब्राह्मणों द्वारा खाये हुये अन्न को पितरों को पहुँचाने की कोई आवश्यकता नहीं थी पितरों को खिला देते, उनका पेट भर जाता, ब्राह्मणों को पित्र्यन्न का खिलाना और उनके द्वारा उस अन्न का फल पितरों को मिलना जो वेद ने बतलाया है यह मृतक पितृश्राद्ध को ही सिद्ध करता है।

श्राद्धविधि में मृतकपितरों का ही श्राद्ध लिखा है।

पिता प्रेतः स्यात्पितामहो जीवेत्पित्रे पिण्डं निधाय ।
पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादिति ।

काठीय श्रौत सूत्र ।

जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो पिता का पिण्ड रख कर पितामहको छोड़ पितामह से ऊपरके जो दो पितर हैं उनके नामके पिंड रक्खे ।

इसकी पुष्टि में मनु जी लिखते हैं कि

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥

मनु० ३ । २२१

जिसका पिता मर गया हो और पितामह (बाबा) जीता हो वह मनुष्य श्राद्ध में पिता का नाम लेकर फिर प्रपितामह (पर बाबा) का नाम उच्चारण करे अर्थात् जो पितामह जीवित है उसके निमित्त पिण्डदान न दें ।

वेद भी मृतक पितरों के श्राद्ध को ही कहता है । प्रमाण यह है ।

अधा मृताः पितृषु संभवन्तु । ४८ ।

अथर्व० १८ । ४

मृतक पुरुष ही पितृ स्वरूप को प्राप्त होते हैं ।

वेद में श्राद्ध के कम से कम सात सौ मंत्र हैं जिनमें मृतक पितृ श्राद्ध का उल्लेख है । उनमें से कुछ थोड़े से मंत्र हमने यहां नमूने के तौर पर दिखलाये हैं, जिनको समस्त देखने हों वे यजुर्वेद का १९ वां अध्याय और अथर्ववेद का १८ वां काण्ड देख लें ।

आर्यसमाज ।

"पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण । श्राद्ध अर्थात् "श्रत्" सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियतेतच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है । और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायं उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं" । सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ९७ ।

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थ विद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे सोमसद । "यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त । "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्या वृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद् । "ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को दे के रोगनाशक हों वे सोमपा । "ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुंजते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़ के भोजन करने हारे हों वे हविर्भुज । "य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" जो जानने के योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीने हारे हों वे आज्यपा । "शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन् । "ये दुष्टान्यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशः" जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करने हारे न्यायकारी हों वे यम । "यः पाति स पिता" जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता । "पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः" जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह । "या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानों का मान्य करे वह माता "या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही । अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है ।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ९८

विवेचन ।

सत्यार्थप्रकाश में श्राद्ध-तर्पण जीवितों का लिखा है मृतकों का नहीं "जीवितों का श्राद्ध करना मृतकों का नहीं" इसकी पुष्टि में स्वामी जी ने कोई प्रमाण भी नहीं लिखा, केवल हुक्म लिख दिया और हुक्म लिख कर सात सौ वेद मन्त्रों का गला घोट डाला है । वेद के सात सौ मन्त्र मृतक पितरों के श्राद्ध को कह रहे हैं और स्वामी जी जीवितों का बतलाते हैं । अब उन सात सौ मन्त्रों को वेद में से

फाड़ कर अलाहिदा फेंक दें या यह कह दें कि ये वेद मन्त्र ईश्वर के बनाये नहीं, किसी ब्राह्मण ने बना कर वेद में घसोड़ दिये अतएव क्षेपक हैं ? अथवा इन मन्त्रों को लवेद मन्त्र कह दें इन सात सौ मन्त्रों का क्या हो ? अंग्रेजी पढ़े लिखों की हुज्जतबाजी को अन्तःकरण में रख उससे जीवित पितरों का श्राद्ध मानना और वेद के सात सौ मन्त्रों को पोपजाल एवं उनके निर्माता ईश्वर को पोप मान बैठना यह स्वा० दयानन्द और आर्यसमाज की घोर नास्तिकता है। वेद का खण्डन करके नकली ईसाई धर्म आर्यसमाज का चलाना एवं फिर उसको वैदिक धर्म बतलाना वे ही आर्यसमाजी इस बात को मान सकते हैं कि जिनकी सात पीढ़ी ने भी वेद का अक्षर नहीं देखा ?

"ये निखाता" "आयन्तुनः पितरः" "ये चेह विप्र:" "ये अग्निष्वात्ताः" "ये अग्निदग्धा:" "अथामृताः" प्रभृति जब वेद के मन्त्र शास्त्रार्थ में रख दिये जाते हैं तब आर्यसमाजी ऐसे कांपते हैं जैसे कि जूड़ी बुखार का मरीज बुखार के आगमन में कांपा करता है। बनावटी जाल में फंसने का कंपकंपी का शिकार होना ही फल है। कानपुर के शास्त्रार्थ में ब्रजमोहन झा और छपरा के शास्त्रार्थ में विद्यानन्द तथा मीरपुर (काश्मीर स्टेट) के शास्त्रार्थ में रामगोपाल एवं लाहौर के शास्त्रार्थ में राजाराम जी शास्त्री प्रभृति समाजी पंडितोंने इतनी कची खाई कि ये पण्डित फिर आज तक शास्त्रार्थ करने के लिये प्लेटफार्म पर नहीं आये।

यहाँ पर "सोमसदः" पदका अर्थ किया कि 'जो पदार्थ विद्या में निपुण हैं वे सोमसद पितर हैं, स्वामी जी जानते हैं कि आज कल यूरोप वाले पदार्थ विद्या में निपुण हैं इस कारण यूरोपवालों का श्राद्ध तर्पण लिख दिया। आर्यसमाजी हिन्दुस्तानियों को छोड़ कर यूरोपवालों का जो श्राद्ध-तर्पण नहीं करते इसका कारण यही है कि उनकी दृष्टि में भी 'सोमसदः' का अर्थ स्वामी जी ने गलती किया। स्वामी जी "अग्निष्वात्ताः" का अर्थ करते हैं कि 'जो अग्निविद्या में निपुण हैं वे अग्निष्वात्त पितर हैं" इस नियम से हिलवाई, लुहार, इंजन के ड्राइवर और भड़भूजे ये सब आर्यसमाजियों के पितर होंगे ? इनका श्राद्ध-तर्पण करना प्रत्येक आर्य समाजीका वैदिक धर्म है, जो नहीं करता वह पापी है। "बर्हिषद्" का अर्थ किया है "जो उत्तम व्यवहार में निपुण हों' कौन हैं। उनका पता नहीं बतलाया, संभव है कि पौलसीबाजों को आर्यसमाजियों के पितर बनाया हो ? 'सोमपाः, का अर्थ 'डाक्टर किया, भारतवर्ष में जितने भी डाक्टर हैं, चाहे वे पार्सी हों या यहूदी ? ईसाई हों या मुसलमान ? वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। 'हविर्भुज, पद का अर्थ यह किया

कि "जो मादक द्रव्य और हिंसावाले पदार्थों को छोड़ कर अन्य पदार्थ खावे वह हविर्भुज, आर्यसमाज के पितर हैं। यह मालूम नहीं, वे हैं कौन ? विजिटीरियन सोसाइटी के मेम्बर हैं या गाय, भैंस, हिरण, बकरी, हैं जिनका आर्यसमाज श्राद्ध-तर्पण करेगी। ये सब मांस और मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते । और 'जो रक्षा करें एवं साथ ही में केवल घी पीते हों वे आर्यसमाजियों के आज्यपा पितर हैं। हमको तो एक भी मनुष्य या जानवर ऐसा न मिला जो घी पीकर ही जीवन धारण करता हो ? जब ऐसा कोई संसार में है हीं नहीं फिर आर्यसमाजी उसका श्राद्ध कैसे करेंगे यह समझ में नहीं बैठता, संभव है अब आर्यसमाजी विस्तर बांध कर आज्यपा पितरों की खोज में उतरें क्योंकि जब संसार यह कह देता है कि आज्यपा पितर भूतल पर हैं ही नहीं तब आर्य्यसमाजियों को लज्जित होना पड़ता है। ये दिव्य पितरों की संज्ञायें हैं, दिव्य पितरों को मिटाकर ये संज्ञायें मनुष्यों की बनाई जाती हैं। यह वेद के साथ घोर अन्याय है। श्राद्ध में वेद ने लिखा है कि—

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥

अथर्व० १८ । २ । १

यम के अर्थ सोम किया जाता, यम के वास्ते हवि किया जाता और मन्त्र द्वारा अग्निदूत ही यज्ञ से यम के प्रति हवि ले जाता है।

इस मन्त्र का कतल करते हुये स्वामी जी लिखते हैं कि 'न्यायाधीश का नाम यम है, न्यायाधीशों का ही श्राद्ध-तर्पण करो। जितने भी मजिस्ट्रेट संसार में हैं वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। बात तो बनाई किन्तु बना न जानी । इस मन्त्र में लिखा है कि अग्नि दूत बन कर हवि को यम के वास्ते पहुँचाता है, भला अग्नि मजिस्ट्रेटों के पास खाने के पदार्थ कैसे पहुँचा देगा ? इसी शंका पर आर्यसमाजियों के छक्के छूट जाते हैं। वेद ऐसी वस्तु नहीं है कि उसके अर्थ को कोई आनन-फानन में उड़ादे और यम का अर्थ मजिस्ट्रेट करके वेद के असली भाव को गायब करदे। जिस यम को हवि दी जाती है वह कौन है इसका निर्णय करता हुआ वेद लिखता है कि—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां
यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां ।
यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥

अथर्व० । १८ । १३

जो प्राणियों को पहिले मारता है, जो इस लोक (मनुष्य) को पहिले लेजाता है उस विवस्वान् सूर्य के पुत्र जीवों को वश में करने वाले राजा यम को हम हवि से तृप्त करते हैं।

अब आर्य्यसमाजी बतलावें कि वेद में जिस यम को हवि देना लिखा है और वह हवि अग्नि के द्वारा जिस यम को मिलती है वह मृतप्राणियों पर निग्रह एवं अनुग्रह करने वाला राजा यम है या आनरेरी मजिस्ट्रेट ? क्या मजिस्ट्रेट प्राणियों को मारते हैं और फिर मार कर इस लोक से अन्य किसी लोक में ले जाते हैं ? क्या सभी आनरेरी मजिस्ट्रेट विवस्वान् सूर्य के पुत्र हैं ? यदि ये घटनायें आनरेरी मजिस्ट्रेटों में नहीं हैं तो फिर यम से तुम आनरेरी मजिस्ट्रेटों को कैसे लेते हो ?

आर्य्यसमाजियो ! याद रक्खो दयानन्दी जाल बतलाकर उस जाल में तुम को बेवकूफ समझ फांस रहे हैं जिससे कि तुम दीन दुनियां कहीं के न रहो ? किन्तु इतना समझलो कि संसार में लिखे पढ़े मनुष्य भी मौजूद हैं और उनके जरिये से स्वामी दयानन्द जी के बनावटी जाल का भण्डा फोड़ अवश्य होगा तब संसार में तुम्हारी बेइज्जती होगी और वेदार्थ के धोखा देने का अपराध तुम्हारे ऊपर लगाकर ये ही यम रौरव आदि अनेक वेटिंग रूमों में तुम को कुछ दिन के लिये आराम करवावेंगे। सोचो, समझो, कुछ पढ़ो, बुद्धि का विचार करो, हाथ में वेद ले ईश्वर की शपथ खाकर कहो वेद में श्राद्ध मृतक पितरों का है या जीवितों का ?

शूद्र वेदानधिकार.

वेद।

वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है। वेद लिखता है कि—

स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्ता पावमानी द्विजानाम्।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं,
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजतु ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० । १९ । ७१ । १

मैंने वर देने वाली वेदों की माता गायत्री की स्तुति की है वह द्विजों को पवित्र करने वाली मुझे शुभ कर्म में नियुक्त करे और आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक को गमन करे।

इस मन्त्र में गायत्री द्वारा द्विजों का ही पवित्र होना लिखा है। मन्त्र में यह स्पष्ट है कि गायत्री द्विजों को ही पवित्र करती है, द्विजेतर शूद्र यदि रात दिन गायत्री जपें यह तब भी शूद्रों को पवित्र नहीं करती। अब पाठक समझ गये होंगे कि गायत्री का अधिकार किस को है? इसी भाव को लेकर मनु जी लिखते हैं कि—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥१॥

मनु० अ० १०।

अपने कर्म में स्थित द्विजाति तीन ही वर्ण वेद पढ़ें, इन तीन वर्णों में से ब्राह्मण ही अध्यापक हो और इतर क्षत्रिय-वैश्य अध्यापक न हों यह हमारा निश्चय है।

मनु जी इस विषय पर कुछ और भी लिखते हैं देखिये—

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१२७॥

मनु० अ० १०।

शूद्र को लहसुन आदि भक्षणका पाप नहीं और न शूद्र को सोलह संस्कारों का अधिकार ही है, वेदप्रतिपाद्य यागादिधर्ममें इसका अधिकार नहीं एवं साधारण सत्य भाषणादि धर्म का इसको निषेध नहीं किन्तु उसका अधिकार है। १२६। अपने धर्म को जानने वाले शूद्र धर्म की इच्छा करतेहुये त्रैवर्णिक लोगों के आचार जो शूद्र को निषिद्ध नहीं है उनमें स्थित होकर केवल नमस्कार शब्द से ही वैदिक मन्त्रों को छोड़

करें पञ्चयज्ञों को करें ऐसा करने से शूद्र निन्दित नहीं होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं।

मनु ने इस प्रकरण में यह स्पष्ट दिखला दिया कि शूद्र वेद मन्त्र का उच्चारण न करे, केवल प्रणाम करता हुआ मन्त्रवर्जित पञ्चयज्ञों को पूर्ण करे। मनु के विरुद्ध शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार कोई कैसे दे सकता है? इसी विषय में वेदान्त दर्शन लिखता है कि—

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च।

अ० १ पा० ३ सू० ३६

संस्कार का अभाव होने से और अभिलाप से शूद्र वेद विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है। और भी पढ़िये—

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च।

शा० अ० १ पा० ३ सूत्र ३८

स्मृति से शूद्र का वेद श्रवण और अध्ययन का निषेध है।

जिसको मनुस्मृति ने लिखा था कि वेदाध्ययन, वेदोच्चारण और वेदश्रवण शूद्र का अधिकार नहीं है उसी को सत्य सिद्ध करने के लिये वेदान्तदर्शन ने ये दो सूत्र दिये हैं। कोई भी न्यायशील, धार्मिक विवेकी यह नहीं कह सकता कि शूद्र को वेद पढ़ना वेदोक्त है और इस पठन से शूद्र का कल्याण होगा।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है।

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

यजु० अ० । २६ । २

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो । यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं । (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ाके अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है । इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा । क्यों कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है । क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को सुनने पढ़ने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर से वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता । जैसे परमात्माने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चन्द्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसेही वेद सबके लिये प्रकाशित किये हैं । और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है ।

सत्यार्थ० समु० ३ पृ० ७०

विवेचन ।

स्वामी जी शूद्रों को भी वेद पढ़ाना चाहते हैं । स्वामी जी इतने भोले हैं कि अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं । सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिख आये हैं कि "शूद्र मपिकुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके सुश्रुत । और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्हीं आचार्यों का है ।" फिर आपने सत्यार्थ प्रकाश के पृ० ३८ में लिखा कि" शूद्रादिवर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेजदें । स्वामी जी ने संस्कार विधिमें केवल द्विजों का ही उपनयन लिखा है शूद्रोंका नहीं बिना उपनयन के

वेदारम्भ होता नहीं इस कारण उपनयन निषेधसे शूद्रोंके वेदाध्ययनका भी निषेध कर दिया। अब शूद्रों के वेद पढ़ना लिखते हैं, वैदिक धर्म न ठहरा एक बाजारू दिल्लगी ठहरी जो मिनट मिनट पर रंग बदल दे? क्यों न हो मतलबी महर्षि ही तो ठहरे,जहां जिससे प्राप्ति हुई वहां वैसाही सिद्धान्त लिख दिया ? शोक है इन आर्यसमाजियों पर जो चालिसवर्ष में यहभी निर्णय न कर सके कि स्वामीजी ने जो शूद्रोंके उपनयन और वेद पठन का निषेध किया वह सत्य है ? या यहां पर जो वेद पढ़ने की विधि लिखी है यह सत्य है ? अजी साहब, छान–बीन तो वह करे जो धार्मिक बने और धर्म का आचरण करे, जब आर्यसमाजियोंको वेद वेद चिल्ला कर नकली ईसाई ही बनाना है तब उनको सत्यार्थ प्रकाश और वेद से क्या मतलब ?

स्वामी जी बड़े मधुर भाषी हैं, क्या लिखते हैं कि" तुम कुआ में पड़ो और श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पित है"। स्वामी जी ने केवल शतपथ ब्राह्मणको देखा उसमें वह श्रुति नहीं है इस कारण कपोलकल्पित लिख दिया किन्तु केवल शतपथ ही ब्राह्मण नहीं है, शतपथ से भिन्न भी वेदों के अनेक ब्राह्मण हैं जो इस समय मिलते नहीं। जो यह श्रुति उन ब्राह्मणों में निकल आवे तब तो कपोल कल्पित नहीं? बिना समस्त ब्राह्मणों के देखे जबर्दस्ती से श्रुति को कपोल कल्पित कहना यह स्वामी जी की घोर नास्तिकता है।

चलिये, जाने दीजिये, यह श्रुति तो कपोल कल्पित है किन्तु "स्तुता मया वरदा वेद माता" यह मन्त्र तो कपोल कल्पित नहीं है? यह तो तीन ही वर्णों को गायत्री और वेदका अधिकार देता है फिर तुम वेदाज्ञाके विरुद्ध शूद्रोंको वेद पढ़ाओगे कैसे? जिस समय यह मन्त्र शास्त्रार्थ में आर्यसमाजियों के आगे रक्खा जाता है उस समय आर्यसमाजियों की वही दशा होती है जो बिच्छू के काटे हुये मनुष्य की होती है। जब एक मन्त्र दयानन्द की मिथ्या कल्पना को धूल में मिला देता है तो फिर शूद्रोंको वेद पढ़ाना आर्यसमाजियों की निर्लज्जता एवं नास्तिकता नहीं है तो और क्या है?

रही बात "यथेमां वाचं कल्याणीम्" की। आज तक जितने भी वेदज्ञ हुये उन सबने इस मन्त्र का यह अर्थ माना कि पूर्व मन्त्र में भूतसाधनी वाणी का वर्णन है, उस भूतसाधनी वाणी का इस मन्त्रमें भी अध्याहार होता है। अर्थ देखिये-

"मनुष्य को दान देने के लिये जैसे भूतसाधनी 'भोजन दो' इस वाणी को सब मनुष्यों के लिये मैं नम्रता से कहता हूं" वैसे ही तुमभी कहो यह बात यज्ञकर्ता अपने भृत्योंसे कहता है। वह कल्याणकारिणी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, तथा वैश्य, स्वीय भृत्य, अति शूद्र से बोलो इन सबको मधुर वचनों के साथ सुन्दर भोजन खाने को दो

मनुष्य मात्र को भोजनादि देने से मैं देवता और परमेश्वर का प्रिय बनूँगा। धन पुत्र लाभ जो मेरा कार्य है यह समृद्धि को प्राप्त हो और मुझे परलोक सुख मिले। मन्त्र में "दक्षिणायै" इससे दक्षिणा और "ददतु" इससे दान स्पष्ट है अर्थात् सब को भोजन दक्षिणा दो।"

यह मन्त्र का अर्थ है। स्वा० दयानन्द जी ने मूर्ख आर्यसमाजियों को जाल में फांसनेके लिये ऐसा मनमाना अर्थ किया कि जो आर्यसमाजके सिद्धान्त तथा प्रत्यक्ष के ही विरुद्ध है।

जब ईश्वर निराकार है तब वह ब्राह्मणादिक मनुष्यों को वेद कैसे पढ़ा देगा? निराकार का अध्यापक बनना सर्वथा प्रत्यक्ष विरुद्ध है, आर्यसमाजी बतलावें कि वह निराकार ईश्वर ब्राह्मणादि मनुष्योंको वेद कब या किस स्थानमें पढ़ा देता है और ईश्वर ने जिनको वेद पढ़ाया वो कितने मनुष्य भूतल पर विद्यमान हैं? यदि निराकार ईश्वर पढ़ाने का काम उत्तम रीति से अन्जाम देता है तो यूनीवर्सिटियां और कालेज तथा हाईस्कूलों में मास्टर क्यों नौकर रक्खे गये? सब जगह निराकार ईश्वर से ही पढ़ाने का काम क्यों नहीं लिया जाता? आर्यसमाजी बुद्धि के शत्रु हैं वे भले ही निराकार ईश्वर का अध्यापक बनना स्वीकार करलें किन्तु विचार शील मनुष्य इस प्रत्यक्ष विरुद्ध बात के मानने को कभी भी तैयार न होगा।

फिर वेदको यहां पर वाणी कह दिया। तालुआदि स्थानों में जब जीभ आघात करती तब वाणी पैदा होती है, ईश्वर जब निराकार है, उसके तालु कंठ, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, एवं जीभ है ही नहीं, तो फिर वेदको "वाचम्" कहना क्या प्रत्यक्ष विरुद्ध नहीं है? इन पागलपन की बातों को पशु भले ही मानलें किन्तु मनुष्य नहीं मान सकते।

"स्वाय" पदका अर्थ इस मन्त्र के वेद भाष्य में स्वा० दयानन्दजी ने लिखा है कि "अपनी स्त्री और सेवकको भी मैं वेद पढ़ाता हूं"। जब ईश्वर आर्यसमाजके मत में सर्वथा निराकार है तो फिर निराकार ईश्वर के स्त्री और नौकर कैसे? यह तो आर्यसमाज के सिद्धान्त के ही विरुद्ध है चलो आर्यसमाजके एक सिद्धान्त ईश्वर के निराकार होनेका चकनाचूर होगया और ईश्वर वेद पढ़ाता है यह भी सिद्ध न हुआ, जाली अर्थों में यही मजा रहता है। शास्त्रार्थ के समय इन दोषों को सुन कर आर्यसमाजी ऐसे भागते हैं जैसे बन्दूकको देखकर जंगली जानवर भागा करते हैं।

स्वामीजी लिखते हैं कि जो इस अर्थको न माने वह नास्तिक, क्यों स्वामी जी जो वेद का गला घोट कर मन्त्र के अर्थ का अनर्थ कर डाले वह आस्तिक होता है? गुरुतो गुड़ किन्तु चेला चीनी होगये स्वा० दयानन्द जी ने तो इस मन्त्र का अर्थ

बदला था किन्तु अब आर्यसमाजियों ने देवता भी बदल दिये ! इस मन्त्रका देवता "वाणी" है किन्तु आर्यसमाजियोंने ईश्वर बना दिया, यह और भी मजा टपक निकला स्वामी जी लिखते हैं कि "यदि ईश्वर को शूद्रोंको वेद पढ़ाना न होता तो वह इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रियां क्यों रचता, । श्रोत्र इन्द्रियां तो पशु पक्षियों के भी हैं फिर आप उनको वेद क्यों नहीं पढ़ाते ? वाक् इन्द्रिय से स्पष्टवर्णात्मक शब्द निकालने वाले तोता-मैना को भी वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर ने "यथेमांवाचम्" मन्त्र में क्यों नहीं दिया। पूर्व कर्मानुसार वेद पढ़ने का अधिकार जिन आर्यसमाजियों को ईश्वर ने नहीं दिया, जो आज भी निरक्षर हों उनको श्रोत्र वाक् इन्द्रियाँ क्यों दीं ? क्या इन प्रश्नों का उत्तर कोई आर्यसमाजी दे सकता है ?

फिर आप लिखते हैं कि 'जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं, आपकी यह बात भी ग़लत है। गो आदि कई एक पशुओं के लिये सूर्य हितकर है किन्तु भैंसों के लिये घाम में चलना आफत होजाती है पक्षियों में चिड़ियां आदि अनेक पक्षियों को सूर्य ज्योति वाला कर देता है किन्तु बाज़ और उल्लू के दोनों फाटक बन्द होजाते हैं। अग्नि में समस्त पक्षी भस्म होजाते हैं किन्तु एक पक्षी विशेषका अग्नि भक्ष्य पदार्थ है। इसी प्रकार भैंस आदि को जल हितकारी और बकरी प्रभृति कई एक पशुओं को हानिकारक है, फिर एकसा कहां हुआ ?

आप लिखते हैं कि, जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ानेसे कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है इस लेख में आपने यहतो मान लिया कि शूद्रको वेद पढ़ानेका निषेध वेदादि सच्छास्त्रों में आता है। रही बात यह कि जिसको पढ़ानेसे न आवे वह शूद्र, यह चण्डूखाने की गप्प और आर्यसमाजियोंके मानने के लायक है। पढ़ा लिखा मनुष्य इसको नहीं मान सकता क्योंकि वेद स्मृति दर्शन पुराण इतिहास प्रभृति किसी भी संस्कृत के ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि, जिसको पढ़ाने से कुछ न आवे वह शूद्र होता है" तुमने जो "यथेमां वाचं कल्याणीम्" मन्त्र से शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार दिया है क्या यह उसी मनुष्य को दिया है जिसको पढ़ानेसे कुछ भी न आवे ? यदि ऐसा है तबतो दो बातों में से एक ही सच्ची रहेगी। यदि पढ़ाने से कुछ नहीं आता तो ऐसे शूद्र को वेद कैसे पढ़ाया जावेगा ? और यदि पढ़ा दिया गया तो फिर यह बात उड़गई कि "पढ़ाने से कुछ नहीं आवे" इस परस्पर विरोधका क्या समाधान है ? स्वा० जी ! इन तुम्हारे बेहोशीपन के लेखों को वही सत्य मानेगा जो अपनी बुद्धि को बूट से कुचल

आर्यसमाज के रजिस्टरमें नाम लिखवा चुका हो किन्तु ईश्वरने जिन लोगों को थोड़ी सी भी अकल दी है वे तुम्हारी बेसमझी के चक्कर और जबर्दस्ती को जानकर तुम्हारे लेखों से घृणा ही करेंगे।

वेदे स्त्रियोऽनाधिकार

वेद

वेद प्रथम उपनयन बतलाता है और उपनयन के पश्चात् वेदाध्ययन, वेद के इस सिद्धान्त पर स्मृति लिखती है कि—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

मनु० अ० २

जो द्विज शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढ़ावे उसको आचार्य कहते हैं।

सिद्ध हो गया कि उपनयन होने के अनन्तर ही वेदाध्ययन होता है और स्त्री के लिये उपनयन की विधि नहीं ? मनु जी लिखते हैं

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

मनु० अ० २

स्त्रियों को केवल वैवाहिक विधि ही वैदिक संस्कार कहा है और पति सेवा करना ही उनका गुरुके कुल में निवास है, घर का कृत्य करना उनका अग्निहोत्र है।

जब उपनयनादि वैदिक संस्कारों में से केवल विवाह संस्कार ही स्त्री को कहा गया है, शेष संस्कारों का मनु निषेध करते हैं तो मनु के विरुद्ध स्त्री का उपनयन संस्कार कैसे होगा ? और विना उपनयन के हुये स्त्री वेद कैसे पढ़ेगी ? उपनयन के बाद वेदारम्भ है, जब तक उपनयन न होगा, वेदारम्भ कभी हो ही नहीं सकता। जब स्त्रियों को उपनयन संस्कार ही नहीं कहा तो फिर वेदाध्ययन का अपने आप निषेध हो गया।

आर्यसमाज

जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता, और निर्बुद्धिता का प्रभाव है, देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

अथर्व० कां० ११ प्र० २४ अ० ३ मन्त्र १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं, वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें? (उत्तर) अवश्य, देखो श्रौतसूत्रादि में—

इमं मंत्रं पत्नी पठेत्।

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वर सहित मंत्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके।

सत्यार्थ० समु० ३ पृ० ७१

विवेचन

क्या मजा है धोखेबाज हों तो ऐसे ही हों? मंत्र में तो "ब्रह्मचर्येण युवानम्" यह "पति" का विशेषण है किन्तु स्वामी जी "ब्रह्मचर्येण" इस पद को "कन्या" में लगाते हैं।, यह धोखा है। "युवानम्" किसका विशेषण है? मानना पड़ेगा कि "पतिम्" का अर्थात् "कन्या युवानं पतिं विन्दते" कन्या युवान पति को प्राप्त करती है। यहां पर "युवानम्" में "ब्रह्मचर्येण" हेतु है अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुये पति को कन्या प्राप्त करती है। "पतिम्" पुल्लिंग है उसका विशेषण "ब्रह्मचर्येण युवानम्" यह भी पुल्लिंग है फिर कोई लिखा पढ़ा मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि "ब्रह्मचर्येण" इस हेतु को कन्या में लगाओ? क्या हमको यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी को हेतु का ज्ञान नहीं? या हम मानलें कि स्वामी जी को अभी तक लिंग का ज्ञान न हुआ? वीर्य रक्षा का नाम "ब्रह्मचर्य" है? वीर्य पुरुष में ही होता है इस कारण ब्रह्मचर्य का साधन पुरुष ही कर सकता है स्त्री के शरीर में "वीर्य" नहीं होता "रज" होता है, रज को शास्त्र ने कहीं पर भी ब्रह्मचर्य के नाम से

स्मरण नहीं किया फिर कन्या में ब्रह्मचर्य का लगाना शास्त्रानभिज्ञता और पागल-पन नहीं तो और क्या है । "ब्रह्मचर्येण युवानम्" स्वामी जी को यह मन्त्र क्या मिला भानमती का पिटारा मिल गया । इसी मंत्र से तो कन्याओं का वेद पढ़ना निकल बैठा और इसी मंत्र से ही कन्याओं की बढ़ी अवस्था होने पर विवाह टपक पड़ा यह खैंचातानी केवल इस लिये हुई है कि कन्याएं यूरोपीय लेडियों का आचरण करें ।

रही बात यह कि "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" यह लेख किसी भी गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र में कहीं पर भी नहीं है ! मालूम होता है कि संसार की आंख में धूल झोंकने के लिये स्वामी जी ने अपने आप बनाया और श्रौतसूत्र के नाम से सत्यार्थ-प्रकाश में लिख दिया, ऐसे २ दयानन्द जी के अन्यायों को आर्य्यसमाज वैदिक धर्म समझे तो फिर हम भी आर्य्यसमाजियों को पशु ही समझेंगे ? है किसी आर्य्यस-माजी में हिम्मत जो "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" इसको श्रौतसूत्र में दिखला दे ? दिख लाने का जब नाम लिया जाता है तब आर्य्यसमाजियों का चेहरा लकवा मारे हुये मनुष्य के चेहरे के समान बन जाता है ।

स्त्रियों को केवल मन्त्र भागके पढ़ने का निषेध है, अन्य शास्त्रोंका नहीं ? गार्गी प्रभृति जितनी भी विदुषियां भारतवर्ष में हुई हैं ये सब शास्त्रों की विदुषी थीं किन्तु मन्त्र भाग से सब की सब अनभिज्ञ थीं फिर स्त्रियों का वेद पढ़ना तो इति-हास से भी सिद्ध नहीं ? स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में जो लिखा है कि "जो स्त्रियां नहीं पढ़ेंगी वे गृहस्थ का काम कैसे चलावेंगी" यह स्वामी जी की विलक्षण बुद्धि की कल्पना है । वेदादि सच्छास्त्रों में स्त्रियों के लिये केवल मंत्र भाग के पढ़ने का निषेध है अन्य शास्त्रों का नहीं ?

जाति भेद.

वेद ।

संसार में ईश्वर ने जितनी भी जातियां रची हैं उन सब में भेद रक्खा है । सब से पहिले संसार में तृण जाति की उत्पत्ति हुई किन्तु उस तृण जाति में भी ईश्वर ने अनेक भेद दिखाये । तृण एक जाति है किन्तु उसमें दूब, मुसेल, धुरियाँ, मोथा आदि अनेक जाति भेद दीखते हैं । तृण के पश्चात् ईश्वर ने अन्न जाति की

उत्पत्ति की। अन्न-अन्न एक जाति, किन्तु अन्न एक जाति में भेद प्रतिपादक सैकड़ों अवान्तर जातियाँ दृष्टि गोचर होती हैं, धान, ज्वार, बाजरा, मकई, कोदों, सावां, उर्द, मूंग, रवांस, चना, जौ, गेहूं, मटर, मसूर, अरहर। इसके पश्चात् वृक्ष जाति की उत्पत्ति की। वृक्ष-वृक्ष एक जाति, किन्तु उसमें वट, पीपल, नीम, आम, जामुन खजूर, ताल, तमाल, शाल, सागौन, साखू, शीशम, बबूर, गूलर, पिलखन, अर्जुन प्रभृति अनेक भेद सिद्ध करने वाली अवान्तर जातियाँ ईश्वर ने ही रची। वृक्ष के अनन्तर पक्षी जाति की उत्पत्ति हुई। पक्षी-पक्षी एक जाति, किन्तु इस पक्षी एक जाति में चील, काक, कोयल, गीध, बाज, सिखरा, सारस, तीतर, बटेर, बगुला, हंस, चिड़िया, उल्लू प्रभृति भेद सिद्ध करने वाली अनेक अवान्तर जातियां सृष्टि के आरम्भ में ही रची गई। पक्षी जाति के बाद पशु जाति उत्पन्न हुई। इसमें भी भैंस, गौ, बकरी, हिरण, भेड़, ऊँट, घोड़ा, गधा, जबरा, रोज, शाबर प्रभृति अनेक अवान्तर जातियाँ भेद सिद्ध करने वाली मौजूद हैं।

शास्त्र कहता है कि पशुजाति के पश्चात् देव जाति की उत्पत्ति हुई। देव-देव एक जाति, किन्तु उस में भी विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत ये दश अवान्तर जातियां हैं। भाव यह है कि कीट-पतंग-वनचर, नभचर, जलचर आदि समस्त जातियों में अवान्तर जाति भेद अवश्य होते हैं। ये जाति भेद जड़ पदार्थों में भी पाये जाते हैं। पत्थर-एक जाति रहने पर भी उस पत्थरमें संगे असवद, संगमूसा, संग मरमर एवं लाल पत्थर तथा सुफेद पत्थर आदि अनेक जाति भेद हैं। इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में रची हुई मनुष्य जातिमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि अनेक भेद पाये जाते हैं। ये अनादि हैं, ईश्वरकृत हैं, इनमें अन्य जातियों की भांति परिवर्तन रहित भेद हैं। मनुष्यों की उत्पत्ति स्थान में ही भेद प्रतिपादन करता हुआ वेद लिखता है कि—

> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥
>
> यजु० अ० ३१

इस यज्ञ पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुये और बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र।

हमने जो "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का अर्थ किया है यह अन्य लोगों की भांति बनावटी अर्थ त्रिशंकु नहीं है जो अधर बीच में ही लटका रहे। जिनको जाति

भेड़ शेर की भांति भयङ्कर खूंखार दीख पड़ता है वे ऐसे बनावटी अर्थ करते हैं कि जिनकी पुष्टि में एक शब्द भी प्रमाण नहीं मिलता और अन्त में उनकी जालसाजी एवं ईमानदारी का जाल खुल जाता है फिर उनके लिखे पढ़े मनुष्य वेद का शत्रु समझ कर लेखक और लेख दोनों से घृणा करने लगते हैं।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इस मंत्र का जो अर्थ हमने किया है वेद मन्त्र का अनुवाद मनुस्मृति के श्लोक में बद्ध करते हुये मनु जी हमारे ही अर्थ को लिखते हैं पढ़िये—

लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥

मनु० अ० १। ३१।

लोकों की वृद्धि के लिये प्रजापति ने मुख, बाहु, ऊरु, पाद से क्रम पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उत्पन्न किया।

हमारे अर्थ की सत्यता में केवल मनु ही प्रमाण नहीं है वरन् शतपथ लिखता है

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त!

ये ब्राह्मण चारों वर्णों में मुख्य हैं इसकारण इनको उत्तमाङ्ग मुख से रचा।

मुख सब अंगों में उत्तम है इस बात को दिखलाते हुये मनु जी लिखते हैं कि—

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥ ९३॥

मनु० अ० १

उत्तम अंग से उत्पन्न होने और सबसे प्रथम उत्पन्न होने तथा वेदाध्ययन में परिपक्व होने से इस समस्त संसार का ब्राह्मण धार्मिक प्रभु है।

अब सिद्ध हो गया कि शरीर में उत्तम अंग मुख है और मुख से ही ब्राह्मणों की उत्पत्ति बतलाकर शतपथ हमारे अर्थ की सत्यता का साक्षी है। इतना ही नहीं वरन् हमारे अर्थ की पुष्टि करते हुये ऋषि हारीत लिखते हैं कि

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्।
असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः॥ १२॥

शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः।
यथा प्रोवाच भगवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
हारीत स्मृति अ० १

यज्ञ की सिद्धि के लिये ईश्वर ने मुख से ब्राह्मणों को तथा भुजा, ऊरु से क्षत्रिय, वैश्यों को रचा और पैरों से शूद्रों को रचकर ईश्वर वतार ब्रह्मा बोले।

इसका नाम है अर्थ, जिसकी पुष्टि में अनेक शास्त्रों के प्रमाणों पर प्रमाण मिलते चले जांय। हमारा अर्थ इतना पुष्ट है कि चार लाख मनुष्य परिश्रम करें, अपनी खोपड़ियां फोड़ लें तब भी अर्थ की असत्यता सिद्ध नहीं कर सकते।

कई एक मनुष्यों का यह कथन है कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इस मन्त्र से प्रथम "मुखं किमस्यासीत्" इस दशवें मंत्र में यह प्रश्न किया गया था कि ईश्वर का मुख क्या है? तथा भुजा, ऊरु और पाद क्या हैं? वेद को चाहिये था कि उत्तर में ईश्वर के मुख, बाहु, ऊरु, पाद बतलाता। ऐसा तो वेद ने किया नहीं वरन् वेद यह कहने लगा कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पाद से शूद्र हुये। प्रश्न कुछ और-और उत्तर कुछ और? ऐसा तो कोई मूर्ख मनुष्य भी नहीं कर सकता-यह वेद ने किया क्या?

ये दोनों मंत्र यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा के इकतीस के अध्याय के हैं। इस अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ है और इस अध्याय का नाम पुरुष सूक्त है। पुरुष सूक्त तीन विषयों का वर्णन करता है इसका प्रथम विषय इतिहास है। द्वितीय विषय पुरुषमेध यज्ञ का क्रम, तृतीय विषय सृष्टिरचना है। जो इसको नहीं जानते वे इस अध्याय को अपना शत्रु समझते हैं। इतिहास देखिये—

यं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यजु० अ० ३१

उस सब से प्रथम प्रकट होने वाले यज्ञपुरुष का देवता, ऋषि और साध्यों ने पूजन किया।

इस मन्त्रमें तो इतिहास है। फिर इसके आगे "मुखं किमस्यासीत्" इस मन्त्र में पुरुषमेध के लिये निराकार पुरुष के अंगों का प्रश्न है कि पुरुष का मुख, बाहु, ऊरु, पाद क्या हैं? इसके आगे "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" यह मन्त्र है। इस मन्त्र में मुख, बाहु, ऊरु ये तीन पद प्रथमान्त हैं। जैसे ये प्रथमान्त हैं ऐसे ही पाद शब्द

भी प्रथमान्त होना चाहिये था किन्तु वह "पंचम्यन्त" है। इसका मतलब यह है कि इस मंत्र के दो अर्थ होंगे। अर्थ में मुख, बाहु, ऊरु, पाद ये चारों शब्द प्रथमान्त लिये जावेंगे और दूसरे अर्थ में "पद्भ्यां" इस निर्देश से चारों शब्द पंचम्यन्त माने जावेंगे। विभक्ति भेद से दो अर्थ हो जावेंगे देखिये।

ब्राह्मण इस पुरुष का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु, शूद्र पाद यह अर्थ हुआ। इस अर्थ से प्रथम मन्त्र के प्रश्नों का उत्तर भी होगया और जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है। वहां ब्राह्मण का पूजन होगा, क्योंकि ब्राह्मण ईश्वर का मुख है। जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरु पूजन में वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा। इस अर्थ से पुरुषमेध का पूजन क्रम निकला।

दूसरे अर्थ में मुख, बाहु, ऊरु इन तीन पदों को वैसे ही पंचम्यन्त बनाना पड़ेगा जैसे पद्भ्यां पंचम्यन्त है। ऐसा करने पर अर्थ यह होगा कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरु से वैश्य, पैरों से शूद्र मन्त्र के अन्त में "अजायत" किया पड़ी है जिसका अर्थ है "उत्पन्न हुये" यह सृष्ट्युत्पत्ति का अर्थ है। इस प्रकार वेद का ठीक अर्थ करनेपर इतिहास और "मुखं किमस्यासीत्" से पुरुषमेध यज्ञ में ईश्वर के मुखादि अङ्गों का पूजन तथा सृष्टि क्रम तीनों ही निर्विवाद सिद्ध हो जाते हैं, फिर शङ्का कैसी?

कई एक मनुष्यों का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में तो जाति भेद था किन्तु अब उसमें बिना पढ़े ब्राह्मण को शूद्र और पढ़े हुये शूद्र को ब्राह्मण बनाना इतना परिवर्तन कर देना चाहिये।

तृण, अन्न, वृक्ष, पक्षी, पशु, देव, पाषाण प्रभृति किसी भी जातिमें गुणाधिक्य और गुणाभावसे परिवर्तन नहीं होता फिर मनुष्य जाति में कैसे होगा? जाति मुफ्त में नहीं मिली जो बदल डालोगे, वेद लिखता है कि:—

> यथा हि रमणीयाचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्। श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा॥ छान्दो॰ वा॰ उप॰ प्र॰ ५ ख॰ १०

जो शुभकर्मों को करता है वह शुभ शरीर पाता है, ब्राह्मण बनता है, क्षत्रिय बनता है, वैश्य बनता है और जो पापकर्म करता है वह पाप योनि को धारण करता है कुत्ता बनता है, सूकर बनता है, चाण्डाल बनता है।

कल्पना करो एक मनुष्य ने पहिले जन्म में ऐसे कर्म किये कि जिन कर्मों से वह शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ और उसका नाम झाडू रक्खा गया। अब वह पढ़ गया, पढ़ने पर ब्राह्मण बनना चाहता है, कैसे बनेगा? क्या वह पं० चन्द्रशेखर के पूर्व जन्मों के कर्मों से बन जावेगा? वह पूर्व जन्म के कर्म किसके पूर्वकर्म से बदल डालेगा? जो लोग जाति बदलना मानते हैं वे वेद के परम शत्रु हैं, उनकी दृष्टि में पूर्व जन्म के कर्म झूठे और "य इह कपूयाचरणा" यह श्रुति झूठी, उनके भीतरी भाव तो ये हैं कि ईश्वर है ही नहीं? वेद कोई चीज ही नहीं? पूर्व जन्म होता ही नहीं बस मनमानी ढपली बजालो? "य इह कपूयाचरणा" इस श्रुति में कहे हुये पूर्वकर्मानुसार शरीर मिलता है और उन प्रारब्ध कर्मोंकी समाप्ति पर ही यह शरीर अलग होता है। जाति नाम शरीर का है वह बदलेगा कैसे? हरगिज नहीं बदलता। इसके ऊपर योगदर्शन लिखता है कि:—

जिस कर्म से जाति, आयु, भोग मिले हैं जब तक उस कर्म को नहीं भोग लिया जावेगा जाति, आयु, भोग बदल नहीं सकते।

वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार ही जातियां नहीं हैं वरन् अनेक जातियां हैं, उदाहरण के लिये कुछ जातियों का अवलोकन कराता हूँ।

"निषादेभ्यो नमः [यजु० १६ । २८] इस मन्त्रमें निषाद जाति का वर्णन है। नमः क्षत्तृभ्यः [यजु० १६ । २६] इस मन्त्र में क्षत्ता जाति का वर्णन है तक्षभ्यो नमो रथकारेभ्यो नमः कुलालेभ्यो नमः [यजु० १६ । २८] इस मन्त्र में तक्ष, रथकार (बढ़ई) कुलाल (कुम्हार) ये तीन जातियाँ लिखी हैं। अकायाय अयोगूमन्तकृष्टाय मागधम् [यजु० ३० । ५] इस मन्त्र में अयोगू, मागध इन दो जातियों का नाम है। नृताय सूतं गीताय शैलूषं मेधायै रथकारम् [यजु० ३० । ६] इस मन्त्र में सूत, शैलूष और रथकार इन तीन जातियों का निर्देश है। रूपाय मणिकारम् [यजु० ३० । ७] इस मन्त्र में मणिकार जाति का वर्णन है, यह जाति मणियों को बींधती है। नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम् [यजु० ३० । ८] इस मन्त्र में पौञ्जिष्ठ (धानुक) जाति लिखी है। अर्मेभ्यो हस्तिपं जवाय अश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्याय अविपालं तेजसे अजपालं कीलालाय सुराकारम् [यजु० ३० । ११] इस मन्त्र में हस्तिप (फीलवान) अश्वप (सईस) गोपाल, अजपाल (अहीर-गडरिया) सुराकार (कलार) जाति

के नाम मौजूद हैं । सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशंताभ्यो वैन्दमवाराय कैवर्तं गुहाभ्यः किरातम् [यजु० ३० । १६] इस मन्त्र में धैवर, दाश, वैन्द, कैवर्त (मलाह) और किरात इतनी जातियां स्पष्ट मिलती हैं । वर्णाय हिरण्यकारम् [यजु० ३० । १७ इस मन्त्र में हिरण्यकार (सुनार) और महसे वीणावादमानन्दाय तलवम् [यजु० ३० । २०] इस मन्त्र में वीणावाद जाति का नाम है जो पूर्वकाल में हिन्दू जाति थी और सारंगी बजाया करती थी तथा तलव जाति का नाम है जो तवला बजाती थी। वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम् [यजु० ३० । २१] इस मन्त्र में चाण्डाल (भंगी) और वंशनर्तन (नट) जाति का वर्णन है । मेधाय वासः पल्पूली प्रकामाय रजयित्रीम् [यजु० ३० । १२] इस मन्त्र में वासः पल्पूली (धोबी और रजयित्री (रंगरेज) जाति का उल्लेख है । साध्येभ्यश्चर्मम्नम् [यजु० ३० । १५] मन्त्र में चर्मम्न (चमार) जातिका वर्णन और "स्वनेभ्यः पर्णकम् [यजु० ३० । १६] इस मन्त्र में पर्णक (भील) जाति का वर्णन है। मन्यवे अयस्तापम् [यजु० ३० । १४ इस मन्त्र में अयस्ताप (लुहार) जाति का नाम मौजूद है ।

यदि गुणाधिक्य और गुण हीनता के आधार पर चार ही जातियां बन सकती हैं तो फिर वेद ने इन विविध जातियों का उल्लेख क्यों किया ? इसका कोई भी उत्तर जाति भेद को मिटाने वालों के पास नहीं है।

कई एक सज्जनों का कथन है कि कार्यवाही (पेशे) से जातियां ली जाती हैं । इस कथन में किंचित् भी सार नहीं, सार है तो केवल इतना है कि पेशे से जाति बतलाने वालों ने श्रुति-स्मृति को नहीं देखा । औशनस प्रभृति स्मृतियों ने पहिले जाति की उत्पत्ति बतलाई और उत्पत्ति के बाद जाति का पेशा लिखा । जाति का आधार पेशा नहीं है किन्तु रज-वीर्य है, फिर हम कैसे मानलें कि जाति पेशे से बनती है । उदाहरण के लिये देखिये औशनस स्मृति में लिखा है कि:—

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानांच क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ ७ ॥

ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग से उत्पन्न हो उसे मागध कहते हैं यह ब्राह्मणों तथा विशेष कर क्षत्रियों का बन्दी (स्तुति करने वाला) होता है ।

एक मागध जाति का ही यह नियम नहीं है वरन् जितनी भी जातियां स्मृतियों ने दिखलाई हैं पहिले उन जातियों की उत्पत्ति का कारण, फिर जाति का नाम, नाम के पश्चात् जाति का पेशा बतलाया है । इस व्यवस्था को देख कर कोई भी न्याय शील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि पेशे से जातियां बनती हैं ।

वंध्या गौ न प्रसूता होती है और न दूध ही देती है किन्तु जाति की वह गौ ही रहती है-यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण का कार्य न कर सकने पर भी ब्राह्मण ही रहता है इसको महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि पस्पसान्हिक भाष्य में लिखते हैं कि:—

तपः श्रुतंच योनिश्चेत्येतद्ब्राह्मणकारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥

तप, विद्या योनि इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है। विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ब्राह्मण है।

मनु जी भी बिना पढ़े ब्राह्मण को जाति का ब्राह्मण ही मानते हैं देखिये—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ९६॥
ब्राह्मणेषु च विद्वान्सो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥ ९७॥

मनु० अ० १

भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं और प्राणियों में बुद्धिमान प्राणी श्रेष्ठ हैं, जितने भी बुद्धिजीवी प्राणी हैं उनमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों में विद्वान श्रेष्ठ हैं तथा विद्वानों में वे श्रेष्ठ हैं जो शास्त्र कर्तव्य को अनुष्ठेय मानते हैं, उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं जो शास्त्रोक्त अनुष्ठान करते हैं और अनुष्ठान करने वालों में जो ब्रह्मज्ञाता हैं वे श्रेष्ठ हैं।

इस श्लोक में साफ लिखा है कि मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में विद्वान श्रेष्ठ। बिना पढ़े ब्राह्मण होते हैं तब तो मनु ने दो प्रकार के ब्राह्मण माने, एक बिना पढ़े और एक विद्वान।

श्रुति और स्मृति जाति के बदलने का घोर निषेध करती है। जो जाति बदलने के पक्ष को लिये हैं वे श्रुति और स्मृति की संगति नहीं बिठला सकते। संगति तभी बैठेगी जब जाति जन्म से मानी जावे। जाति जन्म से मानना यह वेद और धर्म शास्त्र का अकाट्य सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक भी प्रमाण नहीं। कोई भी युक्ति इसका खण्डन नहीं कर सकती।

आर्यसमाज।

पाश्चात्य दूषित शिक्षाके झोकों से घबराये हुये कुश्चियन धर्म लोलुप दयानन्द जी इस विषय में यह लिखते हैं।

विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये। (प्रश्न) क्या जिसके माता-पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है? (उत्तर) हां बहुत से होगये होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण होगये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसाही आगे भी होगा (प्रश्न) भला जो रज-वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है? (उत्तर) रज-वीर्य के योगसे ब्राह्मण शरीर नहीं होता किन्तु-

स्वाध्यायेन जपैर्होमै-स्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

मनु० २। २८

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेप से कहते हैं (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने, नाना विध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदि के करने (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ, और अतिथि यज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्प विद्यादि पढ़ के दुराचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है। क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते? मानते हैं। फिर क्यों रज-वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो? मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं। (प्रश्न) क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे? (उत्तर) नहीं परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मानके खण्डन भी करते हैं। (प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इसमें क्या प्रमाण? (उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच सात पीढ़ियों के वर्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद

तथा सृष्टि के आरंभ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं। देखो जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो देखो मनु महाराज ने क्या कहा है।

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

मनु० ४। १७८

जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों उसी मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता-पितामह दुष्ट हों तो उनके मार्ग में कभी न चलें क्यों कि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता इसको तुम मानते हो वा नहीं? हां २ मानते हैं और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उसके विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं? अवश्य चाहिये। जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और उसका पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिसका पिता अन्धा हो उसका पुत्र भी अन्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आखों को फोड़ लेवे? जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र कुकर्म ही करे? नहीं २ किन्तु जो जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है। जो कोई रज-वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण-कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।

(प्रश्न)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि

ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य ऊरु और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होतेहैं इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते (उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते। जो मुखादि अंग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगत्का स्रष्टा धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवों के पुण्य पापों की जान के व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषण वाला नहीं हो सकता इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्" शतपथ ब्राह्मण। बल वीर्य का नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटिके अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भागका ऊरु नाम है। जो सब पदार्थों और सब देशोंमें ऊरुके बलसे जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है जैसे।

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि-

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुये ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदिसे उत्पन्न होना असम्भव है जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना ? और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मण उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोल माल है वैसे ही उनके शरीर का भी गोल माल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होना चाहिये ऐसा नहीं होता और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादि से उत्पन्न हुये थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो

इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हमने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है जैसा

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

मनु० १०।६५

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय। वैसेही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र होजाय, वैसे क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी होजाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः
पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ १॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो
जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ २॥

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं। अर्थ—धर्माचरण से निकृष्टवर्ण अपने से उत्तम २ वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे॥ १॥ वैसे अधर्माचरण से पूर्व २ अर्थात् उत्तम २ वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे॥ २॥

जैसे पुरुष जिस जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने २ गुण कर्म स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्ण संकरता प्राप्त न होगी इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ९२ से ९६ तक

विवेचन।

स्वामी जी गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था बतलाते हैं और फिर अपने मत को वैदिक कहते हैं यही आश्चर्य है ? श्रुति-स्मृति में कहीं पर भी गुण, कर्म,

स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं लिखी, मालूम होता है कि इस विषय में किसी पादरी ने स्वामी जी को कुछ अधिक झुका दिया इस कारण जाति में गुण, कर्म, स्वभाव का झूठा अडंगा लगाकर हिन्दुओं का जाति बन्धन बिगाड़ना चाहते हैं।

सत्यकाम, विश्वामित्र और मतङ्ग को बतलाया है कि ये तीनों अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये ? स्वामी जी जानते हैं कि आर्यसमाजी न कभी ग्रन्थ देखते हैं और न आगे को देखेंगे केवल हमारे ही लेख को सत्य मान लेंगे इसी आधार पर स्वामी जी ने झूठ बोल कर संसार को अपने जाल में फांसने का यत्न किया है। सत्य कामादि का अब्राह्मण से ब्राह्मण बनजाना लिखना सुफेद झूठ है, आप क्रम से कथाओं को देखिये।

सत्यकाम।

किं गोत्रो नु सौम्यासीति, सहोवाच नाहमेतद्वेद, भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जवालातु नामाहमस्मि सत्यकामो नामत्वमसीति सो हꣳसत्यकामो जावालोस्मि भो इतितꣳहोवाच नैतद्ब्राह्मणो विवक्तु मर्हति समिधꣳ सौम्याहरेति ॥

छान्दोग्य प्र० ४ खण्ड ४

सत्यकाम विद्याभ्यास और उपनयन के लिये महर्षि गौतमके पास गया और प्रार्थना की कि भगवन् ? मेरा उपनयन करो तथा विद्या पढ़ाओ। गौतम ने पूछा सौम्य ! तुम्हारा क्या गोत्र है ? सत्यकाम बोला मैं नहीं जानता मेरा गोत्र क्या है ? मैंने अपनी माता से पूछा था वह मुझसे बोली कि युवावस्था में घर आये अतिथिरूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी, युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ, फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये, मैं गोत्र नहीं पूछ पाई, मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मैं इतना जानती हूं कि मेरा नाम जवाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। ऋषे ! मैं सत्यकाम जावाल हूं। इतना सुनकर गौतम ने कहा कि ब्राह्मणसे भिन्न अन्य कोई ऐसा वचन नहीं कह सकता। मैं जान गया तू ब्राह्मण है, समिधा लेआ मैं तेरा उपनयन करूंगा।

इस समय सत्यकाम वेद का विद्वान् नहीं, विद्वान् होना दूसरी बात है, अभी वेद को उसने पढ़ना भी आरम्भ नहीं किया। वेदारम्भ के लिये जो वेदारम्भ से पहिले उपनयन संस्कार हुआ करता है अभी वह भी नहीं हुआ, फिर सत्यकाम में कौन विद्या का गुण आगया? और विना वेद पढ़े कौन कौन उसने वैदिक कर्म किये जिससे वह गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बना? यहां पर तो उपनयन संस्कार होने से पहिले ही गौतम ने सत्यकाम से कह दिया "मैं जानता हूँ" तू ब्राह्मण है। ब्राह्मण के विना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता। फिर सत्यकाम का गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बतलाना संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है? आर्यसमाजियों का महर्षि के झूंठ लिखने और जाल बनाने पर किंचित् भी लज्जा नहीं आती यह बड़े शोक की बात है?

विश्वामित्र।

विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना वे लोग मानेंगे कि जिन्हों ने विश्वामित्र की गाथा को न पढ़ा हो। अनुशासन पर्व के आरम्भ में भीष्मने राजा युधिष्ठिर से कहा कि कर्म के द्वारा कोई अन्य जाति ब्राह्मण नहीं बन सकती। इसको सुनकर राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मन्ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

महाभा० अनुशासन प० अ० ३

भगवन् नरेश भीष्म! यदि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते तो फिर विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे बन गये? यह हम याथातथ्य सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके हमसे कहें।

युधिष्ठिर के इस प्रश्न पर भीष्म विश्वामित्र की कथा का आरम्भ करते हैं पढ़िये। राजा गाधि के सत्यवती नाम की एक कन्या थी वह ऋचीक ऋषि को विवाही गई। सत्यवती की माता ने एक दिन सत्यवती से कहा कि तुम्हारे पति ऋचीक अलौकिक शक्तिवान् हैं ऐसे पति से तुम प्रार्थना करो कि भगवन्! न तो मेरे ही पुत्र है और न मेरी माता के ही पुत्र है यदि उनका ध्यान इधर को आकर्षित

हुआ और उन्होंने कृपा की तो फिर मेरे और तेरे दोनों के ही पुत्र होंगे। माता के इस कथन को सुनकर सत्यवती ने एक दिन प्रसन्न चित्त ऋचीक ऋषि से यह प्रार्थना की कि भगवन्! आप सामर्थ्यवान् ऋषि हैं किन्तु इतने पर भी न तो मेरे ही सन्तान है और न मेरी माता के ही है। इसको सुन कर ऋषि बोले कि अच्छा जब तुम्हारी माता ऋतुमती हों तब ऋतुस्नान से निवृत्त होकर अश्वत्थ को भेंटे और तुम गूलर को भेंटो। समय आने पर ऐसा करके ऋषि को सुनाया गया। ऋषि ने दोनों के लिये पृथक् पृथक् चरु पकाया। एक चरु सत्यवती को दे दिया और समझा दिया कि यह चरु तेरा है इसको तू खाना एवं यह दूसरा चरु तेरी माता का है इसको वह खावे। जब सत्यवती उस चरु को लेकर अपनी माता के पास गई तब माता ने कहा कि बेटी! तेरा चरु उत्तम मंत्रों से मंत्रित हुआ होगा इस कारण यह चरु मुझे देदे और मेरा चरु तू लेले, यदि इसमें कुछ कसर भी होगी तो उस कसर को ऋषि फिर दूर कर देंगे। माता के इस कथन को सुन कर कन्या ने अपना चरु माता को दे दिया और माता का आप ले लिया, ऐसा करके दोनों ने खा लिया। केवल चरु मात्र के भक्षण से दोनों को गर्भ रहा। एक दिन सत्यवती को देख कर ऋषि ने कहा कि तैंने चरु बदल डाला और तुमने वृक्ष भी व्यत्यय से ही भेंटे हैं। हमने तुम्हारे चरु में समस्त ब्रह्मतेज स्थापित किया था और तुम्हारी माता के चरु में क्षात्रतेज रक्खा था अब तुमने व्यत्यय कर लिया उसका फल यह होगा कि—

तस्मात्सा ब्राह्मणं श्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ॥ ४० ॥
क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ॥ ४१ ॥

अनुशासनप० अ० ४

चरु के व्यत्यय से तुम्हारी माता ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण को उत्पन्न करेगी और तू उग्रकर्मा क्षत्रिय को पैदा करेगी।

यह बहुत बुरा हुआ कि तैंने माता के प्रेम में आकर चरु को बदल डाला। ऋषि के इस कथन को सुन कर सत्यव्रती घबरा गई और वेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। होश आने के पश्चात् उठी और ऋषि से बोली कि भगवन्! मैं अपराधिनी हूं, दीन हूं, शरण में आई हूं, उग्रकर्मा मेरा पौत्र भले ही हो किन्तु पुत्र इस प्रकार का कदापि न हो। ऋषि ने इस दीना की प्रार्थना को सुना और अपने तपोबल से उग्रकर्मत्व तथा क्षत्रियत्व का दूरीकरण किया, समय आने पर इस सत्यवती के जमदग्नि नाम वाला ऋषि उत्पन्न हुआ।

गाधि की भार्या ने भी पुत्रोत्पन्न किया, उसके प्रकरण में भीष्म कहते हैं कि-

विश्वामित्रं चाजनयद् गाधिभार्या यशस्विनी।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम्॥ ४७॥

अनुशा० प० अ० ४

हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! यशवती गाधि की पत्नी ने ऋषि के प्रसाद से वेद को कथन करने वाले ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को उत्पन्न किया।

अब कौन मनुष्य कह सकता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। विश्वामित्र की कथा कहने वाले महाभारत ने तो उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मवक्ता एवं ब्रह्मर्षि कहा है फिर इसका क्षत्रिय होना मानेगा कौन? यह गाधि के वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ केवल चरु मात्र से गर्भ रहा है। चरु में क्षत्रियपन था ही नहीं, चरु के सर्वांश में ब्रह्मतेज था अतएव विश्वामित्र जन्मसे ही ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण से जो क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न होता है उसमें माता के रज से कुछ क्षत्रियत्व विकार रहता है इसी कारण मन्वादि धर्मशास्त्रों ने ऐसी सन्तान को पूर्ण ब्राह्मण न लिखकर मूर्धाभिषिक्त लिखा है। विश्वामित्र ने अपने घोर तप से मातृरज को अपने शरीर से निकाल दिया, निकालने के पश्चात् वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। जब तक उसमें मातृरज का दोष रहा वशिष्ठ विश्वामित्र को राजर्षि कहते रहे। मातृ रजोदोष न रहने से वशिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कह दिया। इस कथा में जब चरु ब्रह्मवीर्य से युक्त था और महाभारत ने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि मान लिया, इतना होने पर भी विचारशील मनुष्य यह नहीं मान सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय के वीर्य से पैदा हो विद्या पढ़ कर ब्राह्मण बन गया। जो ऐसा मानता है या तो वह विश्वामित्र की गाथा नहीं पढ़ा या जान बूझ कर महाभारत का गला घोट मनुष्यों की आंखों में धूल झोंकता है।

किसी किसी मनुष्य का यह कथन है कि पुरुष के भोग किये बिना केवल चरु मात्र से गर्भ नहीं रह सकता, यह निरी गप्प है?

इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि चरु मात्र से गर्भ रहना यह हमने नहीं बतलाया महाभारत ने बतलाया है। यदि महाभारत गप्प है तब तो गाधि का होना गप्प और गाधि के स्त्री के विश्वामित्र का होना गप्प तथा विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना गप्प, फिर इस गप्प युक्त विश्वामित्र की कथा को तुमने क्यों सत्य माना? और क्यों लिखा कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया? यह स्वामी

दयानन्द जी की खुल्लमखुल्ला चालबाजी है। जब उनको प्रमाण देना हो तब ग्रन्थ सत्य होजाय और यदि दूसरा मनुष्य प्रमाणमें देदे तो फिर वही ग्रन्थ गप्पा बनजाय।

जिन लोगों ने वेद का अध्ययन नहीं किया वे वेद वेद चिल्लाते हुये भी वेद के महत्व को पैरों के नीचे कुचल डालते हैं। सर्व वेद भाष्यकार सायण भाष्य करते हुये वेद भाष्य भूमिका में लिखते हैं कि—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतद्वदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥

जो उपाय प्रत्यक्ष में नहीं आता और जो अनुमति अकलिया दलील में नहीं बैठता वह वेद के अनुष्ठान से मिल जाता है यही वेद की वेदता है।

वेदोक्त पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरु मात्र से पुत्र उत्पन्न होता है इसको न्याय दर्शन ने माना है कि त्रिपिण्डी श्राद्ध के मध्यम पिण्ड के भक्षण से स्त्री को गर्भ रहता है यह भी एक वेद का महत्व है इसको मनु ने भी लिखा है। कात्यायन श्रौत सूत्र में इसकी विधि है।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।

हे पितरो ! तुम गर्भ स्थापन करो और कमल की माला पहिनने वाला इस स्त्री के पुत्र पैदा हो।

यह स्वतः वेद कहता है। इसी प्रकार के वेदमें अनेक अनुष्ठान ऐसे हैं जिनसे असम्भव बातें संभव बन जाती हैं फिर हम कैसे मानलें कि चरु से गर्भ नहीं रहता, किसी बात को बिना विचारे असंभव बतला देना यह मूर्खता है। यह सिद्ध होगया कि विश्वामित्र की उत्पत्ति केवल चरु से है और चरु में ब्रह्मतेज भरा है फिर यह बात कोई भी नहीं कह सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण होगये ? रही बात मतंग की। मतंग का इतिहास यह है।

मतंग।

किसी ब्राह्मण का पुत्र मतंग नामक था, उसके पिता ने मतंग को यज्ञ कराने के लिये नियत किया। वह एक दिन दो गधा जिसमें लगे हुये थे ऐसे रथ पर चढ़ाके जा रहा था, उसने रथ में जुड़े गधे की नासिका में निर्दयता से बार बार प्रतोद (पैना) छेदा, जिससे उसकी नाक में घाव हो गया। इस दशा को देख कर दूसरी ओर रथ में जुड़ी हुई उस गधे की माँ गर्दभी बोली कि हे पुत्र। तू शोक मत कर,

इस रथ पर छेदने वाला चाण्डाल बैठा है। ब्राह्मण में दया होती है ऐसा निर्दय होकर ब्राह्मण कभी नहीं मार सकता और यह रथ पर बैठा चाण्डाल पापयोनि होने से अपने निर्दयता के स्वभाव को छिपा भी नहीं सकता। जैसे पूर्वजन्म के किसी नीच कर्म से वह गर्दभी बनी और किसी उत्तम धर्मानुष्ठान से उसको ऐसा ज्ञान भी था वैसे ही चाण्डाल योनि मतंग भी पूर्वजन्म के उत्तम संस्कार से गर्दभादि की बोली समझता था (अर्थात् इतिहास में साधारणों की कथायें नहीं लिखी गईं किन्तु सिद्धों के इतिहास लिखे गये हैं) मतंग ने गर्दभी के कथन को सुन और समझ के रथ से उत्तर कर गर्दभी से पूछा कि मेरा ब्राह्मणपन कैसे नष्ट हुआ, मेरी माता ने क्या पाप किया, मैं चाण्डाल कैसे हो गया? ठीक ठीक मुझे बतला दे। गर्दभी ने कहा कि तुम कामातुर मत्त ब्राह्मणी में नाई से पैदा हुये हो अर्थात् तुम्हारी माता ने नाई से संयोग किया उससे तुम पैदा होने के कारण चाण्डाल (मेहतर) हो। मतंग ने यह सब सुनके पिता के पास जाकर समस्त वृत्तान्त कहा और वहाँ से निकल कर तप करने को चला गया। तप करते करते इन्द्र देवता ने आकर कहा कि हम प्रसन्न हैं तू वर मांग मतंग ने कहा मैं ब्राह्मण होना चाहता हूं।

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारममाचिरम् ॥ २८ ॥
श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्तते।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥ २९ ॥
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम्।
चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथंचन ॥ ३० ॥

महा० अनुशासन पर्व अ० २७

मतंग! जिन्होंने पुण्यपुञ्ज का संग्रह नहीं किया उनसे अप्राप्य ब्राह्मणत्व को तू प्रार्थना करता है, तू दुर्बुद्धि है इस ब्राह्मणत्व की इच्छा से तू उपराम कर, नहीं तो तू नष्ट हो जावेगा ॥ २८ ॥ सब प्राणियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति तप से प्राप्त नहीं हो सकती उस ब्राह्मणजातीय उत्तमता को चाहता हुआ तू शीघ्र नष्ट होजायगा ॥२९॥ देवता, असुर और मनुष्यों में ब्राह्मणपन परम पवित्र माना गया है, उस ब्राह्मणपन को चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुआ कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

मतंग ने दो तीन बार उग्र तप किया और इन्द्र देवता ने आकर वैसा ही समझाया, अन्त में इन्द्र ने मतंग से कहा कि—

तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ॥ १२ ॥
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः ॥ १३ ॥

अनुशासन पर्व अ०। २९।

इस कारण से अशुद्ध शरीर वालों को जो प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे ब्राह्मणपन के वर छोड़ कर तुम अन्य वर मांगो। तुम्हारे लिये यह वर दुर्लभ है, तुम किसी प्रकार ब्राह्मण नहीं हो सकते।

इतना कह कर इन्द्र चला गया, मतंग पूर्ववत् चाण्डाल बना रहा, यह मतंग का इतिहास है। इस कथा से मतंग का ब्राह्मण होना लिखना सर्वथा अन्याय है। इन कथाओं को देख कर कोई भी न्यायशील मनुष्य इनसे वर्ण परिवर्तन सिद्ध नहीं कर सकता। फिर भी जब कोई अवलम्ब वर्ण परिवर्तन का नहीं मिला तो स्वामी जी ने झूठ ही लिख मारा। क्या झूठ लिखना भी कोई न्याय या धर्म है? इस प्रकार की झूठी बातों को लेकर जो आर्य्यसमाज चला है वह कितने दिन संसार में ठहर सकेगा।

फिर स्वामी जी ने लिखा है कि "स्वाध्यायेन" इस श्लोक में जो स्वाध्याय, जप, होम, त्रिविद्या, इज्यया, धर्म से सन्तानोत्पत्ति, महायज्ञ, यज्ञ है, इनसे यह शरीर ब्राह्मी बनाया जाता है अर्थात् ब्राह्मण हो जाता है।

लेख गलत है। प्रथम तो यह श्लोक मनु का है, किसी भी वेद मंत्र के अनुकूल नहीं? स्वामी दयानन्द जी वेदानुकूल मनु को मानते हैं। जब यह वेदानुकूल ही नहीं तो फिर आर्य्यसमाज को प्रमाण कैसे होगा? (२) यज्ञ स्वामी जी ने वेदों से उड़ा दीं, अब अग्निष्टोमादि यज्ञ जब वेद में रहे ही नहीं तो आर्य्यसमाजी करेंगे कहां से? (३) "ब्राह्मीयं" का अर्थ "ब्राह्मण" नहीं हो सकता। इस अर्थ में वेद, धर्मशास्त्र, पुराण-इतिहास, दर्शन और अंग सब जवाब दे बैठते हैं। 'ब्राह्मीयं' का 'ब्राह्मण' अर्थ करना पीनक की दशा को सिद्ध करता है। "ब्राह्मीयं-ब्रह्मप्राप्तियोग्येयं तनुः क्रियते" इन अनुष्ठानों से ब्रह्मप्राप्ति के योग्य शरीर बनता है। कुल्लूक भट्ट आदि जितने भी संस्कृत या भाषा के टीकाकार हैं सभी ने यह अर्थ किया है कि इन अनुष्ठानों से शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो जाता है। (४) स्वामी जी ने पाठ भी बदल लिया, आपने "व्रतैर्होमैः" का "जपैर्होमैः" बना लिया? यहां पर जप को

उत्तम कर्म मान बैठे, यह याद न रहा कि मूर्ति पूजा में हमने ही लिखा है कि जैसे मिसरी २ कहने से मुँह मीठा नहीं होता, वैसे राम २ कहने से क्या होगा ? 'जप' बार बार उच्चारण का नाम है, उसका आप मूर्ति पूजा में खण्डन कर चुके, यहां पर उसको ही शुभ कर्म बतला दिया, महर्षि के इस गोरखधन्धे पर आर्य्यसमाजियों को ध्यान देना चाहिये। पाठ बदला था इस लिये कि 'व्रत' रखने का अड़ंगा न लग जावे, वह तो छूट गया किन्तु 'जप' का अड़ंगा आर्य्यसमाजियों के पीछे दौड़ पड़ा।

(५) इस श्लोक में कई बातें ऐसी हैं जिनको आर्य्यसमाज वैदिक ही नहीं मानता। ठीक अर्थ देखिये—

स्वाध्याय पढ़ना-पढ़ाना, व्रत मधु-मांस वर्जनादि नियम, होम सावित्र चरु का सायं प्रातःकाल हवन, त्रैविद्याख्य व्रत, इज्या ब्रह्मचर्यावस्था में देवर्षि-पितृ तर्पण गृहस्थावस्था में सुतोत्पादन, महायज्ञ, ब्रह्म यज्ञादिक पांच, यज्ञ ज्योतिष्टोमादि-इतने कर्तव्यों से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है-यह मनु का कथन है। मनु ने "अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः १० । १" इस श्लोक में केवल द्विजातियों को ही स्वाध्याय कहा है वह आर्य्यसमाजियों को स्वीकार नहीं। सावित्री द्वारा चरु का होम भी आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध है। आर्य्यसमाज में जो हवन होता है उसमें चरु पकाया नहीं जाता और न चरु से हवन होता है एवं न ही आर्य्यसमाज में चरु के होम की कहीं विधि है ? त्रिविद्याख्य व्रत आर्य्यसमाजी कोई करता नहीं और न आर्य्यसमाजी ग्रन्थों में यह बतलाया गया कि यह कौन बलाय है ? इज्या ब्रह्मचर्यावस्था में देवर्षि पितृ तर्पण जो मनु ने लिखा है वह इन्द्रादि देव और ब्रह्मादि ऋषि एवं यमादि पितरों का है, वह तर्पण आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध है ? यज्ञ ज्योतिष्टोमादि आर्यसमाज के मत से वेद में हैं ही नहीं इस कारण श्लोक का जाली अर्थ बना कर स्वामी जी आर्य्यसमाजियों को अपने जाल में लेते हैं। बस सिद्ध हुआ कि आर्य्यसमाज के मत में यह श्लोक वेदानुकूल नहीं। श्लोक में कहे हुये कर्तव्य भी आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध हैं ? 'ब्राह्मीयं' का अर्थ ब्राह्मण हो नहीं सकता फिर झूठे पैंतरे बदल कर स्वामी जी ने जो शूद्रों का ब्राह्मण होना लिख दिया इस कपट जाल में वे ही चिड़ियां फंसेंगी जो सर्वथा मूर्ख होने के कारण आर्य्यसमाज के रजिस्टर में नाम लिखवा चुकी हों ? पढ़े लिखे मनुष्यों पर किसी का कपट जाल नहीं चल सकता।

स्वामी जी-पिता-पितामहादिक इस आपके नकली ईसाई मार्ग से नहीं चले वरंन् वर्णव्यवस्था का न बदलना यही वेद का सिद्धान्त है। तुम क्या गजब करते हो

वेद को, झूठा-ठहरा कर लोभवश अपने मन में पैदा किये गपोड़े को वैदिक बतलाते हो ? वर्ण का बदलना न वेद में है और न धर्मशास्त्र में ?

स्वामी जी यह भी लिखते हैं कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ मुसलमान ईसाई होगया हो उसको तुम पहिले ब्राह्मणादिक वर्ण में क्यों नहीं मानते ? स्वामी जी ? आपका शास्त्र समझा हुआ नहीं है । जो ब्राह्मण या क्षत्रिय ईसाई मुसलमान होगया वह अब भी जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय ही है, जाति तो शरीर के पतन पर बदलेगी ? यदि कहो उससे खान-पान और विवाहादि सम्बन्ध क्यों नहीं करते ? वह भ्रष्ट हो गया है इस कारण उसका जाति में ग्रहण नहीं होता ? सभी मनुष्य लड्डू खाते हैं किन्तु जो लड्डू मैलेसे भिड़ गया उसको कोई नहीं खायगा क्योंकि वह भ्रष्ट होगया । इसी प्रकार ब्राह्मण-क्षत्रिय-ईसाई हो जाने से जाति के ब्राह्मण रहने पर भी भ्रष्ट हो जाते हैं अतएव उनका व्यवहार छोड़ दिया जाता है । स्वामी जी ! आप यह क्या धोखा देते हैं जो "ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्" इस मन्त्रमें निराकार ईश्वर की अनुवृत्ति बतलाते हैं ? इस अध्याय में तो निराकार ईश्वर कहा ही नहीं । फिर तुम अपने दिमाग की झूठी बातों को वेद के नाम से क्यों लिखते हो ? इस अध्याय में तो "सहस्रशीर्षापुरुषः" इस मन्त्र द्वारा साकार विराट् का वर्णन है ? आगे चल कर "तं यज्ञम्" इस मन्त्र में यह वर्णन किया कि जो सबसे पहिले पैदा हुआ था उस यज्ञ पुरुष विराट् का ऋषियों ने पूजन किया फिर यहां निराकार कहां से धंस बैठा ? आप वेद के प्रत्येक मन्त्र के गले पर छुरा चला रहे हैं, आपका यह कर्तव्य अत्यन्त घृणास्पद है ? आपने जो "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" का अर्थ किया वह मुकद्दमे में इनाम पाने के लायक है । आपका यही तो अर्थ है कि 'जो सब में उत्तम हो वह ब्राह्मण, ? आपके हिसाब से राजा ब्राह्मण, मंत्री ब्राह्मण, पहलवान् ब्राह्मण गायक शिरोमणि ब्राह्मण, खूब सूरत ब्राह्मण तथा रण्डी ब्राह्मण, ? जो उत्तम होंगे वे सब ब्राह्मण होंगे ? इनमें कुछ न कुछ उत्तमता अवश्य रहती है ? फिर आप लिखते हैं कि 'जिसमें बल वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय, पहलवान् क्षत्रिय, शेर क्षत्रिय और भैंसा क्षत्रिय । आप यहां पर शतपथ की धमकी भी देते हैं, प्रत्यक्ष विरुद्ध शतपथ नहीं कहेगा ? तुम्हीं कहो । यह भी खूब कही कि, उरु के बल से जो देश विदेश जावे वह वैश्य, यदि कोई आर्यसमाजी पण्डित पेशावर से पैदल चलकर कलकत्ते पहुंच जावे तो वह आपकी दृष्टि में वैश्य क्योंकि उरु के बल से आया है । आपके इस लक्षण से तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, गाय, भैंस भेड़ बकरी सभी

वैश्य हो जावेंगे क्योंकि ये सब ऊरु के बल से चलते हैं ? आपकी अनर्गल बातों को वे ही मानेंगे जिनको बुद्धि का अजीर्ण होगया है । विचार शील नहीं मान सकते ? आप यह भी खूब लिखते हैं कि, जो पैर के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र आपकी दृष्टि में पैर मूर्ख है । और भुजा चारों वेद पढ़ी हैं, पेट दर्शनों का पण्डित है और ऊरु वैयाकरण हैं । यह आप कहाँ की अक्ल खर्च कर रहे हैं ? पैर बोलते नहीं तो भुजा, पेट, और ऊरु भी तो सत्यार्थ प्रकाश नहीं बांचते ? यदि आप कहें कि भुजा लिखने पढ़ने का काम करती है, पेट अन्न पचाने का काम करता है तो पैर भी तो चलने का काम करते हैं । क्रिया करने की शक्ति सब में है किन्तु है ईश्वरदत्त पृथक् २ ? फिर आप पैरोंको मूर्ख और जंघादिकों को धुरंधर विद्वान् कैसे मानते हैं ? आप कुछ तो सोच समझ कर लिख करें कि सभी जगह असम्बद्ध प्रलाप लिखोगे ? एवं फिर आपने यह अर्थ कहां से निकाला ? क्या किसी वेद मन्त्र का अनुवाद है या तुम्हारे मन का हुक्म ?

आप कहते हैं कि शतपथ भी ऐसा ही मानता है । शतपथ का जो आपने प्रमाण दिया वह तो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है शतपथ का अर्थ यह है कि ब्राह्मण सबमें मुख्य हैं इस लिये इनको विराट् के मुख से रचा" । इस अर्थ से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि है या आपके सिद्धान्त की ? शावास है बुद्धिमान् हों तो ऐसे ही हों । जिस सिद्धान्त का खण्डन करें उसी की पुष्टि में प्रमाण लिखदें ? । आप जबर्दस्ती यह अपने मन में धसा हुआ गुण, कर्म स्वभाव प्रमाणों के अर्थों में क्यों मिलाते जाते हैं क्या आप ईश्वर की भूल को पूरा कर रहे हैं ? । आप विराट को भी निराकर मानते हैं यह आपकी विलक्षण बुद्धि है । संभव है आपकी दृष्टि में आर्यसमाजी और आर्यसमाजियों के मकान भी निराकार हों ? ऐसी बुद्धि की बलिहारी है ।

हमें आश्चर्य होता है कि आप इस किस्म के अर्थ लिखते हैं जिनको बच्चे भी स्वीकार न करें । आपका लेख है कि "ब्राह्मण ईश्वर के मुख से पैदा होते तो ये गोलमटोल होते और जमीन पर लुढ़कते फिरते यदि भुजा से क्षत्रिय होते तो लम्बे २ ताड़ कैसे लट्ठे बनते । वैश्य ऊरु से पैदा होते तो ऊपर से मोटे, नीचे से पतले कुछ चिकने २ बनते । इसी प्रकार शूद्र पैरों से उत्पन्न होते तो पीछे से पतले, आगे से चौड़े कुछ गांठों वाले बनते क्यों कि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है" । स्वामी जी ! आप विना पढ़े ही दर्शनों में दौड़ते हैं ? यदि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है तो फिर यह मनुष्य पानी से पैदा होता है, यह कठिन शरीर का क्यों होगया ? वट का वृक्ष जरा से गोल बीज से

उत्पन्न होता है तो फिर यह फिर बीज के सदृश क्यों नहीं ? गोल सरसों का पेड़, लम्बा क्यों ? यह भी कारण के सदृश होना चाहिये ? संसार में आप एक ही दार्शनिक ऐसे हुये जो प्रत्यक्ष विरुद्ध कार्य को कारण के सदृश मानते हैं। ये तुम्हारे गपोड़े आर्यसमाजी आंख बन्द करके भलेही मानलें किन्तु विचारशील संसार नहीं मान सकता ?

स्वामी जी लिखते हैं कि "सृष्टि के आरम्भ में जो लोग मुख से पैदा हुये थे वे ब्राह्मण थे किन्तु आज कल के ब्राह्मण तो मुख से पैदा नहीं हुये फिर ये ब्राह्मण कैसे" ? । स्वामी जी की चालबाजी न छूटी, प्रत्येक लेख में आप चालबाजी से ही काम लेते हैं। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होता है जैसे बैल का पुत्र बैल और ऊंट का पुत्र ऊंट। इसी प्रकार जब घोड़े का पुत्र घोड़ा और गधे का पुत्र गधा होता है तो फिर ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय एवं वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र कैसे न होगा ? सभी जातियों में बाप के सदृश पुत्र होता है फिर आपने ब्राह्मणादि मनुष्यों के विषय में इस सड़ियल दलील को क्यों लगाया ? जो व्याकरण पढ़े हैं वे जानते हैं कि "ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान्ब्राह्मणः" किन्तु इस बात को वही समझेगा जो लिखा पढ़ा हो।

अब रही बात "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" इसकी, यहाँ पर इसके पहिले "शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः" श्लोक है। इन दोनों श्लोकों का इकट्ठा अर्थ होता है। (१) एक श्लोक को छोड़ा और एक को लिया यह प्रथम दोष (२) दोनों श्लोक वेद के किसी मन्त्र से नहीं मिलते, वेदानुकूल न होने पर भी दोनों श्लोकों को स्वामी जी ने वेदानुकूल मान लिया यह दूसरा दोष। (३) इन दोनों श्लोकों में कहीं पर गुण, कर्म, स्वभाव नहीं है, इन तीनों को स्वामी जी ने अपनी तरफ से श्लोकों के अर्थों में मिला दिया, यह तीसरा दोष। (४) इन श्लोकों का भाव यह है कि शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से यदि कन्या पैदा हो और वह कन्या बराबर ब्राह्मणों में विवाही जावे तो सातवीं पीढ़ी में माता के रज के परमाणु बिल्कुल निकल जावेंगे, सप्तम कन्या शूद्र ब्राह्मणी हो जावेगी। इसी प्रकार ब्राह्मणी में यदि शूद्र से सन्तान पैदा हो और उसका सम्बन्ध शूद्र जाति में होता जावे तो सप्तम कन्या सर्वांश में शूद्र हो जावेगी यह श्लोकों का अर्थ है। पूर्ण अर्थ वेदानुकूलता के प्रकरण पृष्ठ १२६ में हम लिख आये है वहाँ देखलो। जैसे २ रज वीर्य की शुद्धि या अशुद्धि होती जावेगी वैसे ही वैसे सन्तान में पवित्रता और अपवित्रता बढ़ेगी यहां तो रज-वीर्य से ही शूद्र का ब्राह्मण बनना और ब्राह्मण का शूद्र बनना लिखा है फिर कौन कहता है कि इन

श्लोकों में गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था है? स्वामी जी की चालबाजियों पर ध्यान देना यह पाठकों का कर्त्तव्य है।

स्वामी जी आपस्तम्ब के दो सूत्र प्रमाण देते हुये जाति का बदल जाना लिखते हैं किन्तु "जातिपरिवृत्तौ" पद के अर्थ को दबा लेते हैं। अर्थ यह होता है "धर्माचरण से छोटे वर्ण बड़े २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जानेपर। अधर्माचरण से बड़े वर्ण छोटे २ वर्णों को प्राप्त होते है जाति बदल जाने पर"। जाति शरीर में रहती है। शरीर बदलने पर जाति बदलती है और दोनों सूत्र जाति बदलने पर ही वर्ण बदलना मानते हैं किन्तु स्वामी जी दो बार आये हुये "जातिपरिवृत्तौ" शब्दों का अर्थ ही नहीं करते। अब पूछना यह है कि यहां पर आपस्तम्ब के सूत्र से वर्ण बदलना सिद्ध है या स्वामी दयानन्द जी की की हुई चोरी के बल पर? सूत्र तो कहते हैं कि शरीर के बदल जाने पर वर्ण बदल जाता है और स्वामी जी सूत्रों के दो पद चुराकर तुरंत ही वर्ण बदल देते हैं। सूत्रों के पदों को चुरा कर सूत्रों का अर्थ करना आर्यसमाज के लिये क्या लज्जा की बात नहीं है? इसको आर्य्यसमाजी सोचें। भाव यह है कि वेदादि सच्छास्त्रों में से कहीं पर भी वर्ण बदलने की स्वीकारता नहीं है, स्वामी जी ने जाल बना, चालबाजी कर, चोरी का आश्रय ले वर्ण बदलनेका सिद्धान्त उठाया किन्तु विद्वानों की विवेचना से यह पबलिक पर जाहिर होगया कि स्वामी जी वेदशास्त्रों के गले घोट एक नया सिद्धान्त चलाते हैं। विचार के आगे इस कल्पित सिद्धान्त की धज्जियां उड़ जाती हैं।

चेले।

स्वा० दयानन्द जी के चेले भी इस बात को जान गये कि स्वामी जी ने जो वर्णव्यवस्था पर प्रमाण उठाये वे दयानन्द के सिद्धान्त से ही विरोध रखते हैं और उनको लेकर जो समाजी पंडित शास्त्रार्थ करेगा वह तत्काल हार जावेगा यह अनुभव कर दयानन्द जी के प्रमाणों का अब चेले कुछ भी जिक्र नहीं करते किन्तु अब इन्होंने कुछ ऐसे प्रमाण खोले हैं जो शास्त्रार्थ में सनातनधर्मियों के आगे रक्खे जाते हैं। हैं वे भी असत्य, उनको रख कर भी आर्यसमाज को हारना पड़ता है तो भी दयानन्द गृहीत प्रमाणों को नहीं रखते, अपने ही प्रमाणों को रखते हैं। इनका कथन यह है कि "ब्राह्मण शूद्र होजाता है"। इसकी पुष्टि में श्लोक देते हैं कि:—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥ १०३॥

मनु० अ० २

जो मनुष्य प्रातः और सांय संध्या नहीं करता वह समस्त द्विज कर्म से शूद्र की भाँति बाहर कर देने योग्य है।

इस श्लोक को आगे रख कर आर्यसमाजी कहते हैं कि देखो द्विजाति भी शूद्र हो जाता है ? यहां पर "शूद्र" पद नहीं है वरन् "शूद्रवत्" है। शूद्र का अर्थ जो होता है वही ये लोग 'शूद्रवत्, का कर लेते हैं किन्तु यहां पर तुल्य अर्थ में वतुप् प्रत्यय है, इस कारण शूद्रवत्, का अर्थ 'शूद्र तुल्य' होता है अर्थात् जो ब्राह्मण संध्या नहीं करता उसको द्विज कर्म से ऐसे निकाल दो जैसे शूद्र निकाले दिया जाता है। कहो, यहां ब्राह्मण शूद्र हुआ कि शूद्र की तरह निकाला गया ? यदि वही ब्राह्मण संध्या न करने का प्रायश्चित्त करदे तो फिर द्विज कर्म में शामिल हो जाय। जाति नहीं बदलती यह तो दण्ड है। आर्यसमाजियो ? तुम 'शूद्र' और 'शूद्रवत्' में घपला डाल कर मूर्खों को जाल में फांस सकते हो विद्वान् को नहीं ? फिर नहीं मालूम संसार में जिनका कपट खुल जावे ऐसी चालाकियों का आश्रय तुम क्यों लेते हो ?

कई एक आर्यसमाजी कहते हैं कि सत्यकाम, मतंग, विश्वामित्र का इतिहास तो आर्यसमाज के सिद्धान्त को पुष्ट नहीं कर सकता, हां-कई इतिहास ऐसे हैं जिनसे वर्ण बदलना सिद्ध है। जैसे कहारी का लड़का महर्षि वेदव्यास और वेश्या का पुत्र वशिष्ठ ब्रह्मर्षि, एवं भील का लड़का बाल्मीक ब्राह्मण होगया। यदि वर्ण न बदलता होता तो ये तीनों ब्राह्मण कैसे बनते।

उत्तर—वेदव्यास कहारी का लड़का नहीं क्षत्रिय कन्या का पुत्र है। वसिष्ठ मित्रावरुण से उर्वसी विजली में अयोनिज मानसिक पुत्र है। वाल्मीक किसी भील का लड़का नहीं किन्तु ब्रह्मा के पुत्र महर्षि प्रचेता का पुत्र है, क्रम से इतिहास देखिये।

व्यास।

महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कथा इस प्रकार है कि उपरिचर वसु नाम के राजा के एक पुत्री और एक पुत्र हुआ। पुत्री दास को पालने को दे दी और लड़का आप रख लिया।

तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा।
स मत्स्यो नाम राजासीद्धार्मिकः सत्यसंगरः॥

उन दो मेंसे लड़के को राजाने ले लिया वह लड़का मत्स्य नाम का धार्मिक और संग्राम विजेता राजा हुआ।

जब सत्यवती उपरिचर वसु नामक राजा के वीर्य से उत्पन्न हुई तब फिर हम उसको दास की पुत्री किस प्रकार मानलें।

वसिष्ठ।

अब हम वसिष्ठ के दो जन्म की कथा दिखला कर वसिष्ठ के इतिहास से यह सिद्ध करेंगे कि वसिष्ठ कभी गणिका के गर्भ से उत्पन्न ही नहीं हुये। प्रथम जन्म में वसिष्ठ अयोनिज मानसिक ब्रह्मा के पुत्र हैं। इस विषय में श्रीमद्भागवत का लेख है कि:—

> **मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।**
> **भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥**

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद ये दश ब्रह्मा के पुत्र हैं।

श्रीमद्भागवत ने वसिष्ठ को ब्रह्मा का पुत्र बतलाया। मनुजी भी यही लिखते हैं कि:—

> **मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।**
> **प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥ ३५॥**

मनु० अ० १

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ भृगु और नारद ब्रह्मा ने इन दश पुत्रों को उत्पन्न किया।

इस जन्म में वसिष्ठ अयोनिज है अतएव यह गणिका का पुत्र हो ही नहीं सकता। इसी वसिष्ठ को निमिने यज्ञ करवाने केलिये निमन्त्रित किया, वसिष्ठ आये, निमिसे कहा कि इन्द्र ने आपसे पहिले मुझे यज्ञ करवानेके निमन्त्रित किया है प्रथम इन्द्र की यज्ञ करा आऊं फिर आपकी यज्ञ आरम्भ होगा इतना कहकर वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ करवाने को चले गये। निमि वसिष्ठ के आनेकी आशामें रहे। एक दिन निमि के चित्त में यह आया कि बहुत दिन होगये अभी वसिष्ठ नहीं आये, यदि उनको अधिक समय लग गया और मेरे शरीर का पात होगया तब तो हानि होगी अतएव यज्ञ अवश्य होना चाहिये। वसिष्ठ नहीं आये तो न सही किसी और ऋषि द्वारा यज्ञ हो, इस विचार को निश्चय कर निमि ने दूसरे ऋषियों द्वारा यज्ञारम्भ कर दिया। यज्ञ हो ही रहा था कि वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ समाप्त करके निमि के यहां आ गये। यज्ञारम्भ को देखकर वसिष्ठ को क्रोध आया कि देखो निमि ने यज्ञ को लिये

मुझे निमन्त्रित कर दूसरे ऋषियों से यज्ञारम्भ कर दिया, यह प्रथम ही मुझसे कह देता कि आप इन्द्र का यज्ञ करवाओ, हम दूसरों से करवा लेंगे, इसने अपने वचन का पालन नहीं किया अतएव यह दण्डनीय है, यह सोच कर निमिको मृत्यु शाप दे दिया । मृत्यु के शाप को सुन कर निमि को क्रोध आया, निमि ने वसिष्ठ को मृत्युका शाप दे दिया यह कथा श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध के तेरहवें अध्याय में है । दोनों ने ही शरीर छोड़ दिये । वसिष्ठ ने मृत्युके पश्चात् दूसरा शरीर धारण किया । इसके ऊपर श्रीमद्भागवत लिखता है कि:—

मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ९ अ० १३

मित्रावरुण के सकाश से वसिष्ठ ने उर्वशी में जन्म धारण किया ।

यह कथा पुराण में ही नहीं किन्तु वेद में भी है। वेद इसका विवेचन करते हुये लिखता है कि:—

विद्युन्न या पतन्ती दविद्यो-
द्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरतदीर्घमायुः ॥

इस ऋचा का निरुक्त देखिये:—

विद्यु दिव या पतन्त्यद्योतत हरन्ती मे अप्या काम्यान्युदकान्यन्तरिक्षलोकस्य यदा नूनमयं जायेताद्भ्योऽध्यप इति नर्यो मनुष्यो नृभ्यो हितो नरापत्यमिति वा सुजातः सुजाततरोऽथोर्वशी प्रवर्धयते दीर्घमायुः ।

नि० दैवत कां० अ० ५ पाद ४

अब विद्युत होकर गिरती हुई अन्तरिक्ष में होने वाली काम्यवस्तुओं (जलों) को लाती हुई जो चमकती है, उत्पन्न हुआ है उससे मनुष्यों के लिये हितकारी शुभजन्मवाला जल, इस प्रकार जल और जल से अन्न द्वारा वह दीर्घ आयु बढ़ाती है। बिजली की नाईं जो गिरती हुई चमकती है लाती हुई मेरे लिये प्यारे अन्तरिक्ष के जल जब तब निःसन्देह यह मेघ पुरूरवा प्रकट होता है जलों से। मनुष्यों के लिये हितकारी अथवा मनुष्यकी सन्तान। बहुत अच्छा उत्पन्न हुआ। तब उर्वशी बढ़ाती है दीर्घ आयु । इस प्रकरण में निरुक्त ने उर्वशी को देवता मानकर उससे दीर्घायु की

प्रार्थना की है। जब उर्वशी मध्यस्थानीय देवता है तो फिर इसको गणिका मानना शास्त्रानभिज्ञता है या नहीं ?

वेद ने उर्वशी को अप्सरा बतलाया है इसका व्याख्यान निरुक्त इस प्रकार लिखता है।

उर्वश्यप्सरा उर्वभ्यश्नुत ऊरुभ्यामश्नुत ऊरुर्वा वशोऽस्याः। अप्सरा अप्सारिणयपि वाप्स इति रूपनामाप्सातेरप्सानीयं भवति। आदर्शनीयं व्यापनीयं वा स्पष्टं दर्शनायेति शाकपूणिरयदप्स इत्यभक्षस्याप्सो नामेति व्यापिनस्तद्रा भवति रूपवती तदनयात्तमिति वा तदस्यै दत्तमितिवा। तस्या दर्शनान्मित्रावरुणायो रेतश्चस्कन्द। तदभिवादिन्येषर्ग्भवति।

नि० नैगमका० अ० ५ पाद ३

उर्वशी अप्सरा है, बहुत यश को व्याप्त होती है अथवा ऊरुओं से व्याप्त होती है अथवा बड़ी इसकी कामना है। अप्सरा जल में जलने वाली अथवा अप्स-रूप का नाम है, भक्षण के योग्य नहीं होता है किन्तु पूरी तरह देखने योग्य होता है। अथवा स्पष्ट देखने के लिये व्यापने योग्य होता है-यह शाकपूणि मानता है। जो अभक्ष्य हमने खाया है यहां अप्स अभक्ष्य का नाम है और अप्सो नाम व्यापने वाली है, यहाँ अप्सस् व्यापने वाले का नाम है सो अप्सस् रूपवाली अप्सरा होती है अर्थात् रूपवती अथवा वह रूप इसने ग्रहण किया है अथवा वह अप्सस् इसको दिया गया है, उस उर्वशी के दर्शन से मित्र और वरुण का रेतस् गिरा उसके कहने वाली यह ऋचा है।

हमने वेद और निरुक्त से उर्वशी का अप्सरा होना सिद्ध कर दिया। अब इस देवता उर्वशी के द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति वेद से दिखलाते हैं।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो—
र्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन,
विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥

इसका निरुक्त यह है—

अप्यसि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन। द्रप्सः सम्भृतप्सानीयो भवति। सर्वे देवाः पुष्करे त्वाऽधारयन्त। पुष्कर-

न्तरिक्षं पोषति भूतानि । उदकं पुष्करं पूजाकरं पूजयितव्यम् । इदमपीतरत्पुष्करमेतस्मादेव पुष्करं वपुष्करं वा पुष्पं पुष्यतेः । वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा ॥

नि० नैगमकां० अ० ५ पा० ३

हे वसिष्ठ ! तू मित्रावरुण का पुत्र है । ब्रह्मन् ! उर्वशी से मन से तू उत्पन्न हुआ मानस पुत्र है । मित्रावरुण का जब वीर्य गिरा तब सारे देवताओं ने दिव्य ब्रह्म से तुझको पुष्कर जल वा अन्तरिक्ष में धारण किया और तू है, मित्रावरुण का पुत्र हे वसिष्ठ ! हे ब्रह्मन् ! उर्वशी से मन से तू उत्पन्न हुआ है । मेरे ब्रह्म को दिव्य ब्रह्म से पुष्ट हुआ है, भक्षण योग्य स्त्री के लिये अपने शरीर में धारने योग्य होता है । सारे देवताओं ने पुष्कर में तुझको धारण किया । पुष्कर अन्तरिक्ष है, पुष्ट करता है भूतों को वायु वृष्टि आदि के देने से । जल पुष्कर होता है । पूजा का साधन है अथवा पूजने योग्य होता है । जो दूसरा पुष्कर कमल है वह भी इसी से है पूजा का साधन वा पूजने योग्य होता है अथवा शरीर को सजाने वाला है । कमल के प्रसंग से पुष्प का निर्वचन करते हैं । वयुन है कान्ति वा प्रज्ञा ।

पुराण ने वसिष्ठ के द्वितीय जन्म को सूक्ष्मरूप में लिखा था वेद ने विस्तार रूप में लिखा है । इस जन्म में वसिष्ठ द्युस्थानीय देवता उर्वशी से मित्रावरुण के द्वारा मानसिक उत्पत्ति है । उर्वशी को वेद ने अप्सरा लिखा है इस अप्सरा शब्द से धोके में आकर वसिष्ठ को गणिकापुत्र बतला दिया गया, वास्तव में तो यहाँ पर मित्रावरुण का मानसिक पुत्र वसिष्ठ उर्वशी देवता में उत्पन्न हुआ है । प्रथम जन्म में वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र है, द्वितीय जन्म में उर्वशी देवता से इसकी मानसिक उत्पत्ति है, तीसरा जन्म वसिष्ठ का किसी भी श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास में लिखा ही नहीं फिर हम वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानें तो कैसे मानें ?

वाल्मीकि ।

वाल्मीकि को भील का लड़का कहना जान बूझ कर लोगों की आंख में धूल झोंकना है । ब्रह्मा का पुत्र महर्षि प्रचेता और प्रचेता का पुत्र वाल्मीकि । ब्रह्मा का पुत्र प्रचेता है इस विषय में मनुस्मृति का प्रमाण हम वसिष्ठ के प्रसंग में दे चुके हैं । अब प्रचेता का पुत्र वाल्मीकि है इस विषय में वाल्मीकीय रामायण का अन्तिम श्लोक लिखता है कि—

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् ।
कृतवान्प्रचेतसः पुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमोदत ॥

यह आख्यान आयु का बढ़ाने वाला भविष्य और उत्तर सहित प्रचेता के पुत्र बाल्मीकि ने निर्माण किया और ब्रह्मा ने इसका अनुमोदन किया है।

कौन कह सकता है कि बाल्मीकि भील का लड़का है। वर्णव्यवस्था, गुण, कर्म, स्वभाव से न वेद मानता है, न धर्मशास्त्र। इतिहास, पुराण में भी ऐसे उदाहरण नहीं हैं जिनसे किसी शूद्र या वैश्य का ब्राह्मण होना सिद्ध होता हो। इन सब बातों को जान कर भी जो गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाई जाती है उस का अभिप्राय यह है कि हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था नष्ट हो और यह जाति जल्दी से जल्दी ईसाई धर्म में प्रवेश करे।

विवाह काल।

विवाह गर्भाधानादि सोलह संस्कारों के अन्तर्गत है। सोलह संस्कारों का वर्णन वेद में नहीं है वरन् धर्मशास्त्रों में इनका विधान है। जब समस्त सोलह संस्कारों का विधान स्मार्त है तो विवाह भी स्मृति प्रतिपाद्य ही हुआ। धर्मशास्त्रों में कन्याओं का विवाह काल जो वर्णन किया है उसको हम नीचे उद्धृत करते हैं। देखिये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥१॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥२॥

अंगिरा स्मृति।

आठ वर्ष की कन्या की गौरी और नौ वर्ष की रोहिणी तथा दश वर्ष की कन्या की कन्या संज्ञा होती है, दस वर्ष के पश्चात् कन्या रजोधर्म वाली होती है। माता और पिता तथा जेठा भाई यदि रजस्वला होने तक कन्या का विवाह न करें तो ये तीनों नर्क को जाते हैं।

आगे पढ़िये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥
प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ॥७॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥८॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः सविप्रो वृषलीपतिः ॥९॥

पाराशर स्मृति अ० ७।

छठा और आठवां ये दो श्लोक उसी बात को कह रहे हैं जिस बातको अंगिरा स्मृति ने कहा है। सातवां श्लोक यह विशेष कहता है कि जो बारहवें वर्ष में कन्या का विवाह नहीं करता उस कन्या के जो मास २ में ऋतुधर्म द्वारा शोणित प्रस्रवित होता है उस शोणित को उसके पितर स्वयं पीते हैं। नवम श्लोक में महर्षि पाराशर ने यह खोल कर कह दिया कि बारह वर्ष की कन्या होने के पश्चात् जो वर ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है वह मद मोहित है उसके साथमें कभी बोलना न चाहिये, उसको पंक्ति में भोजन न खिलाना चाहिये, उसको वृषलीपति समझो।

और पढ़िये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥६७॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

संवर्त स्मृति।

६६। ६७ ये दो श्लोक तो वे ही हैं जो अंगिरा ने लिखे हैं। ६८ के श्लोक में महर्षि संवर्त कहते हैं कि कन्या को ऋतुमती होने से पहिले विवाह दे और कन्या के अष्टम वर्ष में विवाह करना बहुत ही श्रेष्ठ है।

आगे अवलोकन कीजिये—

यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना।
तावन्त्यो भ्रूणहत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम् ॥

नारद स्मृति।

पति के बिना कन्या की जितनी ऋतुयें बीतती हैं उतनी ही भ्रूणहत्या का पाप उसको लगता है जो ऋतुकाल से पहिले कन्या का विवाह नहीं करता। अब निर्णय सिन्धु के लेख को भी पढ़िये—

कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥
तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नतुमती भवेत्।

यमस्मृति।

ये श्लोक संगृहीत निर्णय सिन्धु ग्रन्थ ने यमस्मृति के उद्धृत किये हैं। इनका अर्थ है कि बारह वर्ष तक बिना व्याही हुई कन्या के घर में रहने से उस कन्या के माता पिता को ब्रह्महत्या लगती है इस कारण ऋतुमती होने से पहिले ही कन्या का विवाह दे।

और भी पढ़िये—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥९४॥

मनु० अ० ९

तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहर कन्या के साथ व्याह करे अथवा चौबीसवर्ष का पुरुष आठवर्ष की कन्या को विवाहे और शीघ्रता करने वाला गृहस्थ धर्म में दुःख पाता है।

जो द्विज चौबीस वर्ष की अवस्था में वेदाध्ययन छोड़े उसको आठवर्ष की कन्या के साथ विवाह करना योग्य है क्योंकि वेदाध्ययन छोड़ने से दूसरे दिवस ही अग्निहोत्र लेना पड़ेगा और अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं इस कारण आठ वर्ष की कन्या से विवाह होना शास्त्र ने लिखा है इस बात को मनु ने भी स्पष्ट कर दिया है। तीस वर्ष की अवस्था में जो वेदाध्ययन छोड़े वह बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे शास्त्र कन्याओं का विवाह थोड़ी उम्र में और पुरुषों का विवाह अधिक उम्र में लिखता है। शास्त्र ने यह भी लिखा कि स्त्रियों का विवाह यदि अधिक उम्र में किया जाय तो रजस्वला होने के पहिले ही, इसके बाद शास्त्र सम्मत नहीं। भारतवर्ष में गर्मी सर्दी की अधिकता और न्यूनता से देश भेदानुसार कन्या रजस्वला शीघ्र और देर में होती हैं अतः समस्त देशों में रजस्वला होने से पहिले ही विवाह की विधि है। विवाह अन्य जातियों की भांति स्त्री सुख का

साधन नहीं क्यों कि धर्मशास्त्रों ने इसको संस्कार और भुक्ति मुक्ति का दाता माना है। पुरुष के उपनयन संस्कार को अष्टम वर्ष से आरम्भ होकर द्वादश वर्ष तक समय रहता है। स्त्रियों के उपनयन संस्कार है नहीं, किन्तु उपनयन संस्कार के स्थान में विवाह संस्कार है इस कारण स्त्रियों के विवाह का समय पुरुषों के उपनयन के होने से मिलता जुलता रक्खा है और यही शास्त्रों का अभिप्राय भी है किन्तु समय के परिवर्तन से आज इस अवस्था के विवाह को अयोग्य समझा जाता है और यह कहा जाता है कि ऐसे विवाह की सन्तान कमजोर होती है। शास्त्रकारों ने यह काल विवाह काल नियत किया है, यह सहवास काल नहीं। सहवास काल स्त्री की सोलह वर्ष की अवस्था से पाया जाता है। इतिहास में सोलह वर्ष से पहिले भी गर्भस्थिति हुई है ऐसा भी लेख मिलता है। इस विषय में अभिमन्यु उत्तरा प्रभृति के अनेक उदाहरण हैं फिर हम किस तरह से मानलें कि सन्तान कमजोर होती है ? परीक्षितादि थोड़ी अवस्था के रहने पर भी जो गर्भ में आये वे कमजोर नहीं थे। इससे भिन्न शास्त्रदृष्टि से सहवास में कन्या की उम्र सोलह वर्ष की ली है और पुरुष की पच्चीस वर्ष के ऊपर, फिर कमजोर सन्तान का प्रश्न ही नहीं रहता किन्तु आज भारतवासी इंगलैन्ड की पद्धति से भारतवर्ष की पद्धति को मिला देते हैं अर्थात् विवाह काल को ही सहवासकाल समझ लेते हैं इसीसे यह छोटी उम्र में गर्भाधान का सवाल खड़ा हो जाता है, यदि इसका अच्छी तरह विचार किया जावे और विवाह के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य तथा द्विरागमन की पद्धति को लोक में प्रचलित रक्खा जावे तो फिर यह प्रश्न ही उड़ जाता है। जो लोग इसको नहीं समझते वे हिन्दुओं के विवाह को बुरी दृष्टि से देखते हैं।

सत्यार्थप्रकाश ।

(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है (उत्तर) सोलहवें वर्ष से ले के चौवीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है। इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे ? तो निकृष्ट, अठारह बीस की स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है। जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है क्योंकि

ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है। (प्रश्न)

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैवच।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोध में लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्या को आठवें वर्ष विवाह में गौरी नवमे वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होती है ॥ १ ॥ जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं। (उत्तर)

❀ ब्रह्मोवाच ❀

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणे यन्तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है। अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे उतने समय को क्षण कहते हैं। जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला होजाती है ॥१॥ उस रजस्वला को देख कर उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरक को जाते हैं ॥ २ ॥

(प्रश्न) ये श्लोक प्रमाण नहीं (उत्तर) क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्मा जी के श्लोक प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते (प्रश्न) वाह वाह पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते (उत्तर) वाह जी वाह क्या तुम ब्रह्मा जी का प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथ से ब्रह्मा जी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्मा जी के श्लोकों को नहीं मानते तो हमभी पराशर काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते (प्रश्न) तुम्हारे श्लोक असम्भव होने से प्रमाण नहीं क्योंकि सहस्र क्षण जन्म समय ही में

बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता (उत्तर) जो हमारे श्लोक असम्भव हैं तो तुम्हारे भी असम्भव हैं क्योंकि आठ, नौ और दसवें वर्ष में भी विवाह करना निष्फल है क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं। जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असम्भव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है। यदि गौरी कन्या न हो किन्तु काली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वासुदेव की स्त्री थी उसको तुम पौराणिक लोग मातृ समान मानते हो। जब कन्यामात्र में गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे संभव और धर्मयुक्त हो सकता है। इसलिये तुम्हारे और हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "ब्रह्मोवाच" करके श्लोक बना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं इसलिये इन सबका प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो। देखो मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

मनु० ९। ९०

कन्या रजस्वला हुये पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुये पश्चात् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं"।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

मनु० ९। ८९

चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है।

सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ७७ से ८० तक

विवेचन।

स्वामी जी वेदोक्त पद्धति के मिटाने और हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिये

विवाह काल को इस प्रकार नियत करते हैं कि जो पद्धति आजकल योरुप आदि देशों में प्रचलित है और फिर उस पद्धति को वैदिक सिद्ध करते हैं यह जाल है कि आप लिखते हैं कि सोलह वर्ष के ऊपर कन्या का विवाह होना चाहिये इसका आधार सुश्रुत है। सुश्रुत लिखता है कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ४७ ॥
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ४८ ॥

सुश्रुत शरीरस्थान अ० १०

सोलह वर्ष से न्यून वय वाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण-काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता। ४७। अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भ स्थापन न करे। ४८।

स्वामी जी की हर बात में चालबाजी रहती है। इन श्लोकों में भी चालबा-जियों का आश्रय लिया गया है: (१) जब स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में यह लिख आये हैं कि वेदानुकूल होने से सुश्रुत प्रमाण है तो फिर अब इन श्लोकों के लिये वेदानुकूलता का झगड़ा क्यों उड़ा दिया गया? वेद के किसी मंत्र में भी यह नहीं लिखा कि गर्भाधान के समय पुरुष की आयु पच्चीस वर्ष स्त्री की आयु सोलह वर्ष की हो ? (२) जब वेद इस विषय में कुछ भी नहीं लिखता फिर ये श्लोक वेदानुकूल कैसे ? "ऊनषोडशवर्षायाम्" इस श्लोक की जगह अनेक पुस्तकों में "ऊनद्वादशव-र्षायाम्" पाठ है उस पाठ को स्वामी जी ने क्यों नहीं लिया ? केवल इस लिये नहीं लिया कि जो हम "ऊनद्वादशवर्षायाम्" पाठ ले लेंगे तो हमारे प्राण प्यारे शिक्षित आर्यसमाजी ईसाई न बन सकेंगे इस कारण ईसाइयों में जैसा रिवाज है उसके मुताबिक पाठ ले लिया। (३) इन श्लोकों में विवाहकाल कब कहा है ? इनमें तो गर्भाधान काल है ? गर्भाधान काल को विवाहकाल उन्हीं मनुष्यों को समझा सकते हैं जो सर्वांश में नरपशु हों ? कोई लिखा पढ़ा मनुष्य गर्भाधान काल को विवाहकाल नहीं समझेगा ? (४) स्वा० दयानन्द जी ने सुश्रुत में कहे हुये विवाहकाल को

चोरी की यह प्रमाण संसार के सामने आने नहीं दिया इसके आने से स्वा० दयानन्द जी के जाल का भेद खुलता था। पाठ यह है—

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षी पत्नीमावहेत्। सुश्रुत

विद्या सम्पन्न पुरुष को जिसकी अवस्था २५ वर्ष की हो उसको बारह वर्ष वाली कन्या विवाहे।

यहां पर स्वामी जीने सुश्रुत के विवाहकाल को छिपाया और गर्भाधान काल को विवाहकाल बनाया इस प्रकार बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों को समझा दिया कि सोलह वर्ष से पहिले कन्या का विवाह करना वेद विरुद्ध है। ये विचारे वेद शास्त्र के शत्रु समझ बैठे कि ठीक है, यही वेद है और हम कन्या बड़ी होने पर ही विवाह करेंगे।

स्वामी जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य धारण कर योग्य होकर विवाह करे, यह बात ठीक ही है। शास्त्र ने कब लिखा है कि कन्या का विवाह अयोग्य से करो या लड़का ब्रह्मचारी न बने? आप "अष्टवर्षाभवेद्गौरी" प्रभृति श्लोकों की मिट्टी पलीद करते हुये लिखते हैं कि "एकक्षणा भवेद्गौरी" ठीक ही है, वेद की मिट्टी कूटना स्वामी जी और आर्यसमाजियों का परम धर्म है। यह गौरी संज्ञा केवल शीघ्र बोध ही नहीं करता वरन् स्मृतियां कहती हैं? केवल स्मृतियां ही नहीं कहतीं किन्तु ऋग्वेद लिखता है कि—

सोमो गौरी अधिश्रितः। ऋग्वेद

सोम गौरी का उपभोग करता है।

वेद का अभिप्राय यह है कि पहिले कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य होता है फिर गन्धर्व का गन्धर्व के पश्चात् अग्नि का, बादमें कन्या का विवाह होकर वह कन्या मनुष्यके आधिपत्यमें चली जाती है। इस विषयको 'सोमोददद् गन्धर्वाय' इस मन्त्र में कहा है। जिस समय कन्या की गौरी संज्ञा होती है उस समय कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है अब मानना पड़ेगा कि कन्या की गौरी संज्ञा वेद ने कही है। गौरी संज्ञा की मिट्टी पीटने के बहाने से वेद की मिट्टी पीट देना यह वेद के परम शत्रु दयानन्द और आर्यसमाजियों का जो मुख्य धर्म है वह केवल इसलिये है कि हिन्दू लोग वेद को कुचल कर किसी प्रकार ईसाई बन जावें।

सोलह वर्ष में कन्या का विवाह हो इसमें स्वामी दयानन्द जी "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत्" का प्रमाण देते हैं, जरा उसका भी चित्रपट देखिये। मनु जी लिखते हैं कि:—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवेनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

मनु० अ० ६

कुलाचार में उत्तम स्वरूपवान् समान जाति के वर को विवाह के योग्य न हुई आठ वर्ष की कन्या भी विवाह दे । ८८ । कन्या मरणपर्यन्त घरमें बिना विवाही चाहे रहे किन्तु गुणहीन पुरुष से विवाह कन्या का न करे । ८९ ।

मनुने लिखा है कि कन्या का विवाह पिता करे ।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥ १५१ ॥

मनु० अ० ५

जिसे इसको पिता दें वा पिता की अनुमति से भ्राता दे दे उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहे और मरने पर श्राद्धादि करे, कुल के वशीभूत रहे और मर्यादा को न लंघन करे ।

"उत्कृष्टाय" इस श्लोक में कन्या का विवाह करना कन्या के आधीन नहीं किन्तु अन्य के आधीन लिखा गया है । इसी प्रकार "काममामरणात्तिष्ठेत्" इस श्लोक में भी अयोग्य पुरुष के साथ कन्या का विवाह न करना सिद्ध करता है कि कन्या का विवाह करना किसी अन्य के आधीन है "यस्मैदद्यात्" मनुके इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि कन्या का विवाह कन्या का पिता या भ्राता करे । यदि ये दोनों ही कन्याका विवाह न करें तो फिर कन्या क्या करे ? इसके ऊपर लिखा है कि-

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्तुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

मनु० अ० ६

कन्या ऋतुकाल होने पर तीन वर्ष प्रतीक्षा करे कि मेरा कोई विवाह करता है या नहीं ? जब इन तीन वर्षों में भी कोई विवाह न करे तब कन्या अपने सदृश योग्य पुरुष को अपने आप वरण कर ले ।

मनु का अभिप्राय यह है कि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक कन्या का

विवाह उसके पिता या भाई आदि अवश्य कर दें। यदि वे न करें तो ऋतुकाल होने के पश्चात् तीन वर्ष तक कन्या प्रतीक्षा करे पश्चात् किसीके साथ विवाह कर ले। मनु के इस अभिप्राय को नष्ट करके ईसाई बनाने के लिये "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" इसके आश्रय से जो सोलह वर्ष की उम्र में समस्त कन्याओं का विवाह लिख दिया यहाँ पर स्वामी जी ने संसार को बेवकूफ बनानेका साहस किया है निःसंदेह स्वामी जी का यह कार्य घृणित है।

(१) जब "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" मनु का श्लोक वेदानुकूल नहीं है तब इसके प्रमाण मानने का दयानन्द और आर्य्यसमाज को क्या हक़ है? (२) मनु जी ने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" श्लोक में जो २४ वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या और ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से विवाह करे लिखा है इसको स्वा० दयानन्द जी ने क्यों छिपाया? केवल इसलिये कि जब तक यह शास्त्र पद्धति न उड़ेगी तब तक आर्य्यसमाजी ईसाई न बन सकेंगे? स्वामी दयानन्द जी के जितने भी धर्म निर्णय के लेख हैं उन सब में चालबाजी धोखा, वेदों के गले पर छुरा चलाना ये तीन काम प्रबल हैं। इन तीन को छोड़ कर स्वामी जी के लेख में और कुछ सार ही नहीं? बिना पढ़े मनुष्य इनके जाल में या चालबाजी में फंसकर स्वा० दयानन्द के पुष्ट किये हुये ईसाई धर्म को वैदिक धर्म मानलेते हैं किन्तु संस्कृत के ज्ञाता स्वा० दयानन्दके लेख को धर्मनाशक, वेदों पर कुठाराघात करने वाला समझ कर उससे घृणा करते हैं।

आर्य्यसमाज का मृत्यु।

संसार में यह देखा गया है कि कोई भी अन्य पुरुष किसी की उन्नति और अवनति नहीं कर सकता वरन् मनुष्य के कर्म दुःख सुख के कारण होते हैं इसी प्रकार मुसलमान, ईसाई, जैनी और सनातनधर्मी आर्य्यसमाज का बाल भी बांका नहीं कर सके किन्तु आर्य्यसमाजियों ने ही ऐसे आचरण किये कि जिससे आर्य्यसमाज का सर्वांश में मृत्यु हो गया।

आर्य्यसमाज के संसार में रहने के दो आधार थे। एक स्वामी दयानन्द जी का लेख और दूसरे वेदों के प्रमाण। आर्य्यसमाजियों ने स्वा० दयानन्द जी के लेखों को झूठ समझा, उनके मानने से जी ही नहीं चुराया वरन् उन लेखों को देख कर स्वा० दयानन्द जी के ऊपर कटु शब्दों की वर्षा करने लगे। इसी प्रकार वेदों के अर्थ बदले, वेद मंत्रों को दूर फेंक कर यूरोप की पद्धति को वेद समझ लिया, वेदों की मसखरी उड़ाई, बनावटी दलीलों से वेदों का कचूमर निकाल वेद के वे घोर शत्रु बने कि जैसे आज तक वेद के शत्रु संसार में हुये ही नहीं। पूर्वोक्त दोनों आधारों का सफाया हो गया और अब आर्य्यसमाज के नवीन सिद्धान्त दो ही रह गये। (१) जो ईसाई मानते हों वह आर्य्यसमाजियों का वैदिक धर्म (२) जितने मनुष्य उतने ही उन के मत। इस पर भी स्थायी नहीं ? इसमें भी बारह बजे आर्य-समाजियों का वैदिक धर्म कुछ और और पाँच बजे कुछ और, गिरगिट की भाँति जल्दी २ रंग बदल कर आर्य्यसमाजी मजहब हीन हो गये बस इन्हीं दो बातों को हम यहां दिखलावेंगे कि (१) तो आर्य्यसमाजी दयानन्द के लेख को बिल्कुल नहीं मानते (२) वेदों की मिट्टी पीटते हैं।

दयानन्द।

स्वामी जी ने अपने लेख में ईश्वरावतार, मूर्तिपूजा, विधवा विवाह निषेध, जन्म से वर्णव्यवस्था, फलित ज्योतिष् की प्रामाणिकता, मनुष्यों से भिन्न देवजाति, इतिहास-पुराण इनकी वैदिकता मानी है। लम्बे चौड़े लेख लिख कर इनको वैदिक सिद्ध किया है आप यदि यह जानना चाहते हैं तो इसी ग्रन्थ का आरंभिक प्रकरण "वैदिकता" पढ़ें। यह संभव है कि स्वा० दयानन्द जी के इन लेखों को अन्य धर्म

वाला भले ही प्रामाणिक मानलें किन्तु वे आर्य्यसमाजी कि जो स्वामी जी को रात दिन श्री १०८ स्वामी जी महाराज, परिव्राजक, वेदोद्धारक, महर्षि कहते हैं वे ही स्वा० दयानन्द के इन लेखों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, मौका पड़ने पर इन लेखों के ऊपर स्वामी जी को गालियाँ देने लगते हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि इन्हीं के मान्य धर्म पुस्तकों में जो लेख लिखे हुये हैं उनको यह विल्कुल न मानें ? और उनके लिखने वाले अपने पूज्य महर्षि को गालियाँ देते हुये उन लेखों को घृणा की दृष्टि से देखें ? क्या हजरत मोहम्मद के लेख को घृणा की दृष्टि से देखने वाला कोई मनुष्य मुसलमान कहलाने का हक रखता है ? क्या ईसामसीह के लेख को असत्य कहलाने वाला कोई मनुष्य ईसाई बनने की डिगरी पा सकता है ? यदि ये दोनों ही मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकते तो फिर दयानन्द के लेखों को घृणा की दृष्टि से देखने वाले आर्य्यसमाजी किस प्रकार आर्य्यसमाजी कहला सकते हैं ?

शास्त्रार्थ के समय वैदिकता प्रकरण में आये हुये स्वा० दयानन्द जी के लेख जब पेश किये जाते हैं तब आर्य्यसमाजियों के छक्के छूट जाते हैं और वे जो उत्तर देते हैं उनको हम क्रम से लिखते हैं । देखिये—

सब से प्रथम इनका कथन होता है कि (१) स्वा० दयानन्द जी के लेख का यह अभिप्राय नहीं ? जब इसके उत्तर में पूर्वा पर लेख पढ़ और स्वा० दयानन्द के अन्य लेख से पुष्टि कर दी जाती है कि नहीं नहीं स्वा० दयानन्द जी के लेख का यही अभिप्राय है तब इनकी चालबन्द हो जाती है और कहने लगते हैं (२) छापेखाने की गलती से ऐसा छप गया ? जब अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया जाता है कि यहां छापेखाने की गलती नहीं किन्तु स्वामी जी इस सिद्धान्त को वैदिक मानते हैं और इसके वैदिक होने में अमुक अमुक पुष्टियां मिलती हैं तब विवश होकर कहते हैं कि (३) स्वामीजी के मरने पर किसी धूर्तने यह पाठ उनके लिखे सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में मिला दिया ? जब दयानन्द के ग्रन्थों की कई आवृत्तियां दिखला कर यह सिद्ध किया जाता है कि यह लेख किसीने नहीं मिलाया किन्तु स्वा० दयानन्द जी की लेखनी का लिखा है तब इस चालबाजी कबड्डी को भूल जाते हैं और कहने लगते हैं कि (४) स्वामी जी भंग पीते थे और उसके नशे में कुछ का कुछ भी लिख देते थे ? यह बात हनुमानप्रसाद स्वतंत्र आर्योपदेशक शिवली ने कई शास्त्रार्थों में कही । जब इसके ऊपर शर्म दिलाई जाती है कि तुम महर्षि को इस प्रकार बदनाम करते हो और इतने पर भी लज्जित नहीं होते ? तब कहने लगते हैं कि (५) स्वामी दयानन्द जी भी एक मनुष्य थे भूल गये ? मनुष्य का काम भूलना है ही ? तब कहा

जाता है कि तुम बेहोशी की बातें मत करो, स्वा० जी को आर्य्यसमाज वेदज्ञाता, महर्षि और आप्त मानती है। आप्त के माने ही ये हैं कि जिनका एक भी लेख असत्य न हो। आप्त के लेख को मिथ्या बतलाने वाले साधारण मनुष्य तुम उनकी गलती पकड़ने का क्या स्वत्व रखते हो।? जब यहां पर इनकी अक्ल कूच कर जाती है तब कहने लगते हैं कि (६) तुम प्रकरण विरुद्ध दयानन्द जी का जिक्र लाते हो? आज शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा का है, मूर्ति पूजा वेद से सिद्ध करो? इसके उत्तर में जब हम यह कह देते हैं कि मूर्तिपूजा स्वामी जी ने वेद से सिद्ध कर अपने ग्रन्थों में लिखी है फिर हम क्यों सिद्ध करें? तुम्हारे ग्रन्थ ही तुम्हारे आगे क्यों न रखदें? यहां पर जब इनका मस्तिष्क जवाब दे जाता है तब कहते हैं कि (७) दयानन्द से और आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं? आर्यसमाज न दयानन्द को माने और न दयानन्द के पिता को, आर्यसमाज तो वेद को मानती है? ये बातें रामचन्द्र सुनार देहलवी और बुद्धिदेव पंजाबी कई बार कह चुके। जब इसके उत्तर में कहा जाता है कि तुम पिण्ड छुड़ाने के लिये ये बातें कहते हो। यदि आर्यसमाज दयानन्द को नहीं मानती तो दयानन्द की शताब्दि में लक्षों रुपया क्यों खर्च किया? जाने दो हमें अधिक बहस नहीं करनी, समस्त आर्य प्रतिनिधियों से यह ऐलान निकलवा दो कि हम दयानन्द के लेख को नहीं मानते—बस फिर हम दयानन्द के लेख को प्रमाण में न देंगे? यहाँ पर जब आर्यसमाजियों को कुछ नहीं सूझता तब कहने लगते हैं कि (८) हम दयानन्द की बेवकूफी की बात थोड़े ही मान लेंगे? चाहे हमारी गरदन पर छुरी चलजाय वह हमको मंजूर है किन्तु दयानन्द के इन गपोड़ों को हम हरगिज २ नहीं मानेंगे, यह बात कोंच के प्रश्नोत्तर में वैश्य रामदीन पहारिया ने तीन बार कही थी जो अब ब्रह्मानन्द नामक संन्यासी बने हुये हैं। जब यहां पर भी युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि स्वामी जी की बात आर्यसमाज को माननी होगी? तब आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द जी को गालियां देने लगते हैं। शिकारपुर सिन्ध के शास्त्रार्थ में शास्त्रार्थ करते हुये मुल्तान निवासी लोकनाथ आर्यसमाजी ने दो बार स्वामी जी को गालियां दी थीं जिनको हम लिख नहीं सकते? इसी प्रकार भूतपूर्व सेक्रेटरी आर्यसमाज कानपुर पं० सूर्यप्रसाद जी ने यह बात कही थी कि आज कल हम दयानन्द की मूर्खता पर उनकी जान को रोते हैं उनको यह क्या सूझा जो विधवाओं के विवाह का खण्डन कर गये? भाव यह है कि आर्यसमाजी चालाकी चलेंगे, फांसी चढ़ने को तैयार होंगे, स्वामी जी को गालियाँ देने लगेंगे, इन सब अयोग्य कृत्यों को तो ये धर्म समझते है किन्तु स्वा०

दयानन्द जी के लेख को मानना आर्यसमाजियों की दृष्टि में घोर महापाप है। जो मनुष्य अपने महर्षि की इस प्रकार मिट्टी पलीद करे उसको मनुष्य और आर्यसमाजी कहना घोर पाप नहीं तो और क्या है? दयानन्द के ऊपर आर्यसमाजियों की कितनी श्रद्धा है इसको पाठक अपने मन में विचार लें।

दयानन्द की आज्ञायें

स्वामी जी ने बार बार वेदों का अवलोकन कर उनसे आर्यसमाजियों के लिये कुछ नये नये सिद्धान्त निकाले हैं और वे सब सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में लिख दिये हैं। आर्यसमाजी स्वामी जी के लेखों को वेदानुकूल तो बतलाते हैं किन्तु स्वामी जी ने जिन वैदिक कृत्यों का आर्यसमाजियों को उपदेश किया है उनको नहीं करते। हाँ–शास्त्रानुसार छिड़ जाने पर उनको चालबाजी से वैदिक सिद्ध करने का साहस तो ठानते हैं किन्तु जब आचरण या मानने का काम पड़ता है तब स्वामी जी के बतलाये वैदिक सिद्धान्तों को ढपोलशंखी सिद्धान्त या पोप जाल अथवा मूर्खों के विचार समझ कर उनको कर्तव्य में नहीं लाते। हम कुछ उदाहरण इस विषय के पाठकों के आगे रखते हैं पढ़ने की कृपा करें।

नियोग।

स्वामी दयानन्द जी ने द्विजातियों की स्त्रियों के लिये नियोग करना धर्म लिखा है। इस नियोग को हमने इस ग्रन्थ के प्रमाण पंचक प्रकरण नं० २४ से ३० तक में दिखलाया है। आर्यसमाजी इस नियोग को वैदिक मानते हैं और वैदिक सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ भी करते हैं किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने चार प्रकार के नियोगों में से एक भी नियोग अपनी किसी बहू–बेटी को नहीं करवाया, अब आपही बतलाइये आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द जी के भक्त हैं या घोर शत्रु? सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी के द्वारा लिखे हुये नियोग जब आर्यसमाजी न करेंगे तो क्या ईसाई मुसलमान करेंगे? जब स्वामी जी ने नियोग को धर्म लिखा है तो धर्म से दूर भागना क्या आर्यसमाजियों को स्वार्थी सिद्ध नहीं करता।

दूध पिलाना।

स्वामी जी ने गहरी दृष्टि से जब वेद को पढ़ा तब उसमें यह निकला कि बच्चे को ६ रोज माता दूध पिलावे और फिर धायी। इसको हमने प्रमाण पंचक के

३८ नं में दिखलाया है। आर्यसमाजी कहते हैं कि स्वामी जी का यह लेख वैदिक है किन्तु कर्तव्यता के समय कोई भी आर्यसमाजी इसको आचरण में नहीं लाता, सभी आर्यसमाजियों के यहां बच्चे को माता दूध पिलाती है। जब स्वामी जी का लेख वैदिक था तो धायी का दूध पिलाना आर्यसमाजियों ने क्यों छोड़ा? समझ गये कि स्वामी जी गपोड़े हांकते हैं।

पुत्र बदलना।

स्वामी जी ने लिखा है कि यदि शूद्र का लड़का विद्वान होजावे तो राजसभा उस लड़के को ब्राह्मण को दे दे और ब्राह्मण का लड़का यदि मूर्ख रहे तो उसको किसी शूद्र को दे दे उसको हमने प्रमाणपंचक के नं० ३९ में लिखा है आर्यसमाजी इसको वैदिक कहते हैं, इसके ऊपर शास्त्रार्थ भी करते हैं किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने पुत्र नहीं बदला? किसी भी आर्यसमाजी ब्राह्मण ने पढ़े हुये भंगी चमार के लड़के को अपना पुत्र नहीं बनाया और किसी भी महाशय ने अपने मूर्ख पुत्र को भंगी को नहीं दिया? स्वामी के लिखे हुये पुत्र बदलने के सिद्धान्त पर आर्यसमाजियों की कितनी श्रद्धा है इसको पाठक समझें।

फोटू और जीवन चरित्र।

स्वा० दयानन्द जी ने वर वधू के विवाह को फोटू और उनके जीवन चरित्र के आधार पर करना लिखा है, हमने इसको प्रमाण पंचक के नं ४० में दिखलाया है। किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने अपनी कन्या तथा लड़के का सच्चा जीवन चरित्र तैयार नहीं किया और न उस जीवन चरित्र और फोटू के जरिये से अपनी कन्या तथा पुत्र का विवाह ही किया फिर स्वा० दयानन्द जी के लिखे इस वैदिक विवाह को क्या गधे और कुत्ते आचरण में लावेंगे? इस लेख को आर्यसमाजियों ने ऋषिलिखित वैदिक होने पर भी क्यों छोड़ दिया? इस पर पाठक विचार करें?

शिखाकृन्तन।

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि गर्म देश में मूंछ दाढ़ी और शिखा इन तीनों को ही कटवादे, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं ४१ में लिखा है किन्तु बीकानेर, जोधपुर, शिधि, सिन्ध प्रभृति अनेक गर्म देशों में आर्यसमाजी रहते हैं, वे भी शिखा-मूंछ नहीं कटवाते यह क्या? महर्षि लिखित लेख धर्म से आर्यसमाजी नौ कोस दूर क्यों भागते हैं? क्या स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाश में लिखे समस्त वैदिक धर्म आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में घृणित हैं?

विवाहकाल ।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि सोलहवें वर्ष से लेकर चौवीसवें वर्ष तक कन्या का और पचीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह उत्तम विवाह है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४२ में लिखा है। आर्य्यसमाजियों में से क्या किसी आर्यसमाजी ने अपने पुत्र का विवाह अड़तालीसवें वर्ष में किया है? हमारी समझ में एक भी आर्य्यसमाजी भूतल पर ऐसा न मिलेगा कि जिसके माता पिता ने उसका विवाह अड़तालीसवें वर्ष में किया हो। अड़तालीसवें वर्ष के विवाह को जब आर्यसमाजी नहीं मानते तो क्या उनकी दृष्टि में यह लेख पागल-पन का लेख नहीं है।

श्राद्धतर्पण ।

स्वा० दयानन्द जी ने जीवित माता पिता का श्राद्ध तर्पण करना वैदिक बतलाया है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४३ में लिखा है। माता पिता को भोजन तो आर्यसमाजी देते हैं किन्तु 'ये निषाता:" इत्यादि मन्त्रों से माता पिता को बुलाकर तथा आसन पर बिठला, उनके चरणों में गिर उनके भोजन के चारों तरफ सुलगती हुई लकड़ी फेर भोजन पर कच्चे तिल चावल चढ़ा कर नहीं देते और न उनसे अपनी स्त्री के गर्भ धारण करवाने की प्रार्थना ही करते हैं श्राद्ध की समस्त विधियों द्वारा किसी भी आर्यसमाजी ने आज तक अपने माता पिता का श्राद्ध नहीं किया। क्या आर्यसमाजियों की दृष्टि में स्वामी दयानन्द जी तथा वेद दोनों झूठे नहीं हैं?

विवाह ।

स्वामी दयानन्द जी ने विवाह लड़का लड़की के आधीन रक्खा है इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४४ में लिखा है। क्या एक भी आर्यसमाजी संसार में ऐसा है जिसने अपनी कन्या को पति के ढूंढने की आज्ञा दे दी हो। यदि नहीं दी और सभी कन्याओं का विवाह उनके माता पिता ही करते हैं तो क्या यह मानना होगा कि स्वामी के लिखे इस वैदिक धर्म का पालन यूरोप वाले करेंगे?

सालम मिश्री का नुसखा ।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि भोग के अन्त में सोंठ, केशर, असगंध, छोटी इलायची और सालममिश्री दूध में डाल के और गर्म जल से स्नान करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठंडा दूध है उसको यथा रुचि दोनों पीकर अलग अलग अपनी

अपनी शय्या में शयन करें। इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४८ में दिखलाया है। क्या सभी आर्यसमाजी स्वामी जी के कहे हुये इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान करते हैं? नहीं करते तो स्वामी जी के बतलाये कोकशास्त्रोक्त इस धर्म का पालन कौन करेगा?

वीर्याकर्षण—योनिसंकोचन।

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र, अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्त समय अपान वायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे पश्चात् दोनों शुद्ध जलसे स्नान करें, इसको हमने प्रमाण पंचकके नं०४६ में दिखलाया है, क्या महर्षि की बतलाई इस वैदिक चाँद मारी का अनुष्ठान आर्यसमाजी करते हैं? यदि नहीं करते तो फिर इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान क्या यहूदी करेंगे?

आयु

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में मनुष्य की आयु चारसौ वर्ष की बतलाई है इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५० में दिखला दिया है। क्या किसी आर्यसमाजी ने स्वामी दयानन्दोक्त ब्रह्मचर्य विधि का अनुष्ठान कर चारसौ वर्ष की अपनी उम्र बनाई? या बनाने का उद्योग किया है? यदि नहीं किया तो क्या यह आर्यसमाजियों की दृष्टिमें सन्निपात ग्रस्त मनुष्यका लेख है? स्वामी जी कथित विधि द्वारा चारसौ वर्षकी आयु आर्यसमाजी न बनावेंगे तो क्या भेड़ बकरियां बनावेंगी? क्या स्वामी जी के इस लेख पर आर्यसमाजियों का विश्वास है।

ध्यान।

स्वामी जी अवतार की मूर्तियों के ध्यान से घबराते हैं, उन्होंने अपने प्यारे शिष्यों को लिख दिया है कि तुम कमर के हाड़ का ध्यान किया करो इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५२ में दिखलाया है। यह क्या बात है आज तक एक भी आर्यसमाजी ने कमर के हाड़ का ध्यान क्यों नहीं किया? स्वामी जी के इस लेख को जो आर्यसमाजी नहीं मानते तो क्या उनको स्वामी जी के लेख से घृणा है।

सुशीलता का उपदेश।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से लेकर

माता सुशीलता का उपदेश करे इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५३ में उद्धृत किया है। क्या किसी आर्यसमाजी की स्त्री ने गर्भाधान के दिन से अपने पुत्र को सुशीलता का उपदेश देना आरम्भ कर दिया ? यदि आर्यसमाजी इससे इन्कार करते हैं तो दयानन्दोक्त इस वैदिक धर्म का पालन क्या चील कौवे करेंगे ?

ईश्वर का मूर्खत्व।

स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व ये दो दोष माने हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ३२ में दिखलाया है। क्या आर्यसमाजी स्वामी जी की इस विवेचना को सत्य समझ कर ईश्वर को मूर्ख मानते हैं ? नहीं मानते तो क्यों ? क्या स्वा० दयानन्द जी के बतलाये हुये इस वैदिक विज्ञान को खूंख्वार जानवर मानेंगे ?

हवन फल।

स्वामी जी ने हवन से दुर्गन्धि की निवृत्ति मानी है इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५६ में लिखा है। क्या आर्य्यसमाजी इसको सत्यमान अपने २ शौचालयों में जहां दुर्गन्धि ज्यादा होती है हवन करने लग गये ? यदि आर्य्यसमाजी पाखानों में हवन करके उनकी दुर्गन्धि का नाश नहीं करते तो फिर संसार के पास क्या प्रमाण है जिससे वह समझले कि हवन से दुर्गन्धि दूर होती है यदि इस ऋषि कथित वैदिक लेख को आर्य्यसमाजी असल में नहीं लावेंगे तो क्या इसका अनुष्ठान ऊंट-हाथी करेंगे ?

मंत्र गुण।

स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं इस को हमने प्रमाण पंचक के नं० ५८ में स्पष्ट किया है। क्या कोई भी आर्य्यसमाजी इस बात को सत्य मानता है कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं। जब हवन के मंत्र आर्य्यसमाजियों के आगे रख दिये जाते हैं तब आर्य्यसमाजी बुरी तरह बिगड़ते हैं और मंत्र आगे रखने वाले एवं स्वा० दयानन्द जी इन दोनों की चोखी खबर ले लेते हैं। तथा अन्त में यह भी कह देते हैं कि हम दयानन्द जी के लेख को मानने वाले नहीं।

परमेश्वर के नाम।

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ओं भूः और प्राण आदि नाम परमेश्वर के हैं, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६० में उद्धृत किया है और दयानन्द जी ने राहु

केतु आदि नाम भी ईश्वर के माने हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ७१ में लिख दिया है। क्या भूः प्राण, राहु-केतु आदि ईश्वर के नाम कोई आर्य्यसमाजी मानने को तैयार है ? यदि तैयार है तो शास्त्रार्थ के समय क्रोध क्यों करते हैं और फिर यह क्यों कह देते हैं कि दयानन्द के लेख के हम जिम्मेदार नहीं ? भूः और प्राण तथा राहु-केतु दयानन्द के बतलाये ईश्वर के ये अजब नाम आर्य्यसमाजी न मानेंगे तो क्या मण्डूक- मत्स्य मानेंगे ?

अनोखा अर्थ।

स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा मन में हो वैसा ही बोले, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६१ में लिखा है। क्या यह अर्थ आर्य्यसमाजी सत्य समझते हैं ? यदि सत्य समझते हैं तो "अग्नये स्वाहा" बोल कर आहुति क्यों देते हैं ? क्या यह कहते हैं कि हे आग तेरे लिये जैसा मेरे मन में है वैसा बोलता हूं। अग्नि तो दयानन्द के मत में जड़ है फिर जड़ों से बात चीत करनी क्या मूर्खता नहीं है ? हम किस प्रकार मानें कि स्वा० दयानन्द के कहे स्वाहा शब्द के अर्थ को आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? एक बार सी० पी० में रहने वाले ब्रह्मानन्द संन्यासी नामक आर्य्यसमाजी ने कहा था कि दयानन्द का लिखा स्वाहा शब्द का यह अर्थ मैं ही नहीं बल्कि समस्त आर्य्यसमाजी गलत मानते हैं। चलो छुट्टी पाई।

यज्ञ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ बतलाये हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६२ में लिखा है। अग्निहोत्र और अश्वमेधके बीचमें इष्टि, दर्श, पौर्णमास, पुरुषमेध, शतरुद्रियाग, सौत्रामणि, बाजपेय, सर्वमेध, एवं खास अश्वमेध यज्ञ हैं क्या इनको आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? यदि मानते हैं तो क्या किसी आर्य्यसमाजीने कभी कोई यज्ञ किया है ? या यज्ञके मण्डन का लेख लिखा है ? अथवा किसी आर्य्यसमाजी अखबार या किसी ग्रन्थ में इनकी विधि का कभी उल्लेख किया है ? अथवा किसी आर्य्यसमाजी पंडित ने कभी अपने व्याख्यान में समझाया है कि इस यज्ञ की यह विधि है ? यदि कुछ भी नहीं किया तो हम कैसे मानलें कि आर्य्यसमाज "अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त" दयानन्द के इस लेख को सत्य मानती है ? यदि इसको आर्य्यसमाजी सत्य न मानेंगे तो फिर क्या नदी नाले सत्य मानेंगे ?

वैश्य का लक्षण।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जो ऊरु के बल से सब देशों में जावे आवे उस को वैश्य कहते हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६५ में लिखा है। क्या इसको आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? यदि सत्य मानते हैं तो समस्त देशों में घूमने वाला ऊंट क्या आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में वैश्य है। इस प्रश्न पर घबरा कर आर्य्यसमाजी कह उठते हैं कि यह प्रश्न तुम स्वामी से कर सकते थे हम से नहीं ? हम इनसे पूछते हैं कि जब स्वा० दयानन्द जी का वैश्य का लक्षण वैदिक है तो तुम उससे घबरा कर स्वामी जी के जिम्मे इसके उत्तर को क्यों मढ़ते हो ?

तुरन्त दान—महा कल्याण।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि विवाह विधि को समाप्त कर तत्काल ही गर्भाधान की विधि की जावे, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६६ में दिखलाया है। जब यह धार्मिक कृत्य है तो आर्य्यसमाजी 'अभी समय नहीं' यह कह कर क्यों जी चुराते हैं क्या स्वा० दयानन्द जी के लिखे इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान पशु-पक्षी करेंगे ?

ब्रह्मा का लक्षण।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जो सांगोपांग चारों वेदों को पढ़ा हो वह ब्रह्मा, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६७ में दिखलाया है। क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं ? यदि सच मानते हैं तो बतलावें कि आर्य्यसमाज ने किस २ मनुष्य को ब्रह्मा की उपाधि दी है ? यदि इसको सच नहीं मानते तो क्या स्वा० दयानन्द जी के साथ आर्य्यसमाजियों का विकट द्वेष है ?

ऋषि।

स्वा० दयानन्द जी ने स्वमन्तव्यामन्तव्य में ब्रह्मा को ऋषि लिखा है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६८ में दिखलाया है। क्या आर्य्यसमाज इसको सच मानती है ? यदि सच मानती है तो बतलावे कि किस २ आर्य्यसमाजी ने ब्रह्मा को ऋषि लिखा है।

गुरु भक्ति।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में गुरु को लात घूंसों से पीटना या फांसी तक पर लटका देना लिखा है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६९ में दिख-

लाया है। यदि आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं तो उन्होंने अपने पूज्य गुरुओं के साथ में क्या ऐसा व्यवहार किया है ? यदि नहीं किया तो क्यों ? जब स्वामी जी के वैदिक लेख को आर्य्यसमाजी ही आचरण में नहीं लावेंगे तो क्या पारसी लावेंगे ?

मनुष्य मांस ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि मनुष्य का मांस मनुष्य खा ले तो कोई हानि नहीं, इस विषय को हमने प्रमाण पंचक के नं० ७० में लिखा है। क्या आर्य्यसमाजी भी यही मानते हैं ? यदि मानते हैं तो मनुष्य का माँस क्यों नहीं खाते ? यदि नहीं मानते तो स्वा० दयानन्द जी के लिखे इस वैदिक धर्मी लेख को क्या जैनी मानेंगे ?

जल पीना ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जल वस्त्र से छान कर पीना चाहिये, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ७३ में लिखा है क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं ? यदि सच मानते हैं तो क्या कपड़े से छान कर जल पीते हैं। नहीं पीते तो स्वा० दयानन्द जी के बतलाये इस वैदिक धर्मको क्या सनातनधर्मियों के लिये छोड़ दिया है ?

वर्णव्यवस्था ।

स्वा० दयानन्दजीने वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से माननी लिखी है हमने इसको प्रमाणपंचक के नं० ६१ में दिखलाया है। क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं। यदि सच मानते हैं तो क्या आर्य्यसमाजियों ने अपने उन बाप, दादा, भाई, लड़के और पौत्रों को शूद्र बनाया है। जो बिल्कुल ही वेद नहीं पढ़े ? यदि नहीं बनाया तो गुण कर्म स्वभाव की वर्णव्यवस्था को क्या ईसाई मानेंगे ?

तात्विक विवेचन ।

स्वामी दयानन्द जी ने जितने भी धार्मिक कर्तव्य और धार्मिक विवेचन लिखे हैं आर्यसमाजी उनमें से केवल परस्पर में नमस्ते करना, इस एक आज्ञा को तो सत्य मानते हैं बाकी के लेख इनकी दृष्टि में अमान्य घृणित और गप्पे हैं। वास्तव में आर्यसमाजी स्वामी जी के सिद्धान्तों को बिल्कुल नहीं मानते केवल संसार को धोखा देने के लिये यह झूठ कहते रहते हैं कि हम दयानन्द जी के लिखे धार्मिक

सिद्धान्तों को सच मानते हैं। हमने नमूने के लिये कुछ प्रकरण ऊपर दिखला दिये हैं, यदि कोई हमसे आग्रह करे तो हम दयानन्द जी की प्रत्येक धार्मिक शिक्षा को लिख कर उत्तम रीति से दिखला सकते हैं

वेद पर विश्वास

हम ऊपर लिख आये हैं कि स्वामी दयानन्द जी के धार्मिक लेखों पर आर्यसमाज की न श्रद्धा है न विश्वास। अब हम यह दिखलावेंगे कि वेद पर आर्यसमाज की कितनी श्रद्धा है। वेद ईश्वर को निराकार और साकार दो रूप वाला बतलाता है, वेद यह भी कहता है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पांच तत्व ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं इस कारण ये ईश्वर के शरीर हैं। जैसे बर्फ और जल में कोई भेद नहीं होता वैसे ही तत्वों में और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। वेदने ब्रह्मा वराह, वामनादि ईश्वर के अवतारों के होने का भी विस्तृत लेख लिखा है देखो ईश्वर स्वरूप। वेद के इन सब सिद्धान्तों को संसार से उखाड़ देने के लिये आर्यसमाज अपने मन से ही ईश्वर को निराकार कहती है यह वेदके ऊपर आर्यसमाजका पहिला विश्वास है।

वेद ने मूर्ति पूजा का वर्णन किया, वेद ने यह भी आज्ञा दी कि तुम पूजन करो, वेद ने आकाश, वायु, जल, अग्नि पृथ्वी, के द्वारा ईश्वर का पूजन करना लिखा वेद ने "त्र्यम्बकम्" "नमस्तेस्तु विद्युते" "अपाशवो" आदि सैकड़ों मन्त्रों में मूर्ति पूजा करने का विधान लिखा देखो वेद और आर्यसमाज की मूर्तिपूजा। किन्तु आर्यसमाज मूर्तिपूजा का अपने मन से ही खण्डन करती है यह आर्यसमाज का वेद पर दूसरा विश्वास है।

वेद ब्रह्म को सृष्टि का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" मानता है इसमें वेद ने अनेक मन्त्र दिये, देखो वेद और आर्यसमाज का "अभिन्न निमित्तोपदान कारण"। किन्तु आर्यसमाज वेद मिटाने के लिये ईश्वर को संसार का निमित्त कारण मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर तीसरा विश्वास है।

वेद ने प्राणी मात्र की उत्पति ईश्वर के स्वरूप से लिखी है देखो वेद और आर्यसमाज का सृष्टि प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज अपने मन से जवान जवान स्त्री और जवान जवान पुरुष तथा जवान जवान पशु और जवान जवान पक्षियों की उत्पत्ति अपने आप होगई मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर चतुर्थ विश्वास है।

वेद ने मनुष्यों से भिन्न देव जाति का वर्णन बड़े विस्तार से किया है, देवताओं के कुछ नाम भी लिखे हैं, नामों से भिन्न देवताओं की संख्या लिखी, देखो वेद और आर्यसमाज का देवजाति प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज अपने मन की तरंग से देवजाति का खण्डन कर लिखे पढ़े मनुष्यों को ही देवता मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर पंचम विश्वास है।

वेदों ने वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मावतार के मुख से मानी है देखो वेद और आर्यसमाज का वेदोत्पत्ति प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज नये नये जाल बना अग्नि, वायु, रवि इन तीन तत्व समूह को ऋषि बना, उनमें अपनी जबर्दस्ती से अंगिरा को मिला इनके द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव होना मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर छठा विश्वास है।

हमने वेद और आर्यसमाज नामक प्रकरण में यह स्पष्ट दिखला दिया कि आर्य्यसमाज वेद के किसी भी सिद्धान्त को नहीं मानती। वेद कहता है दिन तो आर्यसमाज कहती है रात, वेद कहता है धूप तो आयसमाज कहती है छाया, वेद कहता है प्रकाश तो आर्यसमाज कहती है अन्धकार, सभी सिद्धान्तों में जमीन और आसमान जैसा अन्तर है। अब आप समझ गये होंगे कि आर्यसमाज का आधार न वेद है–न दयानन्द के लेख, इसका आधार तो केवल गालियां देना, झूठ बोलना, चाल बाजी करना, धोखे में फांसना, हठ बांध बैठना है। आर्यसमाज यदि वेद को प्रमाण मानती तो इसका आधार वेद रहता, यदि स्वा० दयानन्द जी के लेख को प्रमाण मानती तो इस का आधार स्वा० दयानन्द जी का लेख रहता किन्तु आर्य्यसमाजियों ने दोनों का ही मानना छोड़ दिया अतएव आर्य्यसमाज का कोई आधार ही नहीं रहा, आधार न रहने के कारण आर्य्यसमाज का मृत्यु हो गया और वह मृत्यु आर्यसमाजियों के हाथ से हुआ क्यों कि वेद और दयानन्द के लेख पर आर्यसमाजियों ने ही शिर हिलाया अतएव मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज के मारने वाले न मुसलमान हैं न ईसाई, न यहूदी न पार्सी, न जैनी न सनातनधर्मी वरन् इसके मारने वाले वे ही आर्यसमाजी हैं जिनके नाम आर्यसमाज के रजिस्टर में लिखे हैं और जो आर्यसमाज के लीडर प्लीडर–पण्डित प्रोफेसर, प्रधान-मंत्री हैं। आधार छोड़ देने के कारण आर्यसमाजियों ने आर्यसमाज को ऐसा मारा कि सदा के लिये इसकी अन्त्येष्टि हो गई।

कई एक आर्यसमाजी यह कहते हैं कि हमें गालियां देकर, झूठ बोलकर, विविध प्रकार की चालबाजियां चल, मनुष्यों को धोखे में फांस, हठ बांध आर्यसमाज

की उन्नति करके दिखला रहे हैं फिर कोई कैसे कहेगा कि आर्यसमाज मर गई ? इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि प्रथम तो लिखे पढ़े मनुष्यों पर इन पांच मार्गों में से किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, दूसरे जब कोई मनुष्य यह समझ लेगा कि आर्यसमाज की जड़ इन अमानुषिक कर्तव्यों पर स्थित है तो फौरन आर्यसमाज छोड़ देगा। तीसरे इन अयोग्य कार्यों से न कोई धर्म चल सकता है और न स्थिर रह सकता है इसके विरुद्ध इन अयोग्य कार्यों के अवलम्बन करनेवाले को संसार घृणा की दृष्टि से देखा करता है। हमने यहां पर जो लेख लिखा है वह आर्यसमाज से चिढ़ कर नहीं लिखा वरन् इस लिये लिखा है कि विचारशील मनुष्य विचार करें कि आर्यसमाज का अवलम्ब कोई धार्मिक ग्रन्थ है या संसार की आंख में धूल झोंक कर बलात्कार इसको सर्वोत्तम धर्म बतलाया है।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

समाप्त

* श्रीगणेशायनमः *

हिन्दू कार्यालय के पुस्तकों

का—

सूचीपत्र ।

धर्मप्रकाश ।

यह पुस्तक आर्य्यसमाज और सनातनधर्म के सिद्धान्त में से किसके सिद्धान्त वेदानुकूल हैं इसकी जानकारी के लिये शास्त्री जी ने लिखी है। इसके प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' फिर उतने ही लेख के खण्डन का 'दयानन्द तिमिर भास्कर' इसके पश्चात् दयानन्द तिमिर भास्कर का खण्डन करने वाला 'भास्कर प्रकाश' फिर भास्कर प्रकाश के ऊपर 'धर्मप्रकाश' इस प्रकार प्रत्येक विषय पर चारों ग्रन्थों के लेख पूर्ण छापे गये हैं, इस ग्रन्थ की प्रशंसा स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र तथा वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी एवं विद्यारत्न पं० कन्हैयालाल जी, महोपदेशक पं० गोकुलचन्द जी शास्त्री, विद्यावागीश पं० गोविन्दराम शास्त्री और पं० श्रवणलाल जी प्रभृति स्वर्गीय विद्वानों ने लिखी है। वर्त्तमान काल के विद्वान् महामहोपध्याय पं० गिरिधर जी शास्त्री प्रिंसिपल जयपुर कालेज तथा कविरत्न पं० अखिलानन्द जी एवं विद्याविभूषण पं० श्रीकृष्ण जी जोशी बी० ए० एल० एल० बी० धार्मिक प्रोफेसर विश्वविद्यालय काशी प्रभृति अनेक विद्वानों ने की है इस ग्रन्थ में पृथक् २ समुल्लास हैं छः समुल्लास का यह ग्रन्थ छपा हुआ तैयार है। पृष्ठ संख्या १२१२। मूल्य ५) डाक व्यय चौदह आना।

सत्यार्थप्रकाश ।

स्वामी दयानन्द जी का बनाया हुआ असली 'सत्यार्थप्रकाश' यही है। इसमें मृतक पितरों का श्राद्ध, स्वर्ग में रहने वाले देवताओं का मानना तथा आर्य्यसमाजियों के लिये हवन करके गाय बैल को चट कर जाना लिखा है। स्वामी दयानन्द

जी के स्वर्गवास होने पर प्रतिनिधि ने काट छाँट करके एक नया सत्यार्थप्रकाश बना लिया और इस असली सत्यार्थप्रकाश को खरीद खरीद कर आर्य्यसमाज ने नष्ट करना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक अलभ्य हुआ कि तीन रुपये की पुस्तक खोजने पर साठ रुपये को भी नहीं मिलती थी, जब हमने यह देखा कि भीतरी जलन के कारण आर्य्यसमाजी लोग दयानन्द के सिद्धान्तों को संसार से उखेड़ रहे हैं तब हमने वही असल दयानन्दकृत सन् १८७५ में छपा प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश छपवा दिया। भारतवर्ष की आर्य्यसमाजों ने रेजुलेशन पास किया चन्दे का संग्रह हुआ, हम को मुकद्दमे का नोटिस दिया गया किन्तु इतने पर भी मुकद्दमा चल न सका, आर्य्यसमाजियों के मुँह पर स्याही पुत गई, हार कर घर में बैठ रहे। यह वही सत्यार्थप्रकाश है। मूल्य २) रु० डाक महसूल पांच आने।

पुराणवर्म।

आर्य्यसमाजी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार, वर्णव्यवस्था, विधवाविवाह, नियोगादि विषय पर सैकड़ों शास्त्रार्थ हार चुके, उपरोक्त विषय की पुस्तकें भी शास्त्री जी ने ऐसी लिखीं कि जिनके उत्तर में आज तक आर्य्यसमाज की लेखनी नहीं उठी, अब हार कर आर्य्यसमाजियोंने यह मैदान छोड़ दिया और पुराणों का खण्डन तथा पुराणों पर शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिये। आर्य्यसमाज के इस फौज फांटे वाले हमले को दूर करने के लिये शास्त्री जी ने "पुराणवर्म" नामक यह ग्रन्थ लिखा है यह ग्रन्थ आधा ही छपा है केवल पूर्वार्ध है, इसके ऊपर काशी से निकलने वाले साप्ताहिक हिन्दी केसरी ने लिखा है कि—

"पुराणवर्म पूर्वार्ध" धर्म ग्रन्थों की कौन कहे, जिस देव वाणी में हमारे धर्म ग्रन्थ लिखे हैं उससे भी पूर्णतया अपरिचित लोगों के बहकावे में आकर धार्मिक शिक्षा शून्य हमारे शिक्षित धर्म बांधव भी पुराणों के सम्बन्ध में हास्यास्पद शंकायें करते देखे सुने जाते हैं। इस प्रकार के सभी सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे 'पुराणवर्म' को एक वार अवश्य देखें, पुराणों पर बौद्ध काल से लेकर आज तक जितनी शंकायें हो सकीं हैं 'पुराणवर्म' में एक एक कर उन सभी के समाधान का प्रयत्न होगा। अभी 'पुराणवर्म' का केवल 'पूर्वार्द्ध' ही प्रकाशित हुआ है। इसे आद्यन्त पढ़ने के बाद निःसंकोच भाव से हम कहते हैं कि पुराण के विद्यार्थी इस ग्रन्थ को अवश्य देखें। इस ग्रन्थ में जितनी शंकाओं का समाधान हुआ है उन पर कोई अगर मगर शेष नहीं रह जाता। हमारा विश्वास है कि 'उत्तरार्द्ध' के प्रका-

शित होजाने पर पुराणों के सम्बन्ध में एक भी शंका न रह जायगी । यदि इतने पर भी किसी को सन्तोष न हो तो ग्रन्थकार की घोषणानुसार कोई भी मनुष्य विद्वत्ता पूर्ण खण्डन कर १०००) पारितोषिक लेने का प्रयत्न कर सकता है और हम अनुराध करेंगे कि वह अवश्य प्रयत्न करे। अस्तु, कहने का मतलब यह है कि पुराण के मानने वालों और उनके विरोधियों दोनों ही के लिये यह ग्रन्थ बड़े काम का है । इसी प्रकार इस ग्रन्थ के रचयिता पं० कालूराम जी शास्त्री सनातनधर्म की जो अकथनीय सेवा कर रहे हैं उस पर मुग्ध हो कुछ सनातनी यदि उन्हें श्री शंकराचार्य का अवतार मानने लगे हों तो क्या आश्चर्य है।

जिस 'पुराणवर्म' के पूर्वार्द्ध की समालोचना है उसका मूल्य ३) रु० और डाकव्यय ।।) आने । ग्रन्थकर्ता ने इस ग्रन्थ के खण्डन करने वाले को १०००) इनाम देना लिखा है।

व्याख्यान दिवाकर ।

इस नाम का प्रशंसनीय ग्रन्थ शास्त्री जी ने लिखा है। यह इतना प्रशंसनीय है कि एक महीने में इसकी दो सहस्र कापियां बिक गईं । इसमें धर्म, धर्म, गृहस्थधर्म, अभ्युत्थान, सनातनधर्म गौरव ये पांच व्याख्यान धर्म के हैं । इसके आगे ईश्वर स्वरूप, अवतार, अवतारवाद, कृष्णावतार, ये चार व्याख्यान अवतार के हैं। मूर्तिपूजा, प्रतिमापूजन, मूर्तिपूजावाद, भक्ति, भक्ति इस प्रकार चौदह व्याख्यान हैं। सभी व्याख्यान मधुर, सरस प्रामाणिक और युक्ति युक्त हैं। इस ग्रन्थको हाथमें लेकर व्याख्यानदाता भी बन सकता है और शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजय भी कर सकता है। जिसमें ये चौदह व्याख्यान हैं उस "व्याख्यान दिवाकर" के "पूर्वार्द्ध" का मूल्य २) डाक महसूल पांच आने ॥

विधवाविवाह निर्णय ।

विधवाविवाह का आन्दोलन उठने पर शास्त्री जी ने यह ग्रन्थ तैयार किया है, इसमें वैदिक विवाह की उत्कर्षता, विधवाविवाह का जाल, वेद विवेचन, तर्क निर्णय, नष्टे मृते मीमांसा, वाग्दत्ता का पुनर्विवाह, पुनर्भू विवेचन, विधवाविवाह निषेध, इतिहास विवेचन, पुराणचर्चा, वेदमें नियोग की व्यवस्था ये बारह व्याख्यान हैं। यह ग्रन्थ व्याख्यान सीखने के लिये अद्वितीय है, इस ग्रन्थ को हाथ में लेकर जो

शास्त्रार्थ करेगा वादी उसके आगे एक मिनट नहीं ठहर सकता इस ग्रन्थ के खण्डन करने वाले को ग्रन्थ कर्ता ने १०००) रुपया पारितोषक भी लिख दिया है ॥ यह ग्रन्थ व्याख्यान दिवाकर का दूसरा भाग है मूल्य २) रुपया डाक महसूल पांच आना ॥

दयानन्द छल कपट दर्पण ।

आर्यसमाजियों ने स्वामी दयानन्द जी के अनेक जीवन चरित्र लिखे हैं किंतु वे सब बनावटी और परस्पर विरुद्ध हैं। यह ग्रन्थ दयानन्द छल कपट दर्पण जिसका दूसरा नाम 'दयानन्द का जीवन चरित्र' है पं० जियालाल जी जैनी ने उत्कट खोजके साथ लिखाहै इस कारण यह सच्चा जीवन चरित्र है ॥ इसकी भाषा हृदयग्राही नहीं है किन्तु पंडित जी ने स्वामी दयानन्द के ऐसे मामले दिखलाये हैं जिनको पढ़ आर्य-समाजी शिर नीचा कर चल देते हैं ॥ इस ग्रन्थ का अधिकार लेकर हमने छपवाया है पाठक इसे अवश्य पढ़ें ॥ मूल्य दो रुपया, डाकव्यय पांच आने।

मूर्ति पूजा ।

वैदिक उपासना के विषय पर शास्त्री जी ने "मूर्तिपूजा" नामक ग्रन्थ लिखा है ॥ पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने भारत प्रसिद्ध सरस्वती मासिक पत्रिका में इस पुस्तक की भूरि भूरि प्रशंसा की है ॥ इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को ग्रन्थकर्ता ने १०००) रु० पारितोषिक भी रक्खा है ॥ सन् १९१० ई० से यह पुस्तक कई बार छपी, मूर्तिपूजा के खण्डन करने वालों के समस्त हौसले पस्त पड़ गये, खण्डन के लिये किसी ने भी लेखनी नहीं उठाई वरन् जिस दिन से यह पुस्तक तैयार हुई है मूर्ति खण्डन करने वालों ने शास्त्रार्थ करने छोड़ दिये भूल से कौंच, राठ, कुसरा, कानपुर प्रभृति जिन स्थानों में आर्यसमाज ने शास्त्रार्थ किया, इस पु-स्तक के आगे भारी हार खाने पड़ी । पुस्तक का मूल्य १) रुपया डाक महसूल चार आना ।

अवतार ।

इस पुस्तक में वेद और युक्ति से ईश्वर का अवतार धारण करना दिखलाया गया है । वेद के प्रमाणों से ब्रह्मा, वराह वामना, यक्ष मत्स्य प्रभृति अनेक अवतार दिखलाये गये हैं। पुस्तक पढ़ते ही आर्यसमाजी लम्बी स्वांस लेने लगते हैं। ग्रन्थ कर्ता ने इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को १०००) रु० इनाम रक्खा है किन्तु

किसी की भी लेखनी न उठ सकी। इस पुस्तक का मूल्य १) डाक महसूल चार आना।

धर्म।

धर्म क्या चीज़ है? धर्म से क्या लाभ है? संसार में धर्माचरण किस प्रकार शान्ति स्थापित करता है? धर्म के बिना संसार की क्या दुर्दशा होती है मरने के बाद जब कोई सहायता नहीं करता तब जीव का धर्म ही रक्षक होता है संसार में विज्ञान द्वारा सनातनधर्म किस प्रकार सत्य है और शेष धर्म सनातनधर्म के आगे किस प्रकार हार कर अपनी हस्ती को मिटा देते हैं प्रभृति विषयों का उत्तम फोटू खैंचा है, निर्माता इसके शास्त्री जी हैं मूल्य बारह आने, डाक महसूल चार आने।

शास्त्रार्थत्रय कानपुर।

सन् १९१८ में आर्यसमाज कानपुर को शास्त्रार्थ की खुजली पैदा हो गई, अन्त में सनातनधर्म सभा भी तैयार हुई और लेखबद्ध पुराण, श्राद्ध, मूर्तिपूजा इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ हुए। जिस आर्यसमाज कानपुर का डी० ए० बी० कालेज और डी० ए० बी० हाईस्कूल है वह आर्यसमाज ऐसी हारी कि उसने शास्त्रार्थ हो चुकने पर किसी समाचारपत्र में सूचना तक नहीं निकाली और न शास्त्रार्थ छपवाया वरन् उसी दिन से सनातनधर्म सभा से शास्त्रार्थ करने का नाम तक नहीं लिया। अब जब कोई सनातनधर्मी शास्त्रार्थ के लिये आर्यसमाज कानपुर को कहता है आर्यसमाज कानपुर फौरन शास्त्रार्थ से इन्कार कर देती है। इन तीनों शास्त्रार्थों में दोनों पक्षों के लेख बड़ी सावधानता के साथ संग्रह किये हैं। इस शास्त्रार्थत्रय को देख कर आर्यसमाजी चुप रह जाते हैं। मूल्य आठ आना, डाकव्यय चार आना।

नियोग।

स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का गला घोट उनसे जबरदस्ती नियोग निकाला है, स्वामी जी की समस्त चालाकियां इसमें खोल दी गई। पं० बद्रीदत्त जोशी, वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, ला० मुन्शीराम उर्फ श्रद्धानन्द आदि ने जो इस नियोग का मीठा खण्डन लिखा है वह भी इस पुस्तक में दिखलाया है। स्वामी दयानन्द ने इतना झूठा विषय लिखा कि आर्यसमाजियों को भी इस नियोग से घृणा होगई। इस विषय पर दो अदालतों के फैसले भी हैं, इन अदालतों ने नियोग को व्यभिचार

बतलाया है, नियोग पुस्तक में ये सब मौजूद हैं इसके खण्डन करने वाले को एक सहस्र रुपया इनाम देना भी शास्त्री जी ने लिखा है सन् १३ से यह पुस्तक छप रही है आर्यसमाजी कलेजा पकड़ के रह जाते हैं किन्तु उत्तर नहीं लिख सकते। मूल्य आठ आना।

वर्णव्यवस्था।

इस पुस्तक के प्रकरण और युक्तियों को देख कर सुधारक बिगाड़क लीडर और प्लीडर, आर्यसमाजी और जाति पांति तोड़कों के छक्के छूट जाते हैं, जबान बन्द हो जाती है, चुप से ही चल देते हैं। पुस्तक का मूल्य छः आना।

श्राद्ध निर्णय।

इस पुस्तक में युक्ति तथा वेद के प्रमाणों से मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया गया है। साथ ही साथ जीवित पितरों के श्राद्ध की भी खूब छीछालेदर की गई है। पुस्तक को देख कर मृतक श्राद्ध के खण्डन करने वालों की नानी मर जाती है मूल्य छः आना।

दयानन्द मत विद्रावण।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण है। इसमें जो स्वामी दयानन्द के लेख का परस्पर विरोध और अवैदिकता दिखलाई गई है उसको सुन कर आर्यसमाजी अंगुली से जीभ दबा जाते हैं। मूल्य चार आना।

सत्यार्थप्रकाश का छीछालेदर।

स्वामी दयानन्द जी के स्वर्गवास होने पर आर्यसमाजियों ने सत्यार्थ प्रकाश की छीछालेदर कर डाली। द्वितीयावृत्ति में स्वामी जी का कुछ लेख निकला कुछ अपनी तरफ से लिख कर सत्यार्थप्रकाश में मिलाया और उसको सत्य बतला दिया, फिर कुछ तृतीयावृत्ति में निकाला, चतुर्थावृत्ति में फिर निकाल दिया कुछ बदल दिया इसी प्रकार तेरहवीं आवृत्ति तक इस ग्रन्थ में सत्यार्थप्रकाश की काट छाँट दिखलाई गई। स्वार्थ बुरी बलाय है, स्वार्थ में पड़ कर आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द जी को मूर्ख तथा उनके सत्यार्थप्रकाश को भूंठा लिखा करते हैं यही इस पुस्तक में दिखलाया गया है मूल्य दो आना।

शास्त्रार्थ सुजानगढ़ ।

सुजानगढ़ में आर्य्यसमाज स्थापित हो गई, बारह वर्ष तक कोई सनातनधर्मी उपदेशक न पहुंचा, अब तो आर्यसमाज शास्त्रार्थ के लिये कुदने लगी, सनातन धर्मियों को धर्म पर बोलना कठिन होगया, अन्त में आठ सितम्बर सन् २१ में सनातनधर्म और आर्यसमाज से अवतार पर शास्त्रार्थ हुआ । आर्यसमाज ऐसी हारी कि अभी तक मुर्दे की भांति चुपचाप पड़ी है। सनातनधर्म की तरफ से अवतार पर जो प्रमाण दिये गये आर्यसमाजी पण्डित ने उनको छुआ तक भी नहीं इस शास्त्रार्थ से अवतार का पूरा ज्ञान हो जाता है मूल्य दो आना

भजन तरंग ।

सनातनधर्मियों के पास भजनों की कोई अच्छी पुस्तक नहीं थी सब विषयों के उत्तमोत्तम भजन संग्रह करके यह प्रथम भाग छपा है, मूल्य दो आना ।

छोटी पुस्तकें ।

ये पुस्तकें जिस जिस विषय पर बनी हैं अपने विषय का ऐसा ज्ञान करवा देती हैं कि फिर कोई भी आर्यसमाजी बोल नहीं सकता, लेखनी तथा जबान बन्द हो जाती है । प्रत्येक मनुष्य को ये किताबें मंगवा कर पढ़नी चाहिये देखो क्या मजा आता है किताबों के नाम दाम नीचे देखिये।

तीर्थ -)॥, बनावटी वेद -)॥, वेद पर आरा -)॥, शुद्धि निर्णय -)॥, संस्कार विधि समीक्षा -), हिन्दु शब्द मीमांसा -), नमस्ते मीमांसा -), हनुमान निर्णय -) लीडरों की नादिरशाही -), अनोखा विजय -), रमामहर्षि संवाद -), लीडर गुदगर्जन -), नई शिक्षा का विपरीत फल -), दयानन्द लीला)॥।, दयानन्द की आप्तता)॥।, वेदों का कतल)॥।, जाली वेद मन्त्र)॥।, लोहालक्कड़ देवता)॥।, स्वामी शिष्य संग्राम)॥।, स्वामी पर कलंक)॥।, मांस विचार)॥।, द्विजत्व में द्विम सलाई)॥।, स्वामी गुरु कि चेला गुरु)॥।, दयानन्द का कच्चा चिट्ठा)॥।, दयानन्दकी सभ्यता)॥, निराकार की घुड़दौड़)॥, वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा)॥, वेदपर वज्रपात)॥, दयानन्द हृदय)॥, दयानन्द मत दर्पण)॥, दयानन्द की बुद्धि)॥, दयानन्द मत सूची)॥, धर्म सन्ताप)॥, स्वामी दयानन्द और पुनर्विवाह)॥

सनातनधर्म पुस्तकालय इटावा की पुस्तकें।

षोडस संस्कार विधि २॥), श्राद्धमीमांसा ॥।), व्याख्यानरत्नमाला ॥), स्पृश्यमीमांसा ॥), आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ।=), पुनर्जन्म ।), पुत्रेष्टि पद्धति ।), सनातनधर्म प्रश्नोत्तरावली द्वितीय भाग ।), प्रथम भाग =), आशु मन्त्र मीमांसा ≡), सत्यार्थप्रकाश समीक्षा =) पंच कन्या चरित्र =), नरमेध मीमांसा)॥।, नित्य हवन विधि)॥, कातीय तर्पण विधि)॥,

अखिलानन्द कृत पुस्तकें।

काव्य का अनूठा और सनातनधर्म का ज्ञान करवाने में अनोखा सनातन विजय महाकाव्य मूल्य ४) डाकव्यय आठ आना।

हिन्दू मासिक पत्र।

हमारे यहां से हिन्दु नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। आर्यसमाज और सुधारकों का जोरदार, रसीला, और मीठा खण्डन करने में जैसा यह पत्र ऐसा अभी तक भारतवर्षमें दूसरा पत्र नहीं है इस पत्रमें निकले हुये लेखों पर किसी आर्यसमाजी और सुधारक की लेखनी नहीं उठती, इस पत्र से सुधारक, और आर्य समाजी दोनों ही घबराते हैं, इस पत्र के पढ़ने वालों को सनातनधर्म के गूढ़ रहस्य और आर्यसमाज की निःसारता एवं उसके खोखले सिद्धान्त तथा सुधारकों की चालबाजियाँ और नास्तिकता, धर्म के साथ इनकी शत्रुता आदि समस्त करतूत मालूम हो जाती हैं, प्रत्येक सनातनधर्मी गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि इसका ग्राहक बने और इस पत्र को सुन कर कोई भी बालक फिर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से नास्तिक नहीं बन सकता वार्षिक मूल्य १॥)

नोट—एक रुपये से कम की पुस्तकों का वी० पी० नहीं भेजा जायेगा।

समस्त पुस्तकें और हिन्दु के मिलने का पता:—

पं० कामताप्रसाद दीक्षित मैनेजर हिन्दु।

मु० पो० अमरौधा जिला कानपुर।

तार का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित अमरौधा

तारघर Pukhrayan.